श्री दाऊदयालगुप्त के काव्य में भक्ति एवं दर्शन

हैदराबाद विश्व-विद्यालय, हैदराबाद की पी॰एच॰डी. [हिन्दी]
उपाधि केलिए प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

1992 - 1994

प्रस्तुत कर्ता

पोतराजु प्रेमकुमार

एम॰ ए, एम॰ फिल

निर्देशक :

डॉ॰ सी॰ एच॰ रामुलु,

एम. ए., पी. एच. डी., बी. एड.
रीडर, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्व-विद्यालय, हैदराबाद।

अध्यक्ष :

डॉ॰ शशिमुदिराज,

एम॰ ए., पी॰ एच॰ डी., डी. लिट.
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्व विद्यालय, हैदराबाद

Name of the research scholar : POTHARAJU PREMAKUMAR.

Department/Centre : HINDI

University of Hyderabad

This is to certify that I. Potharaju Premakumar have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph.D. ordinences of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any University.

DATE : 1-9-94

p. Prema Kumar.
SIGNATURE

(RESEARCH SUPERVISOR)

(HEAD OF DEPARTMENT/CENTRE)

Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

(DEAN OF SCHOOL)

DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad,
Hyderabad-500 134.

DECLARATION

I here by declare that this dessertation entitled "DAV DAYAL GUPTHA KE KAVYA MAIN BHAKTHI AVAM DARSAN" has been written by me under the guidance and supervision of Dr. C.H. RAMULU. Reader in Hindi. Department of Hindi. University of Hyderabad. Hyderabad in partial fulfilment of the requirement of Ph.D. Degree.

I also declare that this dessertation is the result of my own effort and has not been submitted to any other University before for any degree or diploma.

Station : Hyderabad.

Date : 1-9-94

P. Prema Kumar.

Signature of the Candidate

प्राक्कथन

******

एम॰ए॰ पास होने के बाद मुझे एक बार वृन्दावन के दर्शन का सौभाग्य मिला। वहाँ मेरी भेंट संत राधिका प्रसाद जी (बड़े कुंज) से हुई जो राधा कृष्ण के अनन्य भक्त हैं। उनकी प्रेरणा से मुझे डॉ॰अवध बिहारीलाल कपूर के विरचित "व्रजभक्त माला" के अध्ययन करने का सुअवसर मिला। इस कृति को पढ़ते ही मेरे मन में कृष्ण साहित्य पर कुछ न कुछ काम करने की जिज्ञासा हुई -- मुख्यतया व्रज क्षेत्र में निवास करनेवाले कविजनों द्वारा रचित कृष्णभक्ति साहित्य पर। मेरी जिज्ञासा को मेरे निर्देशक डॉ॰रामगुरु जी ने मूर्त रूप प्रदान किया। श्री दाऊदयाल गुप्त व्रज क्षेत्र के प्रमुख कृष्णभक्त कवि हैं। उनके द्वारा रचित "भक्ति साहित्य" पर शोधकार्य करने को उद्यत हुआ।

शोधकार्य के समय अनेक शंकाएँ शोधार्थी के मन में उठना स्वाभाविक ही है। इससे मैं भी अछूता नहीं हूँ। मैं ने अपनी शंकाओं को अनेकों द्वारा दूर किया। मुख्यतया दाऊदयाल गुप्त जी से भेंट करने से मेरी कई शंकाओं का समाधान हुआ और शोध कार्य को आगे बढ़ाने में उनसे प्रोत्साहन मिला।

अध्ययन की सरलता के लिए प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का पाँच अध्यायों में विभाजन किया है। प्रथम अध्याय में दाऊदयाल गुप्त जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दिया गया है, जिससे विदित होता है कि उनका व्यक्तित्व ही कृतित्व के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। फिर एक बार प्रामाणित हुआ कि व्यक्ति की साधना से प्राप्त सत्य ही साहित्य है।

दूसरे अध्याय में भक्ति तत्व का शास्त्रीय परिचय दिया गया है और भक्ति की विशिष्टता का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ भक्ति के प्रकार, आधुनिक काल में भक्ति का स्वरूप आदि विषयों पर विश्लेषण किया गया है।

तीसरे अध्याय गुप्त जी के काव्य में उपास्यामूलक भक्ति के अन्तर्गत विविध देवी - देवताओं का स्वरूप पर सर्वांगीण रूप से समीक्षा की गई है और स्पष्ट निरूपित किया गया है कि भगवान श्रीकृष्ण उनकेलिए परम आराध्य है तो राधा आराधिका।

चतुर्थ अध्याय में गुप्त जी की भक्ति साधना की विशेषताओं पर विचार करते हुए भक्ति के क्षेत्र में आपके योगदान को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है।

पाँचवें अध्याय "गुप्त जी के काव्य में दर्शन" इस शीर्षक के अन्तर्गत ब्रह्मा, जीव, जगत्, माया संबन्धी उनकी अवधारणाओं का स्पष्टतया विचार विनिमय किया गया है।

उपसंहार में समस्त ग्रन्थ का निकष तथा निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

डॉ॰शशिमुदि राज प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के प्रति आभारी हूँ। जिन्होंने विषय की स्वीकृति देकर समय - समय पर परामर्श देते हुए मुझे प्रोत्साहित किया। उसी प्रकार प्रोफेसर वेंकटरमणराव जी ने भी मुझे प्रोत्साहित किया। विचार-विश्लेषण में पथ प्रदर्शन करते हुए डॉ॰रामुलु जी ने मुझे संभाला। आप तीनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

वृन्दावन के संत महात्मा भक्त कवि और श्रीकृष्ण तत्व के पारखी विद्वान श्री राधिका प्रसाद (बड़े कुंज) और श्री राधाकृष्ण मूर्ति (भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दू कालेज, गुण्टूर) ने श्रीकृष्ण तथा राधा जी

उपासना के रहस्यपूर्ण तत्वों को समझाया। आप दोनों का मैं तन मन से चरण स्पर्श करता हूँ। जिन जिन विद्वानों के ग्रन्थों से विचार संचयन किया है, विचार - विश्लेषण की दिशा मिली है, उनके प्रति आभार मानता हूँ।

दाऊदयाल गुप्त जी के प्रति मै अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे अपने साहित्य पर शोधकार्य करने की स्वीकृति दी। बाद में मैं श्री राजेन्द्रकुमार अग्रवाल, राजेन्द्रकृष्ण संगीत विद्यालय, मथुरा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। "जिनके द्वारा मुझे गुप्त जी के व्यक्तित्व संबंधी कई विषयों की जानकारी प्राप्त हुई।

अपने अभिन्न मित्र एम॰भास्कर, सी॰एच॰श्रीनिवास, सुधीर कुमार शा द्वारा मिले सहयोग को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता। मित्रों का सहयोग हमेशा मेरे संकल्प को क्रिया रूप देने में सहायक सिद्ध हुआ। उनके प्रति स्नेहपूर्ण कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिन ग्रन्थों से मैं ने अपने शोधकार्य के सम्बन्ध में विचार चयन किया है, उन विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

अंततः सभी मित्रों, शुभ चिन्तकों, सहकर्मियों, बन्धुओं, जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग मुझे मिला, सच्चे हृदय से उनका आभार प्रकट करता हूँ।

विनीत

पी॰प्रेमकुमार

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय 1 - 65.

दाऊदयाल गुप्त जी का कृतित्व व व्यक्तित्व

1.1. जीवन परिचय

1.1.1. वंश परिचय

1.1.2. जन्म संवत

1.1.3. बाल्य जीवन

1.1.4. प्रारम्भिक शिक्षा

1.1.5. उपनयन संस्कार

1.1.6. गांधी जी से भेंट

1.1.7. वैवाहिक जीवन

1.1.8. अभिरुचियाँ

1.1.9. कार्यकलाप

1.2. रचना संसार

1.2.1. कृष्णभक्ति सम्बन्धी काव्यों का परिचय

1.2.1.1. श्रीकृष्ण चरितमानस

1.2.1.2. राधा

1.2.1.3. महारास

1.2.1.4. श्याम सतक

1.2.1.5. श्याम - संदेसौ

1.2.1.6. वैभव

1.2.1.7. कृष्ण शतक

1.2.1.8. राधा शतक

1.2.1.9. कृष्ण रक्षिता कृष्णा

1.2.1.10. रुक्मिणी मंगल

1.2.1.11. गजल गोविन्द

1.2.2. गुप्त जी द्वारा रचित अन्य काव्यों का परिचय

1.2.2.1. हनुमच्चरित मानस

1.2.2.2. शंकर

1.2.2.3. महाशक्ति दुर्गा

1.2.2.4. जय ओंकार

1.2.2.5. भक्ति-ज्ञान दोहावली

1.2.2.6. भक्ति-भजन माला

1.2.2.7. गुप्त जी द्वारा विरचित कृतियों में पुरस्कृत कृतियाँ

1.2.2.8. सम्मानोपाधियाँ

1.3. निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय : 66-97

भक्ति का स्वरूप

2.1. भक्ति की व्याख्या

2.2. भक्ति - प्रकार

2.2.1. उपास्य मूलक भक्ति

2.2.1.1. निर्गुण भक्ति

2.2.1.2. सगुण भक्ति

2.2.1.3. शैव भक्ति

2.2.1.4. शाक्त भक्ति

2.2.1.5. वैष्णव भक्ति - रामभक्ति, कृष्णभक्ति तथा अन्य

2·2·2· उपासनामूलक भक्ति

2·3·1· श्रवण भक्ति

2·3·2· कीर्तन भक्ति

2·3·3· स्मरण भक्ति

2·3·4· पादसेवन भक्ति

2·3·5· अर्चन भक्ति

2·3·6· वन्दन भक्ति

2·3·7· दास्य भक्ति

2·3·8· सख्यभक्ति

2·3·9· आत्मनिवेदन

2·2·3· उपासक मूलक भक्ति (प्रेम रूपा भक्ति)

2·2·3·1· शान्त भक्ति

2·2·3·2· वात्सल्य भक्ति

2·2·3·3· माधुर्य भक्ति

2·2·3·4· तात भाव भक्ति

2·2·3·5· परमविरहासक्ति

2·3· भक्ति के साधन

2·3·1· प्रपत्ति

2·3·2· सत्संगति

2·3·3· एकात्म भाव

2·4· भक्ति की विशिष्टता

2·5· आधुनिक काल में भक्ति चिन्तन

2·6· निष्कर्ष

तृतीय अध्याय | 98 - 209·
****

दाऊदयाल गुप्त के काव्य में भक्ति तत्व: उपास्य मूलक भक्ति

3·1· निर्गुण भक्ति

3·2· सगुण भक्ति

3·2·1 शैव भक्ति

सर्वेश्वर शिव, भक्तरक्षक एवं लोकरक्षक, शिव- शिवानी में अभेद

3·2·2· शाक्त भक्ति

दुर्गा, गायत्री, महाकाली, ब्रह्माणी, वैष्णवी, रुद्राणी, सीता, राधा-सर्वेश्वरी राधा, आह्लादिनी शक्ति, रासेश्वरी राधा कृष्ण - प्राणाधि देवी, कृष्ण प्राणाधिक प्रिया, भक्ति का प्रतीक, आदर्श नारी रत्न के रूप में राधा।

3·2·3· वैष्णव भक्ति :

वराहावतार, नारसिंहावतार, कच्छप। अवतार, मोहिनी अवतार, वामनावतार, वैंकटेश्वर, रामावतार - सर्वेश्वर राम, लोक रक्षक - दुष्ट संहारक राम, दीनजनोद्धारक, शरणागतवत्सल, भक्तवत्सल भगवान श्रीराम, सीता - राम में अभेद; कृष्णावतार - पूर्ण ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, योगेश्वर कृष्ण, बालक कृष्ण, संयोग वात्सल्य-सौंदर्य वर्णन, चेष्टाएँ एवं कार्यकलाप, वियोग वात्सल्य, - 1· भावी वियोग की कल्पना से प्रसूत भावों का चित्र, वियोगावस्था का चित्र, रसिकेश्वर कृष्ण - कृष्ण का गोचारण, चीरहरण लीला, मुरली माधुरी, रास का आयोजन, रास लीला, गोपीवल्लभ - राधा वल्लभ श्रीकृष्ण, लोकरक्षण - दुष्ट संहारक श्रीकृष्ण, चरित नायक के रूप में कृष्ण, विराट रूप में, चतुर्भुज रूप में श्रीकृष्ण, राधा - कृष्ण में अभेद।

3.2.4. अन्य

सूर्यभगवान, गणेश, हनुमान - ईश्वर रूपा हनुमंता, शक्ति रूपा हनुमंता, दुष्ट संहारक हनुमंता, विराट रूप, भक्ति का प्रतीक

चतुर्थ अध्याय 210-276.

अ. दाऊदयाल गुप्त की भक्ति - साधना

इष्टदेव, भक्ति के विविध रूप- वैराग्यपूर्ण भक्ति, शान्ता भक्ति, नवधा भक्ति - श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य भक्ति - दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य, विचारण, सख्य भक्ति, आत्मनिवेदन - अनुकूलस्य संकल्प, प्रतिकूलस्य वर्जनम्, रक्षिष्यतीति विश्वास, गोप्तृत्व वरण, कार्पण्य, प्रेमा भक्ति, वात्सल्य भक्ति, मधुर भक्ति, वैरभाव भक्ति, पुष्टि मार्गीय भक्ति, अद्वैतमूलक भक्ति साधना - त्रिदेव - अद्वैत सिद्धि, राम - कृष्ण में अद्वैत, सीता-राधा में अद्वैत, हरिहराद्वैत भक्ति साधना ।

आ. राष्ट्रीय भक्ति -

राष्ट्रीय एकता, जन्मभूमि के प्रति अटूट प्रेम, उज्वल एवं आदर्श समाज की आकांक्षा, नारी जागरण, वर्तमान दुर्दशा - भारतीय जनता का उद्बोधन, निष्कर्ष ।

पंचम अध्याय: 277-303.

दाऊदयाल गुप्त के काव्य में दर्शन

5.1. ब्रह्म 5.2. जीव. 5.3. जगत् 5.4. माया

षष्ठ अध्याय : 304-320.
****

उपसंहार
******

सहायक ग्रन्थ सूची I - 5.
****

****

प्रथम अध्याय

दाऊदयाल गुप्त जी का कृतित्व - व्यक्तित्व

प्रथम अध्याय

दाऊदयाल गुप्त जी का कृतित्व व व्यक्तित्व

1.1. जीवन परिचय :---

साहित्यकार समाज का सर्वनिष्ठ प्राणी ही नहीं समाज का सजग प्रहरी भी होता है। वह व्यवसायी, वैद्य, वैज्ञानिक, शिक्षक और राजनीतिज्ञ ही नहीं, जड़ प्रकृति के तत्वों का सहचर, सहयोगी और उपभोक्ता भी होता है। प्रतिभाशाली कवि जब अपने उन्मेष में आता है तो उसे लोक और परलोक सभी की अन्विति अपने व्यक्तित्व में दिखाई देती है, अपनी परम्परा का समग्रबोध उसके व्यक्तित्व में समाहित हो जाता है, उसके संस्कारों एवं ज्ञान बोध की नवीनतम् धाराओं की नवीनतम स्पर्धा से एक अन्यतम विभा जागृत होती है, जिसकी परिणति काव्य में दिखाई देती है अर्थात् रचना में धार्मिकता भी अपने परिवेश में अंकुरित, प्रस्फुटित और पल्लवित होती है, रचना की धड़कनों में रचनाकार का हृदय -स्पन्दन भी अन्तर्भूत रहता है। दूसरे शब्दों में कृति की आत्मा में कृतिकार के व्यक्तित्व की छाप भी रहती है। दाऊदयाल गुप्त जी के साहित्य पर दृष्टिपात करने से पूर्व उनके व्यक्तित्व का सामान्य परिचय देना इसी कारण आवश्यक है। इस अध्याय में यही काम्य भी है।

1.1.1. वंश परिचय :----

श्री दाऊदयाल गुप्त जी ने मथुरा नगरी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में जन्म लिया है। मथुरा के लाल दरवाज़ा क्षेत्र में इनका पैतृक निवास है। घृत, किराना और खाद्यान्न की इनकी अच्छी - खासी दुकान थी। इनके पितामह श्री दामोदर दास मथुरा के उच्च - मध्य वर्ग के व्यक्ति थे, उनके जीवन काल में एक बार जब अनावृष्टि के कारण भयंकर अकाल पड़ा तब धनाभाव के कारण इनका व्यवसाय चौपट हो गया। अतः इनके पितामह दामोदरदास ने मथुरा त्याग कर हरिद्वार को अपने व्यवसाय का केन्द्र बना लिया। दामोदरदास जी का परिवार वर्ष में आठ माह हरिद्वार में रहता और शीतकाल के आगमन पर "लाला" जी अपने परिवार को मथुरा के अपने पैतृक निवास में भेज देते। स्वयं "लाला" जी भी पौष-माघ में मथुरा चले आते।

दामोदर दास जी के पुत्र श्री गौरीशंकर दाऊदयाल जी के पिता थे। ये अपने पिताजी के साथ हरिद्वार में ही रहते थे। "दामोदरदास गौरी शंकर" नाम से इन्होंने कपड़े का व्यापार स्थापित किया। इन्हें भी अपने व्यापार में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। अपने स्वभाव एवं अभिरुचियों के कारण लाला गौरीशंकर जी ने भी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा अर्जित की। ये गंगा के उपासक थे। इन्होंने छोटी - मोटी कविताएँ पौराणिक देवी देवताओं पर लिखा करते थे। इनकी रुचि पौराणिक थी। (1) स्थूलकाय होने के कारण लोग इन्हें "मोटे लाला" कहकर पुकारते थे। यह सम्बोधन लालाजी के लिए सुखद ही लगता। लाला जी "हरिद्वार समाज कमेटी" के अध्यक्ष और सेवा समिति के उपाध्यक्ष रहे।

दाऊदयाल गुप्त जी की माता श्रीमती बादमी देवी भरतपुर राज्य के कुम्हेर कस्बे के एक प्रसिद्ध परिवार "गलेवालिया परिवार" की

कन्या थी। बादमी देवी धार्मिक विचारों की उदारमना महिला थी। उन्होंने अनेक सन्तानों को जन्म दिया, जिसमें केवल तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ जीवित रहे। इनके बड़े पुत्र श्री मदनमोहन का विवाह हो चुका था। किन्तु वे सत्रह वर्ष की आयु में ही निःसन्तान स्वर्ग सिधार गये। दाऊदयाल जी उनके दूसरे पुत्र हैं। श्री बालकृष्ण उनके तीसरे पुत्र थे। दुर्भाग्य से श्री बालकृष्ण भी बाल्यावस्था में ही दिवंगत हो गये। दोनों पुत्रियों के विवाह हो गये थे।

1·1·2· <u>जन्म = संवत् :---</u>

श्री दाऊदयाल गुप्त जी का जन्म 19 नवम्बर 1915 ई·[संवत्1972] कार्तिक शुक्ला एकादशी_को प्रमुख वस्त्र व्यापारी लाला गौरी शंकर जी बजाज के पुत्र के रूप में हुआ था, दिन था बृहस्पतिवार, उन दिनों में दाऊदयाल जी के पिता हरिद्वार में रहते थे। परिवार में अन्य कोई महिला न थी। अतः प्रसव हेतु इनकी माता बादमी देवी भरतपुर जिले के कुम्हेर नामक कस्बे में अपने पिता के घर चली गईं। वहाँ श्री दाऊदयाल जी का जन्म हुआ।

1·1·3· <u>बाल्य - जीवन :---</u>

परिवार के सभी लोग दाऊदयाल जी को बहुत प्यार करते थे। दाऊदयाल गुप्त जी का बचपन हरिद्वार एवं मथुरा में बीता। इनके माता पिता वर्ष में आठ मास हरिद्वार में रहते थे। शीतकाल में दाऊदयाल गुप्त जी अपनी माता के साथ लगभग चार मास के लिए मथुरा चले जाते थे। इस प्रकार दाऊदयाल जी का बचपन बड़े लाड़ प्यार से बीता।

1.1.4. प्रारम्भिक शिक्षा :---

दाऊदयाल गुप्त जी की प्रारम्भिक शिक्षा सरकारी पाठशाला हरिद्वार में गुरुकुल पद्धति से हुई। इस विद्यालय में हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं, साथ ही साथ विद्यार्थियों को शारीरिक प्रशिक्षण, आत्मरक्षा एवं अग्निशमन के उपायों जैसी सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी। दाऊदयाल जी की आगे की शिक्षा इसी संस्था में हुई। विभिन्न विषयों की जानकारी के लिए गुप्त जी अपने गुरुजनों के घर जाया करते थे। बाल्यकाल तक अनेक भाषाओं, धर्म ग्रन्थों एवं व्यापारिक आवश्यकता के लिए उपयुक्त लिपि और गणित का उन्हें ज्ञान हो चुका था।[2] इनकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। अतः ये जो भी पढ़ते या सुनते वह अ इनके स्मृति पटल पर अंकित हो जाता था। इसी कारण इन्होंने जबतक विद्यालयों में पढ़ा, सदा कक्षा में प्रथम रहे एवं गुरुजनों के विशेष कृपापात्र रहे।

1.1.5. उपनयन संस्कार :---

मथुरा में उस समय संस्कृत और ज्योतिष साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित मिश्रीलाल अपने ज्ञान व पांडित्य के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। वे दाऊदयाल गुप्त जी के पारिवारिक पुरोहित थे। उनके चरणों में बैठकर गुप्त जी ने संस्कृत भाषा एवं साहित्य का गहन अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर गुप्त जी का उपनयन संस्कार भी उन्हीं के हाथों से सम्पन्न हुआ।

1.1.6. गाँधी से भेंट:---

गुरुकुल पद्धति पर स्थापित हरिद्वार की शिक्षा - संस्था में शिक्षा प्राप्त करते ही गुप्त जी के मन में देशभक्ति के भाव प्रस्फुटित होने

लगे थे। उस संस्था के संस्थापक अपने विद्यार्थियों को सदा देश भक्ति की ओर प्रेरित करते। प्राय: प्रतिदिन संस्थापक के नेतृत्व में विद्यार्थी नगर के किसी कोने अथवा किसी गाँव में जाकर देशभक्ति पूर्ण नारे लगाते। हरिद्वार में ही पूज्य बापू के आगमन के समय दाऊदयाल गुप्त जी भी उन्हें माल्यार्पण करने के लिए आकृष्ट हुए। गुप्त जी ने अपने हाथों से बापू जी के गले में माला डाली। बापू ने उन्हें देशभक्त होने का आशीर्वाद दिये। तभी से गुप्त जी ने स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आन्दोलनों एवं कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। पिता एवं अन्य बड़े लोग इनकी बाल्यावस्था देखकर इन कार्यक्रमों से अलग रहने का परामर्श देते, किन्तु उनके मन में स्वतंत्रता की आग और देशभक्ति की भावना जाग चुकी थी। गंगा तट पर नमक आन्दोलन के समय उन्होंने भी निषेध आज्ञा का उल्लंघन किया। [3]

1.1.7. <u>वैवाहिक जीवन</u> :---

दाऊदयाल जी की पत्नी श्रीमती रामदुलारी "हाथरस" की लड़की है। इनके पाँच भाई हैं, जो विभिन्न स्थानों पर रहते हैं। श्रीमती रामदुलारी धार्मिक रूढ़ियोंवाली उदारमना महिला है। दाऊदयाल जी का परिवार बड़ा है। इनके सात पुत्र हैं और चार पुत्रियाँ शारदा, कुसुम, सुमन व कुमकुम हैं। बड़े पुत्र श्री देवेन्द्रकुमार वकालत करते हैं और स्थानीय बी.एस.ए. कालेज में न्याय संकाय में प्रवक्ता हैं। दूसरे कृष्णमुरारी प्रकाशक हैं। गिरिधारी लाल और बनवारीलाल सरकारी नौकरी में हैं। नारायण, हरि सोने - चाँदी के आभूषणों के व्यवसायी हैं। शेष दोनों प्रेस के कार्य को देखते हैं।

दाऊदयाल जी पूरे परिवार के वट वृक्ष है, जिनकी छत्र छाया में सभी शाखा प्रशाखायें फूल फल रही है। इनकी वंशावली को निम्न तालिका के द्वारा दर्शाया जा सकता है ----

श्री दामोदर दास जी (पितामह)

श्री गौरी शंकर जी (पिता)

मदनमोहन जी (भाई) — दाऊदयाल — बालकृष्ण (भाई)

दाऊदयाल:

- देवेन्द्र कुमार
  - शैलेन्द्र
  - पराग
- कृष्ण मुरारी
  - विकास
- गिरिधारी लाल
  - सचिन
  - नितिन
- बनवारी लाल
  - विवेक
- नारायणहरि
  - निनय
  - कनिष्क
- गोविन्दहरि
- राकेश कुमार

गुप्त जी सम्प्रदाय की लकीरों में बंधे हुए व्यक्ति नहीं है, उनकी दृष्टि विशाल है। गुप्त जी कहते है ---"मैं किसी सम्प्रदाय में बन्धा नहीं हूं। सम्प्रदाय अलग है, धर्म अलग है। सम्प्रदाय को लोगों ने अपने अपने बनाये हैं। हर एक सम्प्रदाय अपने को पूर्ण और दूसरों को अपूर्ण समझता है। लेकिन धर्म तो एक है। " यतो निश्चय अभ्युदयनिश्रेयस सिद्धि: स: धर्म:" अर्थात् जिससे अभ्युदय होता है, मोक्ष मिलता है वही धर्म है। [4] इससे हमें धर्म के प्रति उनका अभिप्राय साथ - साथ उनकी विशाल दृष्टि का परिचय भी होता है।

1·1·8· अभिरुचियाँ :---

दाऊदयाल गुप्त जी को हिन्दी साहित्य में विशेष अभिरुचि है। विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं का ये नियमित अध्ययन करते हैं। मासिक "सरस्वती, "चाँद" एवं "माधुरी" जैसे साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि है। समाचार पत्र एवं साहित्यिक पत्र - पत्रिकाओं के अतिरिक्त महापुरुषों की जीवनियाँ, कथा कहानियाँ, उपन्यास और नाटक के आदि भी इनके अध्ययन क्षेत्र के विषय हैं। नाटक के प्रति इनकी अभिरुचि को क जगाने में " न्यू एल्फ्रेड थियेटर" के प्रदर्शनों का विशेष हाथ रहा। किशोरावस्था में प्रदर्शित नाटकों को देखकर इन्हें नाटक लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई, जिसके परिणाम स्वरूप इन्होंने अनेक नाटकों का सृजन किया। गुप्त जी को कविता पढ़ने - सुनने में विशेष आनन्द आता था। विभिन्न उत्सवों और गोष्ठियों में गीत और कविता गाने और सुनने के कारण इनको कविता लिखने की रुचि उत्पन्न हुई और 13 वर्ष की अल्पावस्था में ही इन्होंने कविता लिखना आरंभ किया।

1.1.9. कार्यकलाप :---

गुप्त जी सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी दृष्टिकोण के व्यक्ति हैं। समाज में मजहब के नाम से फैले दंगे, मार - पीट, लूट - लुटेरा पर अपना असंतोष अभिव्यक्त करते हुए गुप्त जी कहते हैं -- "इसका कारण हम पुराने नेतृत्व, उनके संदेश एवं आदर्श भूल गये हैं। यह बहुत बड़ी गलती है। फिर गुप्त जी यह संदेश देते हैं -----

रखो रे मन, सब जीवन सौं नेह
एक ब्रह्म की है यह माया
बानेइ राची देह।।
जात - पाँत बाके नहिं कोऊ
जलचर थलचर गेह।।
तुही राम, अल्लाह, गौड है
ध्यावत सबइ सनेह।।
इंगलिस्तान, अरब, भारत में
बरसत है राम नेह।।
"दाऊदयाल" सबइ प्रानिन कौ
अन्त एक ही गेह।।

[श्याम सतक - दाऊदयाल गुप्त पद 100]

गुप्त जी नवयुवकों को यह संदेश देते हैं ---"देश का भविष्य युवकों पर ही निर्भर है। आप लोग राष्ट्रहित में रहे, धर्म को छोड़ना नहीं, सम्प्रदायिकता के चक्कर में न पड़े, चेष्टा करते रहे। हमारा देश स्वतन्त्र बने रहे। साथ ही साथ भगवान के लिए समर्पित रहे।" गुप्त जी मथुरा नगर में समाज - सुधार की भावनाओं और विचारों को फैलाने के लिए " अग्रवाल - सेवा" नामक संस्था के संस्थापक सदस्य भी रहे।

इसके द्वारा सामाजिक कुरीतियों तथा मृत्युभोज, स्त्रियों द्वारा गालियों का गाया जाना आदि बंद कराने के लिए सफल प्रयास किये। सामाजिक क्षेत्र में सुधार की दृष्टि से "सुधार" नामक पत्रिका का भी प्रकाशन किया। "सेवा-समाज" नामक एक अन्य समाज सेवी संस्था से गुप्त जी का निकट सम्पर्क रहा और अनेक वर्षों तक आप उसके संस्थापक अध्यक्ष रहे। इस संस्था का मुख्य कार्य होली के अवसर पर की जानेवाली अश्लीलता एवं अभद्रता को समाप्त करना था। "कांग्रेस सेवा दल" एवं "क्षेत्रीय व्यवसायी समिति" में भी इनका कार्य सराहा जाता है। समाज सेवी दाऊदयाल जी से आज भी इस क्षेत्र में परामर्श एवं सक्रिय सहयोग मिलता रहता है। इनके इन विचारों के कारण ही ये जिलाजज के दुरी भी रहे।

गुप्त जी विदेशी शासन का सदा विरोध करते थे। सन् 1941 में अंग्रेज़ों के अत्याचार के विरुद्ध ऐक उपन्यास "भीषण हत्याकाण्ड" शीर्षक से लिखा जो कि छपते ही सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया। "इस घटना के कुछ दिन बाद ही गुप्त जी तथा मथुरा के एक अन्य प्रसिद्ध देश भक्त श्री राधेश्याम ज्योतिषी ने मिलकर "जनार्दन" नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। अगस्त सन् 1942 में ज्योतिषी जी के जेल चले जाने पर इस पत्रिका का सारा दायित्व दाऊदयाल जी पर आ गया। इनके सम्पादन काल में यह पत्रिका इतनी लोकप्रिय हुई कि इसे सप्ताह में दो बार प्रकाशित करना पड़ा। अंग्रेज़ी शासकों को गुप्त जी का यह कार्य कैसे भा सकता है? अतः तत्कालीन मथुरा के जिलाधीश "आर•एच•जी - जान्स्टन" ने इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द कर दिया। उन दिनों कुछ समय आपको भूमिगत भी रहना पड़ा।" [5]

स्वतन्त्रता के पश्चात् भी गुप्त जी राष्ट्रीय कांग्रेस एवं उसकी गतिविधियों में जुड़े हुए हैं। गुप्त जी स्वयं कहते हैं —— "मेरी विचार धारा कांग्रेस की विचारधारा है, उसके लिए समर्पित भी हूं।" [6]

साहित्यिक कार्यकलापों में गुप्त जी बाल्यकाल से ही रुचि लेते रहे। हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी आदि के कवि सम्मेलनों में भाग लेते थे तथा मथुरा में इनके ये कार्यकलाप और अधिक बढ़ गये। नगर का प्रमुख साहित्यिक संस्थाओं, लेखक संघ, काव्यालोक, ब्रज साहित्य सम्मेलन, भारती अनुसंधान भवन, रस भारती एवं बाबू वृन्दावनदास हिन्दी संस्थान के साथ गुप्त जी सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं। मथुरा एवं आस - पास के स्थानों पर होनेवाली गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों में ये नियमित रूप से भाग लेते हैं।

गुप्त जी ने पत्रकारिता एवं प्रकाशन को अपना व्यवसाय बनाया। पत्रकारिता के क्षेत्र में सन् 1940 के पूर्व ही पदार्पण कर चुके थे। आप जनार्दन, प्रजातन्त्र और ब्रजकेसरी आदि अनेक पत्र पत्रिकाओं के सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक रहे हैं। अपनी निर्भीक एवं सच्ची पत्रकारिता के कारण ये मथुरा जनपद के प्रमुख पत्रकारों में गिने जाते हैं। आप जिला पत्रकार संघ के अध्यक्ष पद पर वर्षों तक आसीन रहे हैं। आपका स्थाई निवास घुड़हाई बाज़ार, मथुरा [उत्तर प्रदेश] है।

1•2• <u>रचना संसार</u> :---

दाऊदयाल गुप्त जी के साहित्य सृजन की प्रेरणा का श्रेय आपके पिता लाला गौरीशंकर जी को है। वे अवकाश के समय में संगीत साधना एवं लोक गीत लिखने में बिताते थे। कीर्तन एवं सत्संग तथा साहित्यकारों के सम्पर्क में आकर दाऊदयाल जी का कवि एवं साहित्यकार रूप धीरे - धीरे जागृत होता गया।

गुप्त जी का पहला नाटक "भयंकर पतन" 1932 -33 में प्रकाशित हुआ। इससे गुप्त जी ब्रिटिश सरकार के क्रोध के भाजन बने। इसकी सभी प्रतियाँ प्रतिबन्धित कर दी गयी। बाद में वही नाटक कुछ संशोधनों के साथ " देश के दुर्दिन" नाम से प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् सामाजिक,

ऐतिहासिक एवं पौराणिक विषयों पर गुप्त जी ने अनेक नाटक लिखे। जिनमें "पति भक्ति, यौवन का नशा, महाभारत, दानवीर कर्ण, महालक्ष्मी, सम्राट अशोक और वामनावतार आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका मंचन भी हुआ था।

नाटकों के अतिरिक्त गुप्त जी ने अनेक महापुरुषों एवं राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियाँ लिखी हैं। स्वामी दयानंद, वीर शिवाजी, झान्सी की रानी, महाराजा प्रताप और सरदार भगतसिंह आदि आपकी लेखनी से निकले हैं।

गुप्त जी ने नाटकों के साथ ही उपन्यास साहित्य के विकास में योगदान किया है। इन्होंने सामाजिक घटना तथा कौतुक प्रधान दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे। "फाँसी का तख्ता," "फाँसी", "खूँखार आदमी", "बम फटी", "भीषण हत्याकाण्ड" आदि अनेक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। गुप्त जी ने हास्य प्रधान एवं बालोपयोगी उपन्यास भी लिखे हैं। हास्य सम्बन्धी उपन्यासों में "घंटामसिंह पाण्डे" बहुत प्रसिद्ध हुआ, झग्गू बाबू, रंग-बिरंगे प्रेत इनके बालोपयोगी उपन्यास है।

उपन्यास के साथ कहानी लिखने में भी गुप्त जी पीछे नहीं रहे, इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं, जिनमें कुछ का प्रकाशन मासिक पत्रिकाओं एवं कुछ का प्रकाशन विभिन्न लेखकों के कहानी संकलनों में हो चुका है।

सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं देशभक्तिपूर्ण साहित्य से भी अधिक गुप्त जी ने धार्मिक साहित्य का सृजन किया है। गुप्त जी हिन्दू धर्म के प्रति अडिग आस्था रखनेवाले हैं। गुप्त जी कहते हैं —— "मैं कट्टर हिन्दूवादी हूँ, सन् 1927 में ही मेरे विचार हिन्दूराष्ट्र की ओर थे। मथुरा में "हिन्दू राष्ट्र पत्र" का आरंभ मैं ने किया। अगर हिन्दू धर्म के प्रति अडिग आस्था न रखनेवाला है तो क भगवान के लिए

कैसे समर्पित रहता? समस्त हिन्दू देवी - देवताओं को मैं ने नमन किया। लेकिन इनमें मेरे आराध्य भगवान श्रीकृष्ण हैं, आखिर मेरा नारा है --- "कृष्णं शरणं गच्छामि"!7 !

गुप्त जी ने प्रात: कालीन उपासना के लिए नित्य पाठ सिरीज प्रकाशित की है, जिनमें श्री हनुमान शतक, श्री महालक्ष्मी शतक, श्री गायत्री शतक, दुर्गाशतक, सन्तोषी शतक, राधा शतक, कृष्ण शतक और शिव शतक प्रकाशित हैं। वेद, उपनिषद, दर्शन, पुराण एवं योग के अनेक महत्वपूर्ण अनुवाद एवं भाष्य भी उन्होंने किये हैं। इनमें से योग सम्बन्धी ब्रज भाषा का "योग गीतांजलि" एवं खड़ीबोली की योग गीतामृत प्रमुख हैं। इन्होंने बहुत सा मौलिक - भक्ति - साहित्य भी लिखा है। इनमें "भक्ति योग एवं गायत्री योग" प्रमुख हैं। प्रवचनात्मक भक्ति साहित्य की एवं श्रृंखला आठ खण्डों में लिखी है, जिनमें से "प्रभु का द्वार संकीर्तन, संकीर्तन के सप्तद्वार, संकीर्तन महायोग, संकीर्तन से समाधि एवं संकीर्तन से कुण्डलिनी जागरण प्रकाशित हो चुकी हैं। इस श्रृंखला की पुस्तकों में गुप्त जी ने भक्ति एवं योग का समन्वय सिद्ध करने का प्रयास किया है।

गुप्त जी ने 50 से लगभग संगीत रूपक भी लिखे हैं, इनका प्रसारण आकाशवाणी के मथुरा वृन्दावन तथा दिल्ली केन्द्रों से हो चुका है। आयुर्वेद सम्बन्धी भी वृहद् सामग्री गुप्त जी ने प्रकाशित कराई है। इस सामग्री से बड़े - बड़े चिकित्सक भी लाभ उठा रहे हैं।

गुप्त जी विश्व संकीर्तन परिवार के संस्थापक, अध्यक्ष हैं, जिसकी देश भर में लगभग 70 शाखाएं हैं, जहाँ प्रवचन, भजन, कीर्तन आदि के आयोजन होते रहते हैं।

उक्त सभी प्रकार के साहित्य से भी अधिक महत्वपूर्ण गुप्त जी की मौलिक काव्य कृतियाँ हैं। काव्य के द्वारा भक्ति साहित्य की परम्परा

में इन्होंने एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ दी है। इनमें से इस शोध से सम्बन्धित भक्ति सम्बन्धी काव्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है।

1•2•1• कृष्णभक्ति सम्बन्धी काव्यों का परिचय:---

1•2•1•1• श्रीकृष्ण चरितमानस :----

श्री द्वारकादयाल गुप्त जी की महोत्कृष्ट रचना "श्रीकृष्ण चरित - मानस" आठ काण्डों में 812 पृष्ठों में विराजमान है। यह महाकाव्य ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति सम्बन्धी आधुनिक काव्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। यह दोहा - चौपाई शैली में है। गुप्त जी की यह रचना वेद - वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत्, देवी भागवत्, महाभारत आदि समस्त निगमागम शास्त्रों का सार रूप है, शैली की दृष्टि से यह तुलसी के रामचरितमानस के अनुरूप है, इस काव्य के नायक ईश्वर के अवतार लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण है और नायिका सर्वेश्वरी राधा है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर अवतार समाप्ति तक के सम्पूर्ण कृष्ण चरित्र का मनोहर ढंग से वर्णन किया गया है। कृष्ण के जीवन चरित्र से सम्बन्धित प्राय: सभी पौराणिक घटनाओं को कवि ने अपनी भावुकता से सजीव बना दिया।

कृष्ण चरित मानस में एक सफल प्रबन्ध काव्य की विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं, काव्य कौशल, शीलचित्रण की पटुता, प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग, प्रकृति चित्रण, मार्मिक घटनाओं की सजीवता आदि कई विशेषताएँ इस महान ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

यह महाकाव्य आठ काण्डों में विभक्त है, ये काण्ड हैं -----

1• अवतरण काण्ड 2• लीलाकाण्ड 3• मथुरा काण्ड
4• द्वारिका काण्ड 5• इंद्रप्रस्थ काण्ड 6• गीता काण्ड
7• कुरुक्षेत्र काण्ड 8• उत्तर काण्ड।

इस प्रकार सम्पूर्ण कृष्णचरित्र की कथा के माध्यम से आठ काण्डों में विभाजित करना तथा उन काण्डों का सटीक नामकरण करना गुप्त जी की अद्भुत प्रतिभा का एक निदर्शन है।

इस महान काव्य का नायक और नायिका श्रीकृष्ण और श्रीराधा है। गुप्त जी श्रीकृष्ण के बारे में अपना मंतव्य प्रकट करते हैं कि भगवान कृष्ण का लोकरंजक चरित भारतीय साहित्य में अमर है। महाभारत से लेकर परवर्ती संस्कृत रचनाओं में तथा भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में श्रीकृष्ण के विविध चित्र मिलते हैं। व्रज के गोपीवल्लभ कन्हैया, गीता के महान उपदेशक, पाण्डव सारथि और द्वारिका के पुरुषोत्तम के नायक कृष्ण वास्तव में एक ही हैं। श्रीकृष्ण के तीनों रूप मर्त्यलोक की मधुरता, द्युलोक की महानता और सागर की गम्भीरता के प्रतीक कहे जा सकते हैं, जिनका समन्वयात्मक रूप उस महान व्यक्तित्व के रूप में जन सुलभ हुआ, जिसे हम कृष्ण कहते हैं। {8} वही पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण गुप्त जी का आराध्य भगवान है।

गुप्त जी के कृष्ण पुरुषोत्तम, घट घट व्यापक, अन्तर्यामी, अज, अनंत, अद्वैत ब्रह्म हैं। वही जगहित में सगुण धारण कर गोलोक में विराजमान है ----

ब्रह्म अगोचर अज अविनाशी
  परमानंद सकल सुखराशी
सगुण रूप सोई जगहित काजा
  सहित प्रकृति गोलोक विराजा
तहँ परब्रह्म सगुण करिवासा
  कृष्ण नाम जेहि जगत प्रकासा।।

{श्रीकृष्ण चरित मानस -दाऊदयाल गुप्त
अवतरण काण्ड, पद -5}

यही कृष्ण दुष्टशिक्षण, शिष्ट रक्षणार्थ प्रकृति सहित पृथ्वी पर अवतार लेता है। उनकी आराधिका, प्राणप्रिया, सर्वेश्वरी राधा भी उनके साथ जन्म लेती है। गुप्त जी राधा और कृष्ण को अभिन्न मानते हैं---

प्रकृति पुरुष इक देह सँभारी, दच्छिन वाम अर्ध नर नारी
इच्छा करहिं सर्ग हित सोई, मूल प्रकृति का उद्भव होई
सोई प्रभु होहिं पृथक दो देही, कृष्ण राधिका परम सनेही।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस--अवतरण काण्ड पद 13]

दाऊदयाल जी ने अपने इस प्रसिद्ध काव्य में श्रीकृष्ण के सभी रूपों को मनोहरता पूर्वक चित्रण किया। एक जगह वह माँ यशोदा के प्यारे कन्हैया है, एक जगह वह गोपियों सहित रास मनानेवाले रासेश्वर है, एक जगह अर्जुन को कर्म - धर्मोपदेश देनेवाले योगेश्वर है, एक जगह दुष्टों का दमन करनेवाले दुष्ट संहारक है तो एक जगह भक्तों के अभय प्रदाता है। यशोदा के प्यारे कन्हैया को देखिए ---

ठुमकि ठुमकि पग धरहि मुरारी, होइ मुदित तेहिं लखि महतारी।
ग्वाल बाल संग रहि दिन राती। नित उत्पन्न करहि बहु भाँति।।

[श्रीकृष्ण चरित मानस - अवतरण काण्ड पद-177]

अर्जुन को धर्मोपदेश देनेवाले वह योगेश्वर कृष्ण के वचन सुनिए -----

"कर्ममात्र अधिकार तव फल महँ किंचित नाहिं।
विरत होउ जनि कर्म सन प्रीति न रखु फल माहिं।""
विषयन्ह महँ आसक्ति न लहही। सिद्धि असिद्धि दुहुन सम रहही।
रहि योगस्थ कर्मरत होई। योग समत्व कहावै सोई।"

[श्रीकृष्ण चरित मानस - गीताकाण्ड, दूसरा अध्याय
श्लोक 47,48]

गुप्त जी ने अपने इस महाकाव्य में कृष्ण प्राणाधिदेवी "राधा" का चित्रण भी मनोहरता पूर्वक किया। इन्होंने अपने काव्य में राधा के सभी रूपों [सर्वेश्वरी,रूप, हलादिनी शक्ति रूप, रासेश्वरी इत्यादि] का वर्णन किया है। स्वयं गुप्तजी के कृष्ण राधा का सर्वेश्वरी रूप का वर्णन करते हैं -----

"तुम्ह जननी स्वामिनी सब केरी। नरतत जग तव इंगित हेरो
सारद रमा उमा इंद्रानी। दुर्गा काली रूप भवानी।
विद्या माया सीता स्यामा। सत्या कालिंदी सत्यभामा।
रुक्मिनी आदि नारि जग जोऊ। सो सब प्रिये अंस तव होऊ।"
[श्री कृष्ण चरितमानस -द्वारिका काण्ड पद-192]

गुप्त जी के इस महान काव्य का प्रधान पात्र राधा और कृष्ण होते हुए भी अनेक गौण पात्र भी हैं - देवकी, वसुदेव, कंस, यशोदा, नंद, अर्जुन, उद्धव, भीम, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण इत्यादि गुप्त जी ने लगभग महाभारत और भागवत के सभी पात्रों का चित्रण इस काव्य में किया है। पात्रों के चरित्र चित्रण में गुप्त जी को पूर्ण सफलता मिली।

नवरस भरित इस महाकाव्य की कथा में नवीनता है। गुप्त जी ने मुख्यतया महाभारत, भागवत् एवं गीता इन तीनों महान ग्रन्थों के सार को एकत्रित करके उसे अपने इस महान काव्य में भर दिया है।

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ है किन्तु उनका लालन-पालन ब्रज में नंद - यशोदा की गोद में हुआ। कंस वध करने हेतु कृष्ण मथुरा जाकर वहीं रह जाता है, यशोदा - नंद को वह भूल जाता है। फिर कभी ब्रज वापस नहीं आता - साधारणतया कृष्ण पर यह आरोप लगाया जाता है।

गुप्तजी ने अपने काव्य में कृष्ण को इस आरोप से बचा लिया है। गुप्त जी के कृष्ण मथुरा में राज्यभार का निर्वाह करते हुए भी अपने माता-पिता यशोदा - नंद के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखता है। उनका कुशल समाचार जानने के लिए एक बार अपने मित्र उद्धव को व्रज भेजता है। ‖9‖ एक बार बलराम को। फिर कुरुक्षेत्र में पत्नी सहित नंद - यशोदा से मिलकर उनका आशीर्वाद लेता है। ‖10‖ फिर उग्रसेन द्वारा अश्वमेध यज्ञ कराते समय स्वयं व्रज जाता है। ‖11‖ आखिर अवतार समाप्ति के समय भी व्रज में प्रकट होकर राधा सहित नंद - यशोदा को अपने साथ अलौकिक गोलोक ले जाता है। ‖12‖

इस प्रकार कथा में नवीनता है, शैली में प्रवाह है। यह काव्य मुख्यतया भक्तिपरक होते हुए भी इसमें ज्ञान, वैराग्य, नीति सम्बन्धी कई विषयों का संयोजन हुआ है। डॉ॰राजेन्द्रकुमार अग्रवाल जी ने अपने शोध प्रबन्ध "दाऊदयाल गुप्त के काव्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन" में इस महाकाव्य के बारे में लिखा है ----- "कृष्ण के जीवन चरित्र से सम्बन्धित प्राय: सभी पौराणिक घटनाओं को कवि ने अपनी भावुकता से सजीव बना दिया है। अनेक अन्तर कथाओं का समायोजन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह महाकाव्य व्रजभाषा में आधुनिक युग की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। ‖13‖

रससिद्ध कवियों की वाणी तो अनायास ही अर्थ - गौरव से मण्डित होती है। अत: गुप्त जी के काव्य का अर्थ गौरव से मंडित होना स्वाभाविक ही है। अर्थ गौरव की योजना का मुख्य आधार कवि की अतुल भावुकता होती है। इसमें संदेह नहीं कि गुप्त जी का सम्पूर्ण काव्य भावावेशों का ही सहज उन्मीलन है। इसीलिए इनका काव्य सर्वत्र अर्थ गौरव से सम्पृक्त है।

गुप्त जी के प्रमुख प्रतिपाद्य है - आत्मनिवेदन, वात्सल्यवर्णन और श्रृंगार वर्णन। आत्मनिवेदन में भक्त के वे भाव व्यक्त होते हैं, जिनमें प्राय: अपने आराध्य की महिमा का तथा अपनी दीनता का वर्णन करता है। जब गुप्त जी अपने आराध्य देव कृष्ण की महिमा का गुण - गान करते हैं तो इनके हृदय की समूची आस्था सहज रूप से मुखरित हो जाती है, यथा ---

"करुना निधे बिनु आपके को और भैरासंकट हरै।।
प्रह्लाद अंक बिठाइ बैठी अगिनि महँ जब निसिचरी।"
नहिं बार बंक निसंक गावत गाथ गुन गरिमा भारी।
प्रनपाल दीनदयाल भीषन ज्वाल तुम्ह सीतल करी।
नारसिंह रूप बनाइ हसिपराइ संहारेउ छिनो।
गजराज की सुनि टेरि तेहि रच्छा करी तुम्ह ग्राह सों।।
पद तीन धरि सब नापि तिरलोकी लई बलनाह सों।
एहि भाँति लखि निज जन बिपनि महँ आपु दौरे जावते।।"

[श्री कृष्ण चरित मानस - इन्द्रप्रस्थ काण्ड पद-56]

निस्संदेह, इन पंक्तियों में भक्त का ही हृदय बोल रहा है, हृदय की सहज स्वाभाविकता ही तो अर्थ गौरव की जननी है। कृष्ण की लीलाओं के तथा यशोदा की मन:स्थिति के वर्णन तो और भी अधिक स्वाभाविक बन पड़े हैं। यही कारण है कि इनमें सर्वत्र अर्थ - गौरव निहित है। वियोगावस्था में गोपियों ने अपनी विरह - दशा को व्यक्त करने के लिए कृष्ण को अनेक प्रकार के उपालम्भ दिये हैं ---

"तुम्हहु भ्रमरहि स्वारथ माहीं। देखहु जग परहित कछु नाहीं।
कलिका कलिका कर रस पोषा। आपुनु तन तोषा मन तोषा।
जब तुम तेहि लखि हहु मुरझाई। तब नव कलिका खोजहु जाई

पुनि गुंजरत दिखावहु माया। धोवहु प्रान करहु नहिं दाया।
एहि प्रकार कुकरम बहु कीन्हा। तुम असंख्य कलि जीवन लीन्हा।"

[श्रीकृष्ण चरित मानस – मथुराकाण्ड पद–109]

गोपियों की इस उक्ति में कृष्ण के प्रति उनकी अनन्यता तथा अपार निष्ठा की अभिव्यक्ति ही अभीष्टार्थ है। इस प्रकार गुप्त जी का समग्र काव्य अर्थ – गौरव की गुरुता से सुमंडित है।

इस प्रकार "श्रीकृष्ण चरित मानस" अगाध है, उसके प्रत्येक प्रसंग पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। " श्रीकृष्ण चरित मानस" के इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात् कुछ एक पंक्तियों में उसके शिल्प का इंगित मात्र यहाँ अनुचित न होगा। रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा का तो कृष्ण चरित मानस अगाध सागर है ही, वाक्य सौष्ठव, अनुप्रास की प्रांजलता भी यहाँ न्यून नहीं है। प्रकृति वर्णन में बारहमासा , ऋतुवर्णन, कोकिला, मोर, पपीहा आदि सबका वर्णन दाऊदयाल गुप्त ने किया है। प्रकृति का परंपरागत वर्णन तो है ही, साथ ही उसकी नवीन भावनापरक वर्णन भी यहाँ उपलब्ध है।

इस प्रकार गुप्त जी से विरचित "श्रीकृष्णचरितमानस" कृष्ण भक्ति सम्बन्धी आधुनिक युग के ब्रज साहित्य भण्डार की अमूल्य निधि है। इस काव्य का "मानस संस्थान, मथुरा " ने प्रकाशित किया। इसका प्रथम संस्करण 1983 में द्वितीय संस्करण 1986 में, तृतीय संस्करण 1990 में निकला।

1•2•1•2• <u>राधा</u> :---

"राधा" शीर्षक महाकाव्य 12 सर्गों में 280 पृष्ठों में "खड़ी बोली" में गुप्त जी द्वारा विरचित है। इस ग्रन्थ के प्रधान पात्र राधा और

कृष्ण है, फिर भी कृष्ण से भी अधिक प्रधानता राधा को दी गयी है। "राधा" का चरित्र चित्रण करने में आपने गर्ग संहिता एवं ब्रह्म वैवर्त पुराण का आश्रय लिया है। मुख्यतया गर्ग संहिता के आधार पर उन्होंने राधा के चरित्र का चित्रण किया है।

इसका परिचय कराते हुए ग्रन्थ की भूमिका में उत्तरप्रदेश के पुरातत्व अधिकारी आचार्य कृष्णदत्त वाजपेयी जी ने लिखा है ---- "राधा कृष्ण विषय प्राचीन परम्परा एवं आधुनिक विचारधारा के बीच मध्यम मार्ग का अनुसरण कर जहाँ एक ओर लेखक ने रूढिगत धार्मिक विचारों की रक्षा की है, वहाँ उसने वर्तमान की भी उपेक्षा नहीं की है। इस काव्य में वर्ण्य विषय के अनुरूप विविध छन्दों का चुनाव किया गया है।" ‖4‖ विरह के उपरान्त मिलन कराना राधा महाकाव्य की अपनी अपूर्व विचित्रता है।

गुप्त जी ने अपने इस महाकाव्य में राधा का सर्वेश्वरी, ह्लादिनी शक्ति, कृष्णप्रिया, भक्ति का प्रतीक आदि स्वरूपों का चित्रण अद्भुत ढंग से किया है।

गुप्त जी राधा और कृष्ण को अभिन्न मानते हैं। राधा, कृष्ण से पृथक नहीं, वह साक्षात् आदिमाया और वृषभानु कन्या है ----

"गोलोक स्वामी यदि आप हैं तो
यह आदिमाया राधा, न अन्या।
यदि आप नारायण पूर्ण ईश्वर
साक्षात् लक्ष्मी, वृषभानु कन्या।
जब आप रघुकुल के राम थे, तब
हे नाथ! यह थी गुण खान सीता।
हैं आप जग के उत्पत्ति कर्ता
यह मुक्तिदायी सरिता पुनीता।"‖
‖राधा महाकाव्य-द्वारकाप्रसाद गुप्त पृ. 85‖

राधा और कृष्ण के दो देह होते हुए भी प्राण एक है। §15§ वह अजर, अज, व्यापक, अनन्त सगुण तथा निर्गुण हैं ---

"अजर अज व्यापक और अनंत, सगुण निर्गुण दोनों गुण धाम।
कृष्ण - राधा जब होते एक, पूर्ण बन जाते राधे श्याम।।"

§राधा पृ-79§

राधा साक्षात् आदिशक्ति है और वह मथुरा के उस पार गोकुल के पास ब्रज वन में "रावल" ग्राम में अवतार लिया है। §16§ भादों मास की अष्टमी को रात्रि के ढलने पर वृषभानु के घर सबके सुखदायक राधा का जन्म हुआ। §17§ राधा जन्म से ही ऐसी रूपवती थी कि ब्रज बालाएँ वश में हो गई और कहने लगीं कि ऐसा रूप ही नहीं देखा। उनकी उपमा चन्द्रमा के साथ उचित नहीं। §18§

चतुर्थ सर्ग में राधा के अंगों का श्रृंगारिक वर्णन इस प्रकार किया गया है ---

"लिये थी कर में सुन्दर पद्म, छोड़ता था जो सुखद सुवास।
कंठ में दिव्य - पुष्प का हार, अधर पर नृत्य कर रहा हास।।
श्याम केशों के गुँथे गुलाब, लगें ज्यों नभ - तम में नक्षत्र।
लजाता मुख को देख मयंक, खिला जिसका प्रकाश सर्वत्र।।
भाल पर शोभित बिन्दी लाल, लालमय कुण्डल थे अभिराम।
नासिका पर था मुक्ता श्वेत, अधर थे लाल वर्ण भ्रू श्याम।।
सुग्रीवा सुन्दर गोल कपोल, रचा था मुख में नागर पान।
रंगिनी से रंजित कर - कंज, सदा देते आये वरदान।।"

§राधा - पृ 78§

जब वृषभानु महाराज राधा का विवाह कराने योग्य वर के लिए सोचता है तब गर्गाचार्य उसे समझाते हुए कहते हैं ---

"हुता साक्षात् प्रकृति का रूप, रही जो परम पुरुष के साथ।
कृष्ण ही इसके जीवन प्राण, वरेंगे इसे वही ब्रज नाथ।"
(राधा पृ 70)

राधा की स्वकीया और परकीया सम्बन्धी धारणा के सम्बन्ध में गुप्त जी ने प्राक्कथन में स्वयं लिखा है ---"राधा को कुछ लोग परकीया भी मानते हैं, परन्तु ब्रज की सभी मुख्य सम्प्रदाय भगवान श्रीकृष्ण की स्वकीया के रूप में उनकी आराधना करते हैं। "गर्गसंहिता" में भी भांडीरवन में ब्रह्म के द्वारा राधा - कृष्ण विवाह का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में, मैं भी उन्हें प्रभु की स्वकीया मान कर चला हूं।"(19)

गुप्त जी के कृष्ण लोक लाज और मर्यादा के खण्डन करनेवाले नहीं अपितु लोक में चली आती हुई पद्धति पर आचरण करनेवाले हैं।(20) ब्रह्म के कथन पर वे विवाह को उद्यत हो जाते हैं। एक वितान रचा हुआ है, जिसमें मणि मण्डित खम्भे लगे हैं। समस्त सामग्री वहाँ एकत्र है। मण्डप के मध्य सिंहासन पर राधानाथ बैठकर अपने करों से प्रिया का पाणिग्रहण करते हैं। (21) मंत्रोच्चारण के साथ सात प्रदक्षिणाएँ होती हैं। राधा जयमाला डालती है और कृष्ण हार डालते हैं। ब्रह्मा कन्यादान करते हैं ---

"हुआ सब धर्म - रीति - अनुसार, पूर्ण वैवाहिक कार्य - विधान।
पिता के तुल्य समर्पण युक्त, किया ब्रह्मा ने कन्यादान।।"
राधा पृ-87.

गुप्त जी चतुर्थ सर्ग में यमुना कूल पर कृष्ण और राधा के विनोद संबंधी प्रसंगों का भी वर्णन किया है।

राधा भारत की उस पतिव्रता नारी के समान है जो अपने पति की बुराई भी श्रवण करना नहीं चाहती। एक सखी के कहने पर कि कृष्ण चुरा - चुरा कर दधि माखन खाता और ब्रज वन में धूर्त लुटेरा कहलाता है। तब राधा उससे कहती है ---

"हे सखी! नहीं है उचित अधिक कुछ कहना।
होगा मेरा दुर्भाग्य बुराई सहना।"]

[राधा पृ-114]

श्री दाऊदयाल गुप्त जी की राधा की यह विशिष्टता है कि कृष्ण स्वयमेव राधा को विरहिणी नहीं देख सकते। वे अपने आने का संदेश ही नहीं भेजते स्वयमेव आकर राधा को कृतार्थ भी करते हैं। यह राधिका कृष्ण के बिछुड़ने पर दुखी क्यों न होती? उसके विरह के घाव हो गए हैं और दिन रात रोते - रोते ही काटती हैं। कृष्ण, कंस वध करने अक्रूर के साथ चले जाने की बात सुनकर राधा की क्या दशा होती है---

"प्राण नहीं रह पायेंगे, उड़ जायेंगे घनश्याम जहाँ।
जीवन धन के बिना, हाय! मन पायेगा विश्राम कहाँ?"

[राधा पृ-181]

कृष्ण के रथ पर चले जाने पर वह अचेत हो जाती है। कृष्ण के मुख मोड़ने और उसके अन्तस् को पीड़ा देने पर वह कहती है ---

"बिना श्याम सुन्दर के लगता। सूना यह सारा संसार।
पार लगाये कौन इसे, यह जीवन नैय्या है मँझ धार।"

[राधा पृ 193]

कृष्ण विरहिणी राधा कहती है --"हे मनमोहन नन्दनंदन! यदि तुम शीघ्र नहीं आओगे तो राधा को जीवित नहीं पाओगे।[22] कृष्ण विरहिणी राधा अपनी मानसिक स्थिति को स्पष्ट बताती है ---

"बिना प्राण वल्लभ के मुझ को कुछ भी नहीं सुहाता है
एक एक क्षण वर्ष बना है। आह! नहीं कट पाता है।।"
§ राधा पृ. 240 §

एकादश सर्ग में राधा चिन्ताओं में अपने आपको भूली हुई है। इतने में एक ब्रजबाला राधा के पास उद्धव को लेकर आती है। उद्धव कहते हैं कि कृष्ण ने कहा है कि राधा दुःखी न हो, मैं शीघ्र आ रहा हूँ---

"कहा उन्होंने कहना जाकर, राधा से दुःख - मस्त न हो
शीघ्र आ रहा हूँ ब्रज वन में, चिन्ता में वे ग्रस्त न हो ।।"
§ राधा - पृ. 262 §

आखिर राधा - कृष्ण का मिलन हुआ। राधा, कृष्ण को सामने से आता हुआ देख प्रसन्न हो उनके चरणों पर गिर पड़ती है। नटवर उसे अपने करों में उठाकर बोले -----

"बोले हे प्रिये! तुम्हारी। आकुलता सुनकर आया
यह कैसी दशा बनाई, कुम्हलाया जीवन यौवन
लगता है मुझे - बना अब, यह उपवन, पूर्ण तपोवन।।"
§ राधा पृ. 271 §

उनके मिलन की सुन्दर छवि को देख सब प्रसन्न होते हैं, जिसका गुप्त जी ने इस प्रकार वर्णन किया -----

"क्या उपमा दें नहिं जान पड़े, उपमाओं से उपमेय बड़े,
यह सोच रहे सब खड़े खड़े, थे व्यर्थ कोष सब बड़े - बड़े।।"
§ राधा पृ. 277 §

सब राधा - माधव की जय बोलते हैं और माधव भी "राधा - राधा" बोल उठते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि कवि ने अपने काव्य में कृष्ण से अधिक राधा को महत्ता प्रदान की है ---

"राधा - माधव शब्द यही अनमोल उठे।
माधव भी सब राधा राधा बोल उठे।।"
[राधा पृ. 277]

श्री द्वारिका प्रसाद मीतल जी इस काव्य में वर्णित राधा स्वरूप पर विचार प्रकट करते हैं। "राधा के चरित्र में जहाँ दाऊदयाल जी ने गर्गसंहिता, श्रीमद्भागवत, गीत गोविन्द आदि अन्य ग्रन्थों का आश्रय लिया है। वहाँ राधा कृष्ण का मधुर मिलन कराकर अपूर्व नवीनता एवं विलक्षणता का भी सम्मिश्रण कर दिया है।"[23]

डॉ॰राजेन्द्रकुमार अग्रवाल ने इस काव्य के बारे में अपना मंतव्य प्रकट किया है --"दाऊदयाल जी ने "राधा" महाकाव्य में राधा के व पौराणिक महत्व के साथ उसके व्यक्तित्व की पूर्ण झाँकी प्रस्तुत की है। इस काव्य में कवि की नारी भावना, उसका विरह एवं लोक कल्याण की कामना के साथ ब्रज के महत्व एवं अनेक विषयों पर कवि के व्यक्तिगत विचारों का प्रकाशन हुआ है। खड़ीबोली भाषा में लिखे गये इस काव्य की अनेक पंक्तियाँ पाठक को अपने में रमा लेती हैं।"[24]

इस प्रकार गुप्त जी का यह काव्य सुन्दर बन पड़ा है। साथ ही साथ आधुनिक खड़ीबोली साहित्य भण्डार में अनेखिक एक विशिष्ट स्थान पाया है।

1•2•1•3• <u>महारास</u> :----

श्रीमद्भागवत् की रास पंचाध्यायी रस रूप महासागर की अद्भुत निधि है। संस्कृत भाषा में लिखित इस रास पंचाध्यायी को सरल ब्रजभाषा में छन्दोबद्ध करने की इच्छा गुप्त जी को हुई उसी मनोकामना का फल स्वरूप ही इस महाकाव्य "महारास" का सृजन हुआ।

ब्रजभाषा में रचित यह महाकाव्य अपने ढंग का अनूठा है, इसमें गोलोक और नित्य वृन्दावन का वर्णन स्वानुभूति और शास्त्रों के आधार पर ही किया गया है। ब्रज भाषा का प्रयोग भी द्रुतविलम्बित, शालिनी, भुजंग प्रयात, त्रोटक, वसन्ततिलका, शिखरिणी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, विबुधप्रिया, द्रुतमध्या एवं शार्दूल विक्रीडित इन ग्यारह शास्त्रीय छन्दों में हुआ है। सौ पृष्ठों में, पाँच अध्यायों में रचे गये इस काव्य में मूलत: "रास" वर्णित हुआ है। "राधा - कृष्ण के सम्बन्धों में "रास" एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। रास का एक पौराणिक रूप है तो दूसरा भावात्मक। कवि ने इन दोनों को मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया है।" [25]

हेमन्तऋतु के प्रथम मास में नन्द जी के ब्रज की कन्याओं ने हविष्यान्न को खाकर भगवती कात्यायनी देवी के पूजार्थ व्रत धारण किया। वस्तुत: रासलीला की पृष्ठभूमि का आरम्भ यहीं से हो जाता है। उनके व्रत का उद्देश्य था कि पति रूप में भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति। गोप कन्याओं ने पूरे एक वर्ष तक कात्यायनी देवी का व्रत के अनुष्ठान करने के पश्चात् जिस दिन उसका उद्यापन किया, उस दिन वे यमुना स्नान करने गयीं, उनकी इस साधना में कितनी श्रद्धा थी तथा उनका अधिकार परिपक्वावस्था में पहुँच गया था अथवा नहीं, इसकी परीक्षा करना उचित समझकर भगवान ने उनके चीर हरण का निश्चय किया और स्नान के समय उनके वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर जा बैठे। "भगवान जानते थे कि ब एक वर्ष पर्यन्त व्रत का

आचरण करने पर भी उन्हें नित्यानित्यवस्तु विवेक नहीं हुआ था, उनमें कर्म - फल रूप में भोग की कामना भी विद्यमान थी, षट्साधन की सम्पन्नता तथा मुमुक्षत्व का भी अभाव था। इसलिए इस परीक्षा के मिस से उन्हें योग्य अधिकारिणी बना देना चाहते थे, इसी उद्देश्य से उन्होंने चीरहरण की लीला रची थी। उस लीला के पश्चात् ही वे ब्रह्म जिज्ञासा की अधिकारिणी हो सकी थीं। "[26]

उक्तलीला के एक वर्ष पश्चात् "रास पंचाध्यायी" का आरम्भ होता है। "भगवान श्रीकृष्ण की विश्व विमोहिनी वंशी का नाद आरंभ हो जाता है। उस समय गोपियाँ अपने अपने कार्यों में व्यस्त थीं। कोई गाय दुह रही थी, कोई दूध औंटा रही थी, कोई भोजन पका रही थी, कोई पतिसेवा में लगी थी, जो जिस अवस्था में थी उस अवस्था में उठकर वेणुगान जिस ओर से सुनाई पड़ रहा है उस ओर भाग निकली। शीघ्रता में, तन्मयता में वस्त्राभूषण भी तो उलट - पलट कर धारण किये थे। [27] उनके पति, पिता, भाई तथा बन्धुओं ने उन्हें रोका किन्तु उनके मन भगवान के वंशी नाद से इतने मोहित हो गये थे कि वे पीछे न लौटीं ---

"भैया भैया सासु ने आन रोकीं,
रोकीं रोकीं भीत ही हाथ राखीं,
राखीं राखीं तोउ ना नेकु मानी,
मानी मानी काउ की मानिनी ना।"

[महारास पृ 42]

अत्यन्त अनन्यता का भाव लिये हुए गोपियाँ भगवान के समीप पहुँची, किन्तु धर्म संस्थापक भगवान ने उनके आगमन को उचित नहीं समझा। भगवान ने उन्हें स्त्री धर्म और पतिव्रता धर्म की शिक्षा भी दी। "[28]

वस्तुत: गोपियों के लिए यह कठिन परीक्षा का समय था। भगवान उन्हीं के मुख से सुनना चाहते थे कि वे मेरे बाह्य रूप पर मोहित होकर भोग की कामना से आई हैं अथवा धर्म और अधर्म से ऊपर उठकर तथा सब प्रकार का त्याग करके साम्य भाव की प्राप्ति के लिए उपस्थित हुई है।"[29]

परन्तु गोपियों को आशा नहीं थी कि भगवान ऐसा निर्देश देंगे। फिर भी वे विचलित नहीं हुईं। वे तो सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठकर और लौकिक पतियों का परित्याग करके पतियों के भी पति के पास आयीं थीं। उन्होंने दृढ़ता पूर्वक यह उत्तर दिया ---

"घर सों नहिं मोह रह्यो मन मैं, कछु साध्‌उ न अब जीवन मैं,
पति पूत सबै हम त्याग दये, बनि जोगिनि आइ गई बन मैं।
हम जानत हीं तुम हू अपने, कछु औरउ देखत हीं सपने,
छल सों निज नैनन फन्द कसे, अब निर्दय होय कठोर बने
तुम तौ निज बांसुरिया रत हौ, पति धर्म हमैं उपदेसत हैं।
हम पूजन स्वामिन के पति हू, न आदोस क हमैं तउ देखत पै।"
[महारास पृ. 47]

गोपियों के उक्त वचन यह स्पष्ट करते हैं कि वे भगवान के पास कामभाव से नहीं, वरन् उन्हें विश्वात्मा मानकर ही आयी थीं। परन्तु साधन का मार्ग निष्कंटक नहीं है। लीलामय भगवान समय - समय पर भक्तों की परीक्षा लेते रहते हैं, जिससे उनके विवेक में दृढ़ता आती रहे। इसीलिए उन्होंने गोपियों के मन में कुछ अभिमान उत्पन्न कर दिया जिससे उन सभी को अपने अपने परम सौभाग्य पर गर्व होने लगा। भगवान भी किसी का गर्व रहने ही नहीं देते। इसलिए वे वहीं अन्तर्धान हो गये। प्रथम अध्याय प्रसंग यहीं समाप्त हो जाता है।

भगवान के अन्तर्धान होने पर उनको न देखकर गोपियाँ अत्यन्त खेद करने लगीं। उस समय तक उनका प्रेम इतना बढ़ गया था कि वे उनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती थीं। वे इतना तन्मय हो गई कि चेतन - अचेतन का भी भेद भूल गयीं और पक्षियों तथा वृक्षों से भी अपने प्रियतम का पता पूछने लगी ----

"ऐरे बिधूर! पहरी हन को हन्यौ है
तूई बताइ अब पीय कितै हमारे?"
§ महारास पृ 57§

जब गोपियों को किसी भी प्रकार अपने प्रियतम प्यारे का पता न लगा तो वे इतनी प्रेम - विभोर हो गयीं कि आपा ही भूल बैठी तथा वे उनके चिंतन में ऐसी निमग्न हो गयीं कि अपने को कृष्ण समझकर उनकी लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। "§30§

गुप्त जी कहते हैं --"भक्ति की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं --" कोमल भाव, तीव्रभाव, स्वच्छन्द प्रेम और उत्कृष्ट अनुरक्ति। इनमें से उत्कृष्ट अनुरक्ति ही अधिक श्रेष्ठ है। यह भक्ति की पूर्ण अवस्था में ही हो पाती है। इसमें भक्त को यह ध्यान ही नहीं रहता कि भगवान के अतिरिक्त यहाँ कोई अन्य वस्तु है या नहीं। ऐसी अवस्था में भक्त को अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता। "§31§ यही अवस्था थी उन गोपियों की जो कभी समाविष्ट हुई उनकी लीला का अनुसरण करतीं और प्राणाधिक प्रियतम की खोज करने लगती। तभी उन्हें प्रियतम के पद चिह्न दिखाई दिये। जिनका अनुसरण करते - करते एक स्त्री के पद चिह्न भी उन्हीं के साथ मिल गये। आगे जाने पर उनको राधा जी मिल गई। तदुपरान्त वे सब मिलकर पुन: भगवान की खोज करने लगी और अन्त में यमुना तट पर पहुँचकर उनके पधारने की कामना करती हुई, उन्हीं का गुण गान करने लगीं। दूसरे अध्याय का प्रसंग यहीं समाप्त होता है।

तीसरे अध्याय में विरह व्याकुलता गोपियाँ भगवान का स्मरणयुक्त विलाप करती हैं ---

"सोचो प्यारे! हम तब हितैं गेह त्यागें भ्रमानी,
छोड़े स्वामी सुवन, न पिता मातु की सीख मानी,
कौंला वांछा प्रियन ममता त्यागि कै ऊ बिरानी
तौऊ त्यागीं सब तुम भये हाय ऐसे गुमानी।
आओ आओ लखि मुख तवै मोद भरी मनावैं,
सावैं हैं सोह प्रिया! हम तो प्रीति साँची निभावै,
जो ना है साँच - निज हिय तू चीर कै दिखावै,
वैसे तो पी! घट घट बसो विग्य वेई बतावैं।"

§ महारास पृ. 73 §

इस प्रसंग में हमें गोपियों की अनन्य भक्ति तत्व का परिचय मिलता है।

चौथे अध्याय में गोपियों की अनन्यता देखकर भगवान श्यामसुंदर पुन: प्रकट हुए। तब वे सभी गोपियाँ प्रेम से प्रफुल्लित दृष्टि से उन्हें देखती हुई तुरंत उठ खड़ी हुईं, उसी प्रकार जैसे प्राणों को प्राप्त हो इन्द्रियाँ चैतन्य हो जाती हैं। " §32§ उनके नेत्र अपलक दृष्टि से भगवान के अद्वितीय रूप रसामृत का पान करने लगे। उस समय कोई गोपी पूछ रही थी कि मुझ से ऐसा कौन सा अपराध बन गया जो आप मुझे छ छोड़कर चले गये?" कोई उपालम्भ देने लगी। कोई अपनी दु:ख - कथा सुनाने लगी तो कोई अपने मन की व्यथा कहने लगी। §33§ भगवान कृष्ण ने सभी को यथोचित उत्तर से आश्वस्त और सन्तुष्ट किया।

पाँचवाँ अध्याय "महारास" वर्णन से सम्बन्धित है। ज्ञानियों ने महारासको "काम विजयोत्सव" माना है। भगवान ने अपनी आठ-नौ

वर्ष की आयु में ही [गोपीजन स्वरूप] असंख्य सेनायुक्त कामदेव पर विजय प्राप्त की थी। लौकिक दृष्टि से भी भगवान ने इस लीला के द्वारा गोपियों को निष्काम बना दिया और वे भी उनकी इस अलभ्य कृपा को प्राप्त करके अत्यन्त सौभाग्य शालिनी बन गईं।

जब गोपीमण्डल युक्त रासोत्सव का आरम्भ हुआ। तब भगवान श्रीकृष्ण अपनी अचिन्त्य योग शक्ति के द्वारा दो - दो गोपियों के मध्य प्रविष्ट हो गये ----

"गोपी मंडल में मधुरिम मुखरी मुर्ली बजे मोहिनी,
दो दो नारिन मध्य सद्य प्रगटे जोगेस लीला महा,
ग्रीवा बाँहिन डारि प्यार परसे जान्यौ सबै संग पी,
हासै कानन फूलि झूलि हिरदै हारावली झूमती।"
[महारास पृ 88]

महारास का आरम्भ हुआ, दुन्दुभि बज उठी, कंकण, नूपुर और किंकिणियों का तुमुल घोष होने लगा। पुष्प वृष्टि के साथ जय जय कार हुआ। गोपी सहित कृष्ण का इस "रास" को देखकर समस्त विश्व मोह में पड़ गया ---

"प्रानी जै जै बोलत, लोक मोहे
मोहे मोहे देखि के दिव्य लीला,
लीला लीला मोहिनी मुर्ल मुर्ली,
मुर्ली मुर्ली फूंकती प्रान गूंजी।।"
[महारास पृ 97]

रास लीला का यह क्रम उस समय तक चलता रहा, जबतक गोपियाँ थक न गयीं, तदुपरांत उन्होंने यमुना में उतरकर जल विहार किया और फिर उसी उपवन में विचरण के पश्चात् उन गोपियों को घर जाने की आज्ञा दी।

गुप्त जी द्वारा यह काव्य सचमुच हिन्दी साहित्य भण्डार के अमूल्य रत्न है।

1·2·1·4· स्याम - सतक :--

आज का ब्रज भाषा काव्य प्राचीन भक्ति एवं रीति काव्य की अनुगूंज मात्र है, उसमें भाव अथवा शैली की दृष्टि से कोई निजत्व नहीं है -- यह आरोप प्राय: लगाया जाता है परन्तु सर्वांशत: ऐसा नहीं है। आधुनिक जन जीवन के विविध रूपों का भी ब्रज के लेखकों ने चित्रित किया है, यदि उदाहरण देना है तो गुप्त जी द्वारा रचित "स्याम-सतक" का नाम ले सकते हैं। ऊपर से देखने में यह ब्रज के प्राचीन काव्य की भावानुलिपि जैसी प्रतीत हो सकती है, परन्तु वस्तुत: ऐसा है नहीं। इस रचना को पढ़ने से हमें मात्र परंपरागत भावों की गूंज नहीं मिलती, जीवन की अनुभूति की सौंधी गंध भी इसमें है। इसकी भाषा शैली पर भी पूर्व प्रभावों का अधिग्रहण नहीं है, अपितु आधुनिक सरल ब्रजभाषा का स्वाभाविक रूप ही इसमें निखर कर आया है। आरंभ में स्तुति और विनय के पद हैं और उसके बाद कृष्ण कथा का सुन्दर चित्रण है, इसमें नन्द, यशोदा, श्रीराधा एवं अन्य पात्रों के माध्यम से भावों का सूक्ष्मांकन हुआ है।

गुप्त जी कहते हैं -- इस जग का नाता सब झूठ है। माता, पिता, सुत, नारी इनमें कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते। तुम्हारा धन, वैभव सब यहीं पड़े रहते ह हैं, फिर यह संसार तुम्हें भूल जायेगा, परिवार या बंधुजनों के लिए तुम जो पाप कमा रहे हो उसका फल तुम को ही भोगना पड़ेगा। तुम खुद अपने गले में फंदा डाल रहे हो। [34] इसलिए हे मन! श्यामसुन्दर से लग जा। सिर्फ उसी की कृपा से मुक्ति मिलेगी। इसलिए घर के प्रति व्यामोह छोड़कर गिरिधर को पुकारो[35] गुप्त जी कहते हैं। ----

दया सब प्रानिन प्रति धारौ।
दुरबल बली धनी निरधनऊ, प्रभु कूँ है प्यारौ।।
सोई सन्त सोई उपकारी जिन, सबकौ दुख टारौ।।
रोगी कोढ़िउ घिना जोग नहिं, तिन कूँ निस्तारौ।।
करम करौ, फल प्रभु पै छाँड़ौ, हिम्मत मत हारौ।।
"दाऊदयाल" धरम की जड़ जो, ताकूँ अपितारौ।।

{ स्याम सतक पद 17 }

गुप्त जी भगवान के वीरोचित भक्तवत्सल रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं ----

प्रभु जी, तुम गज के प्रान बचाये।
जब जब टेर करी सन्तान नैं, दौर तुरत ही आये।।
द्रुपद - सुता कौ हेला सुनि कैं हा के चीर बढ़ाये।
नरसिंह रूप धरि हिरनाकुस बधि, प्रहलाद बचाये।
अम्बरीस हित दुर्वासा पै तुम ही चक्र चलाये।
"दाऊदयाल" सुनी नहिं मेरी कैसिउ बार बुलाये।।

{ स्याम सतक पद 22 }

इस प्रकार इसमें "25" पद तक गुप्त जी के विनय और स्तुति के पदों का परिचय मिलता है। "बाकी" "75" पदों में कृष्ण कथा का सुंदर चित्रण किया गया है।

गुप्त जी ने इस काव्य में कृष्ण की बाल - लीला का मनोहर ढंग से चित्रण किया। एक दिन कृष्ण "मिट्टी" खाता है तो बलराम यशोदा से शिकायत करता है। माँ के पूछने पर कृष्ण अपना सफाई पेश करते हैं।{36} फिर एक जगह पर बलराम पर शिकायत करते हैं। {37}

बाद में कृष्ण बलराम सहित कंस वध करने अक्रूर के साथ मथुरा जाते हैं। वहाँ चाणूर, मुष्टिकादि असुरों सहित कंस वध कर माता - पिता को कारागार से मुक्ति प्रदान करते हैं और राज - काज हित मथुरा में ठहर जाते हैं। नंद अकेला ही ब्रज वापस आता है और यशोदा को सबकुछ सुनाता है। कृष्ण अपना पुत्र नहीं है, ऐसी बात सुनकर बहुत दुखित होती है और नंद से कहती है ---

"महर तुम कैसी बात सुनाई
जानी नाँहि पेट नहिं अपनौ, यहि लागी धधकाई।
पारयौ पूत मूत मल धोये, आस रही अधिकाई।
दिन भर बैठि बाट देखत ही भूख प्यास बिसराई।
रोवत जसुमति रुकति न आँसू घोर विथा उर छाई।
"दाऊदयाल" लाल नहिं अपनौ मैं कैसी भरमायी।।"

(स्याम सतक पद 79)

सारे ब्रजवासी कृष्ण विरह में व्याकुल हो जाते हैं। कृष्ण को वापस लौटने की प्रार्थना करते हैं। उधर कृष्ण भी ब्रजवासियों को याद करता है और उद्धव द्वारा संदेश देकर ब्रज भेजते हैं। उद्धव ब्रज पहुँचकर सबको कृष्ण संदेश सुनाता है। गोपियाँ उद्धव को अपनी दयनीय दशा सुनाती है। उद्धव मथुरा जाकर कृष्ण से कहते हैं ---

"प्रभु जी! का विध दसा बखानौ?
खुलत न मुख, निकसत नहिं बानी, हिरदै हाल हिरानौ।।
मातु जसोदा रोत रही बहु अन्तर तोस न पानौ।
सिसकत बाबा नन्द पौरि दृग लागि रह्यौ पछितानौ।।"

(स्याम सतक पद 93)

फिर एक जगह पर कृष्ण द्रौपदी का मान रक्षा करता है।[38] तो एक जगह पर पार्थ को धर्मोपदेश देकर कर्त्तव्य की ओर उन्मुख करता है।[39]

इस प्रकार इसमें कृष्ण चरित्र का चित्रण किया गया है, इसमें यशोदा श्रीराधा एवं अन्य पात्रों के माध्यम से भावों का सूक्ष्मांकन हुआ है। यह रचना अपने इन गुणों के कारण कृष्ण - काव्य परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह गीति शैली में रची गयी है।

1.2.1.5. स्याम संदेसो :---

कृष्ण काव्य परम्परा में भ्रमरगीत परम्परा अत्यन्त समृद्ध एवं प्राचीन है। श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध का सैंतालीसवाँ अध्याय बहुत ही महत्वपूर्ण है। वस्तुत: उस वर्णन में गोपियों की उन अलौकिक अनुभूतियों का दिग्दर्शन हुआ है, जिसमें समस्त ज्ञान का निचोड़ है। किन्तु भागवतकार के अतिरिक्त अन्य अनेक कवियों ने भी भ्रमरगीत का अपने ढंग पर वर्णन किया। उन रचनाओं में से कुछ रचनाएँ विशेष रूप से श्रेष्ठ भावों से सम्पन्न मानी जाती हैं। गुप्त जी द्वारा रचित यह काव्य भी उसी कोटि का है। सम्पूर्ण काव्य को गुप्त जी ने सात - शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया है। इसमें कवि के व्रज क्षेत्र एवं व्रज संस्कृति के प्रति लगाव का पूरा परिचय मिलता है। कथा की दृष्टि से अनेक मौलिक प्रयोग कवि ने किये हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में प्रयुक्त दोहा, कवित्त एवं सवैया आदि छन्दों के साथ रोला, कुण्डलिया और सोरठा का भी कवि ने प्रयोग किया है।

इसमें गुप्त जी ने "प्रथम शीर्षक" का नाम रखा "रसो वै स:" इस शीर्षक में गुप्त जी ने रस स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण का नित्यधाम वृन्दावन, व्रजभूमि महिमा, राधा कृष्ण आदि स्वरूप, अक्रूर भगवान कृष्ण को मथुरा ले जाना, कृष्ण विरह में गोपियाँ आदि प्रसंगों का वर्णन किया।

गुप्त जी कहते हैं -- भगवान श्रीकृष्ण ने लीला हेतु स्त्री रूप धारण किया, उसी रूपराशि का नाम है राधा। राधा और कृष्ण एक ही है। उनका रूप भिन्न है, पर उनका प्राण एक है ---

"रस सागर श्रीकृष्ण ने, लीला हेतु ललाम।
धरे रूप दो नारि - नर, राधा सुंदर स्याम।
राधा - सुन्दर - स्याम, अर्ध नारी स्वर रूप।।
एक ब्रह्म दो देह, द्वैत - अद्वैत अनूप।।
जानि नन्दसुत लाल, लली वृषभानु कुमारी।।
भारव्यौं रंच रहस, समाधि बिन सन्तन धारी।।"
[स्याम संदेसौ पृ. 17]

रासेश श्रीकृष्ण और रासेश्वरी श्री राधा का नित्यलीला धाम है -"व्रज धाम"। उसका ऐश्वर्य देखकर ब्रह्म, शिव आदि देवता भी वहाँ जन्म लेने को लालायित होते हैं ---

"ललायित ऐश्वर्य लखि, वैभववन्त धनेस,
किन्नर जच्छ गंधर्व दिव, ब्रह्मा संभु सुरेस,
ब्रह्मा संभु सुरेस, जनम चाहत व्रजवन में।।"
[स्याम संदेसौ पृ. 17]

इस प्रकार व्रजभूमि में सर्वत्र आनन्द छाया हुआ है। उस समय अक्रूर आकर भगवान कृष्ण को मथुरा ले जाता है। सारे व्रजवासी कृष्ण विरह में बहुत दुःखी है। [40] कृष्ण विरहिणी राधा की मनोदशा को गुप्त जी ने अद्भुत ढंग से चित्रण किया ---

"स्याम - स्याम रटना लगी, रसना रही पुकारी।
"कब आवैं हरि" सोचती, पथ की ओर निहारि।।

पथ की ओर निहारि, टकटकी दिठि लगावै।
नैनन बरसै मेह, गेह उपवन नहिं भावै।।
धरि धीरज उर माहिं, पीर सों नीर लुकावै।।
व्याकुल जसुमति जानि, जाइ कै धरि हँसावै।।"

(स्याम संदेसो पृ 19)

दूसरे शीर्षक का नाम है "हरि अधौ बुलवाइ।" इस शीर्षक में भगवान श्रीकृष्ण को ब्रज की याद आती है। ब्रजवासियों के दुख दूर करने के लिए अपने मित्र उद्धव को "संदेश" देकर ब्रज भेजते हैं। "कृष्ण - संदेश लेकर उद्धव ब्रज जाने को तैयार हुए। उद्धव अपने को "धन्य" समझता है ताकि कृष्ण के मन में बसी उस पुण्यभूमि को देखने का अवसर मिला। वह कहता है ---

"धन्न धन्न महिमा मई, रास मई रसखानि।
जो प्रभु के हीरो बसी, जग जननी कल्यानि।।
लखूँ रस - रासि सो।।"
(स्याम संदेसो पृ 27)

उद्धव ब्रजभूमि को देखकर मुग्ध हो जाता है -- इस घटना का वर्णन किया गया है। इस तीसरे शीर्षक "धन्न धन्न ब्रज धाम" के अन्तर्गत उद्धव ब्रज पहुँचते ही रथ से नीचे उतर कर ब्रजभूमि को साष्टांग नमस्कार करके प्रार्थना करता है --

"हे ब्रज धरनी पावनी मंजुल महिमा भूरि
सिव विरंचि सुर मुनि सकल, धरत माथे धूरि।"
सराहत भाग हूँ।।"

(स्याम संदेसो पृ-30,31)

इस काव्य के चौथे शीर्षक का नाम "राजगद्दी हूँ सम्हारिंगी" इस शीर्षक के अन्तर्गत उद्धव – गोपी संवाद का वर्णन है। इसमें गोपियों के कृष्ण के प्रति स्थित अनन्य प्रेम का परिचय होता है।

उद्धव ब्रज पहुँचकर ब्रजवासियों को कृष्ण संदेश सुनाता है और कहता है ---

"बोले फिर – वेगि ब्रज आमिंगे मथुरानाथ
राज – काज रोके राउ तोउ चित्त तागे है।।"
§ स्याम संदेसौ – पृ 36 §

फिर उद्धव उन लोगों को योग मार्ग की श्रेष्ठता को बताकर योग मार्ग स्वीकार करने की बात कहता है। यह बात सुनकर गोपियाँ उद्धव को फटकारती हैं और कहती हैं ---"या भैया ऊधौ। हमें शायद तुम मूर्ख समझ रहे हो। योग जो है पुरुषों का कर्तव्य है, स्त्रियों का नहीं। पुरुष अपना कर्तव्य छोड़कर उस भार को हम §स्त्रियों§ पर डाल रहे हैं। अपनी असमर्थता को छिपा कर नारिन को अज्ञान कहकर व्यर्थ उपदेश सुना रहे हैं। §41§ और वे कहती हैं ---

"पुरुष के काज जो परेगो भार हम पै, तो-
आसरे रहिंगी क्यों? जि भीत तोरि डारिंगी,
छोडि घर चलिंगी तो, वीर को धरिंगी भेष
पकरिंगी दुधारो कर, चूरी उतारिंगी।
रास मैं करिंगी हम चक्र लो सुदरसन सो
सैन संग लिंगी, नर और क्यों निहारिंगी,
साहस करिंगी, नाहिं डुकिंगी नैकु काऊ सो
जोग क्यों करिंगी, राज गद्दी हूँ सम्हारिंगी।"

§ स्याम संदेसौ पृ 46 §

तब एक गोपी उद्धव से पूछती है - हे उद्धव। तुम जो "योग" बता रहे हो। वह क्या है? हम तो पहले ही "श्याम - योग" धारण कर चुकी हैं। §42§ सारे गोपीजन कृष्ण के प्रति अपने मन में स्थित विरह वेदना को उद्धव के सामने प्रस्तुत करती हैं। इतने में रासेश्वरी राधा वहाँ पहुँचती है तो उद्धव राधा से कहता है --"धीरज रखो। माधव जल्दी ही व्रज आनेवाला है।" ये वचन सुनकर राधा आश्चर्यचकित होती है, इकटक उद्धव की ओर देखती रहती और पूछती है --"तुम क्या कह रहे हो। श्याम गये कहाँ? कब गये? मुझे बताओ।" ये बातें सुनकर उद्धव दंग रह जाता है। उस प्रेमोन्मादिनी, अनन्य भाव स्वरूपिणी राधा को देखकर उद्धव विचलित होकर अब क्या करूँ? इस सोच में पड़ जाता है।

इस प्रसंग में प्रेमाभक्ति की विशिष्टता, गोपियों की अनन्य कृष्णभक्ति और गोपियों की वाग्विदग्धता का दिग्दर्शन हुआ है।

इस काव्य के पाँचवा शीर्षक का नाम है "नमन सौ बार है।" इस शीर्षक के अन्तर्गत गुप्त जी ने राधा उद्धव संवाद, रासेश्वरी राधा का स्वरूप, राधा, उद्धव द्वारा कृष्ण के पास संदेश भेजना आदि प्रसंगों का वर्णन किया है।

राधा उद्धव से कहती है --"श्याम कहीं नहीं गया। वह सदा व्रज में विराजमान रहे। मुझे एक क्षण के लिए भी वह छोड़ता नहीं, सदा मेरे साथ ही रहा है, अभी आनेवाला है। §43§ कहकर राधा आनेवाले कृष्ण को दिखाकर उद्धव को इंगित करती है ---

"इंगित उधो लखत चकित चित भये विचारे।
लखरन - सिर कर रास स्याम सुन्दर हे तारे।।"
§ स्याम संदेसौ पृ 71 §

इस दृश्य को देखकर उद्धव चकित हो जाता है और भाव मग्न हो जाता है और रासेश्वरी राधा के प्रति अपने आप को न्योछावर कर देता है और राधा का गुण - गान करता है। [44] और उन भावों में अपनी सुधि खो बैठता है। फिर चेतनावस्था में आकर देखता तो "कृष्ण के दर्शन" नहीं होते। तब राधा कहती है ---

"ऊधौ! अब तौ गये नाथ मोइ छोडि अकेली।
कहत सहेली सबै फिरै अति नारि नवेली।।
तुम संदेसौ दयौ जोग उपदेसत स्वामी।
क्यों न सबैं वे भोग कहौ हरि के अनुगामी?"

[स्याम संदेसौ पृ 75]

छटे शीर्षक का नाम है "रास भयौ साकार"। इसमें कृष्ण के प्रति राधा का संदेश, कृष्ण साक्षात्कार, महारास आदि प्रसंगों का वर्णन हुआ है।

राधा, उद्धव से कहती है --"हे उद्धव! मैं हूँ श्यामसुन्दर! तुम मेरे संदेश लेकर ब्रज आये हो।" फिर कहती है ---

"मैं तो स्यामा बावरी, समुझति निज हूँ स्याम।
कित पैंठी कित रोय रहयौं, कित नगरी कित गाम।।"
भेद भारी भयौ।"

[स्याम संदेसौ पृ 82]

इस प्रकार राधा अपनी विरह वेदना प्रकट करती है, इतने में वंशीनाद सुनाई पड़ता है। राधा नाचने लगी तब सभी जन इकट्ठे हो गये। सभी ने मिलकर रास रचाया। कृष्ण वहाँ अनेक रूपों में प्रकट होकर उनके साथ नाचने लगा। यह दृश्य देखकर उद्धव चकित होते हैं।[45]

इतने में उद्धव को एक धक्का सा लगा। आँखें खोलकर देखा तो रोते हुए कृष्ण विरहिणी गोपियों का दर्शन हुआ। पूछा तो पता चला कि कृष्ण अदृश्य हो गये।

अंतिम शीर्षक का नाम "भेद न स्यामा स्यामा" है। इसमें उद्धव कृष्ण को ब्रज के समाचार सुनाना, कृष्ण उद्धव को "राधा - कृष्ण" अभेद तत्व का ज्ञान प्रदान करना" आदि प्रसंगों का वर्णन है।

उद्धव कृष्ण को सारा समाचार सुनाता है, फिर कृष्ण से प्रार्थना करता है —" नाथ! आप ब्रज क्यों पधारें? आपकी लीला क्या है? इसका रहस्य जानना चाहता हूँ।" तब कृष्ण उद्धव से कहते हैं ——

"भेद न स्यामा - स्याम, स्याम हूँ स्याम जानों।
गोपिन स्यामा - अंस, हीय दृग सों पहिचानों।।"
(स्याम संदेसौ पृ 95)

इस प्रकार भगवान कृष्ण, उद्धव को राधा - कृष्ण के अभेद तत्व का ज्ञान प्रदान करते हैं।

डॉ॰स्नेहलता श्रीवास्तव के शब्दों में भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य है "ज्ञान पर प्रेम, मस्तिष्क पर हृदय की विजय दिखाकर निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की अपेक्षा सगुण साकार ब्रह्म की भक्ति भावना की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।" गुप्त जी से विरचित स्याम संदेसौ" इसी भाव को प्रतिबिंबित करती है। फिर भी कथा की दृष्टि से इसमें अनेक मौलिक प्रयोग किये गये हैं। साथ ही साथ प्रेम मार्ग की उत्कृष्टता, राधा - कृष्ण के अभेद तत्व पर जोर दिया गया है।

इस प्रकार भ्रमरगीत परम्परा में गुप्त जी का यह काव्य "स्याम-संदेसौ" अनन्य रखता है।

1.2.1.6. <u>कैशव</u> :---

श्री गुप्त जी द्वारा लिखित यह पुस्तक "कैशव" ब्रजभाषा पद्य में श्रीकृष्ण की बाल्यकालीन कथा पर आधारित है। कैशव काव्य श्रीकृष्ण चरितमानस की कथा के प्रारम्भिक अंश का पुनराख्यान है। श्रीकृष्ण चरित मानस के अवतरण काण्ड, लीलाकाण्ड एवं प्रारंभिक मथुराकाण्ड की प्रमुख घटनाओं पर आधारित इस रचना में श्रीकृष्ण चरित मानस जैसी पौराणिकता से मुक्ति पाकर कवि ने इन प्रसंगों की मार्मिकता एवं पात्रों की भावुकता को चित्रित किया है। [46] इसमें श्रीकृष्ण चरितमानस के निम्न कथा प्रसंगों का वर्णन हुआ है --

श्रीब्रह्म जी का प्रकट होना। मधुकैटभ वध, सुतापा का तप, वराह अवतार, हिरण्याक्ष वध, राधा द्वारा अपने पुत्र का क्षीरार्णव में विसर्जन, गंगोत्पत्ति तथा श्रीकृष्ण जन्म से कंस वध तक, उग्रसेन का राज-तिलक एवं मथुरा से नन्दादि गोपों की विदाई पर्यन्त।

यह काव्य 225 सुन्दर से सवैयों में लिखा गया है। इस काव्य का नायक है - श्रीकृष्ण। नंद, यशोदा, देवकी, वसुदेव, कंस आदि पात्र गौण हैं।

महाबली कंस अपनी प्यारी बहन देवकी का विवाह करने की तैयारी कर रहे हैं। गुप्त जी ने इस कंस के हृदय में स्थित "सच्चे भाई का प्रेम" का वर्णन किया है। कंस खुद विवाह महोत्सव की तैयारी करते हुए, वसुदेव के पास जाकर विनती करता है ---

"वसुदेव कहूँ हिय की बिथा की, कछु राजन! मो अनुजा अति भोरी।
यहि पारि हुती अति लाडुली, यह पाइ कबू कछु बात न तोरी।।
अति ही अनजान नादान महा, मन कोमल सुंदर चंद्र चकोरी।
प्रभु! या सों कबू कहियो न कछु, महराज! सुनों विनती कर जोरी।"

[कैशव पद 35]

फिर कंस देवकी -वसुदेव का विवाह अत्यन्त वैभव से मनाता है। उन दोनों को रथ पर बिठाकर खुद सारथी बनकर रथ चलाने लगे। इतने में आकाशवाणी सुनाई पड़ी --" हे कंस! देवकी के अष्टम सुत तुम्हारे लिए "काल" बनेगा। §47§ इस बात को सुनकर कंस चकित हो जाते हैं। तब उनमें स्थित "सच्चे भाई" दबकर एक क्रूर राजा जागृत हो जाता है। वह तलवार खींच कर देवकी को मारने को उद्यत होता है। वसुदेव कंस को समझाना चाहता है। देवकी रोती हुई, भाई कंस से प्रार्थना करती है ---

"मैं सदा ही भरोसे तुम्हारे रही, अपराध कहा मेरो भैया बताओ।
अबला कंपिता सम ठाढ़ी कहूँ, मैं तो भैन तुम्हारी हूँ प्रान बचाओ।
यह जीवन ही तुम्हारे बस में, ममलोहू तैं हाथ कि काहे रंगाओ।
अब भूलि गये छिन में ममता, जग क्यों अनुजा हत्यारे कहाओ।।"

§ कैवेय पद 5। §

बाद में कंस, देवकी - वसुदेव को जेल में डालता है। देवकी वसुदेव के अष्टमपुत्र के रूप में भगवान का आविर्भाव होता है। वसुदेव कृष्ण को गोकुल में यशोदा के पास छोड़कर वहाँ की कन्या को लेकर मथुरा पहुँचता है। कंस ने उस बालिका को मारना चाहा तो वह आकाश में उड़कर अपने को योग माया कहकर कंस को चेतावनी देती है --"तुम को मारनेवाला दूसरे और जगह पर पल रहा है।"

इधर नंद के घर में सर्वत्र आनंद छाया हुआ है। पुत्र जन्म के कारण नंद अपने हाथों से गोधन संपत्ती व दान आदि करने लगे। सारे ब्रजवासी नंद - यशोदा के भाग्य को सराहने लगे। गुप्त जी ने अपने इस काव्य में बालक कृष्ण का नटखट, माता यशोदा की ममता का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया। यशोदा का नटखट बालक कृष्ण को देखिए ---

"पय - पान करावत स्याम कूँ मात, पढ्यौ पय औंधि अकान्छ आनौं।
लखि लाल उतरि उतारन ताहि, गई इत बालउ रोस मैं छानौं।।
उठि कौरि दई दधि की मटकी, पटकी चपकी गहि माखन खानौं।
फिर आवत जानि कै मातु कूँ भाजि, पिराज कुठीला की ओर छिपानौं।

(केशव पद 97)

बालक कृष्ण ने पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर आदि राक्षसों का वध किया। ब्रह्मा जी का गर्वभंग किया। कालीयमर्दन करके ग्वाल बच्चों को उस कालीय - जहर से बचाया। बाद में गुप्त जी ने चीरहरण लीला, गोवर्धन लीला आदि का मार्मिक ढंग से वर्णन किया।

इधर मथुरा नरेश कंस ने बलराम - कृष्ण को मारने एक षड्यन्त्र रचाकर उन लोगों को धनुर्यज्ञ देखने लाने की आज्ञा देकर अक्रूर को भेजा। अक्रूर ब्रज पहुँचकर कंस की आज्ञा नंद को सुनाता है। भगवान कृष्ण, बलराम सहित मथुरा जाने तैयार होते हैं। यह बात गोपियों तक पहुँच गयी। गोपियाँ कृष्ण से प्रार्थना करती हैं —

"मत जाओ कहीं, हम जानि न देंइ, न मानो तौ आतमघात करेंगी।
रथ सामने धूरि मैं लोटि जबै, तन चूर करैं नहिं नैंकु डरेंगी।
तुम जाओगे नाथ। जो छोड़ि हमैं, धन भाग जो प्रीतम हेतु मरेंगी।
सब सोक क्लेस रहैं नहिं सेस, असैस वियोग कुजोग टरेंगी।।"

(केशव पद 133)

कृष्ण मथुरा जाकर कंस वध करते हैं। देवकी वसुदेव सहित उग्रसेन को कंस के कारागार से विमुक्ति प्रदान करते हैं। उग्रसेन को राजा बनाकर स्वयं उनका राज्याभिषेक करते हैं। नंद को यह मालूम होता है कि जिसे अभी तक यशोदा सुत समझा जाता रहा वास्तव में वह देवकी पुत्र है। बाद में कृष्ण नंद को समझाते हैं — "बाबा! देश में अशांति फैली हुई है,

देश रक्षा का भार हम पर है, हमने राजा को जो वचन दिया है, उसे निभाना ही पड़ेगा। कुछ दिनों में सारा कार्य सम्भाल कर वहाँ आएँगे। आप तुरन्त ब्रज जाइए। आप यहाँ रहें तो ब्रज में शंकाएँ फैल जाने की सम्भावना है।" इस प्रकार कृष्ण, नंद को आश्वासन दिलाकर ब्रज भेजता है।" संक्षिप्त में कथा यही है। गुप्त जी ने काव्य के अन्त में ब्रज महिमा का गुण गान किया --

"जन जानि गये - अति पुन्न मही, ब्रज राज-कृपा यह योग उपावै।
सब धामन सौं ब्रजधाम रह्यौ, अति श्रेष्ठ कह्यौ भव बन्ध छुड़ावै।।
सुपुरी नगरीन रही मथुरा, तिहूँ लोकन मैं जो न्यारी कहावै।
जयकारन "दाऊदयाल" सदा सतबार सुभावन सीस नवावै।।"

{केशव पद 209}

गुप्त जी के इस काव्य के बारे में डॉ॰राजेन्द्रकुमार अग्रवाल जी कहते हैं --"कृष्ण कथा, ब्रजभाषा एवं सवैयों की अलग अलग गरिमा एवं तीनों का सुन्दर संगम इस काव्य की कलात्मक विशेषता है। भाषा की व्यावहारिकता एवं मधुरता मन को मोहित करनेवाली है। श्रीकृष्ण चरित-मानस की अपेक्षा इसमें कवि का काव्यत्व अधिक मोहक बन गया है। {46}

इस प्रकार गुप्त जी का यह काव्य सुन्दर बन पड़ा है।

1•2•1•7• <u>कृष्ण शतक</u> :--

गुप्त जी ने कृष्णभक्ति सम्बन्धी कई काव्यों की रचना की है। उनके अपने शब्दों में कहना है तो - श्रीकृष्ण मेरे आराध्य भगवान है। उन पर साहित्य लिखने की यह प्रक्रिया निरन्तर चलता ही रहेगा।" गुप्त जी के इस मनोकामना का फल स्वरूप ही नित्यपाठ हेतु यह - "कृष्ण शतक" का आविर्भाव हुआ। जिस प्रकार तुलसीदास ने नित्यपाठ हेतु "हनुमान चालीसा"

की रचना की, उसी शैली में गुप्त जी ने "कृष्णशतक" का सृजन किया। इस छोटी पुस्तक में गुप्त जी ने भगवान श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र का गान किया। अन्त में गुप्त जी ने भगवान श्रीकृष्ण से विनती की ---

"हे जगपति हे रूप अनन्ता। तव समान नहिं कोउ भगवन्ता।
दीजिए सब सुख भोग कृपाला। अन्त आपुना लोक दयाला।
करुनासागर भरोस तुम्हारा। नाथ हरहु दुख सोक हमारा।।

दोहा -- जय मुकुंद माधव हरे वासुदेव भगवान।
नाथ भक्ति निज दीजिए करुना - कृष्ण निधान।।"

§ श्रीकृष्ण शतक पृ 4,5 §

1·2·1·8· <u>राधा शतक</u> :--

कृष्ण शतक जैसे ही नित्यपाठ हेतु गुप्त जी ने राधा शतक की रचना की। राधा भगवान श्रीकृष्ण की आराधिका है। कृष्ण की प्राणाधि देवी है, कृष्ण की शक्ति है। राधा के कारण ही कृष्ण, श्रीकृष्ण कहा गया है। गुप्त जी ने इस पुस्तक में रासेश्वरी राधा के प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट करते हुए राधा शक्ति का गुण गान किया ---

"जय जय कृष्ण वल्लभे राधे। जय जय जय सामर्थ्य अगाधे।
हे कृष्णाधि अंग सम्भूते। परासक्ति हे ज्ञान अकूते।।
जग जननी रासेश्वरी रम्ये। सिद्धान्ह सन्तन्ह ध्यान अगम्ये।।"

§ राधा शतक - पृ 5 §

अंत में गुप्त जी राधा से प्रार्थना करते हैं कि

"करुनामयी महामति धीरा। हासमयी हरनी सब पीरा।
जय जग जननि सदा सुख रासी। "दळदयाल" कृपा अभिलाषी।
कृष्ण प्रिये ऐसेहि दया कीजै। आधि व्याधि सब ही हर लीजै।।"

§ राधा शतक पृ 19 §

इस प्रकार गुप्त जी द्वारा विरचित "राधाशतक" सुंदर बन पड़ा है।

1.2.1.9 कृष्ण रक्षिता कृष्णा

गुप्त जी द्वारा रचित और एक महान रचना है -"कृष्ण रक्षिता कृष्णा" । 231 सवैयों में, 100 पृष्ठों में विराजमान यह काव्य ब्रजभाषा में अपनी ढंग से अनूठी है । इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण 1992 में निकला है, द्वितीय संस्करण 1994 में । कथा की दृष्टि से वर्णित प्रसंग इस प्रकार है --"पाण्डव-सभा में अपमानित दुर्योधन का इन्द्रप्रस्थ से लौटते हुए भीम, द्रौपदी आदि के प्रति रोष और प्रतिशोध भाव की अभिव्यक्ति, शकुनी का छल-पाशों द्वारा द्यूत क्रीड़ा का प्रस्ताव, द्यूत क्रीड़ा में पाण्डवों की हार, दुःशासन द्वारा द्रौपदी-चीर हरण का प्रयास, भगवान श्रीकृष्ण द्वारा चीर वृद्धि, पाण्डव वनवास तथा कुपित दुर्वासा की शिष्यों सहित तृप्ति का वर्णन ।" इस काव्य की शैली देखिए --

"माधव कृष्ण मुरारि हरे जगपाल विशाल गुविंद गुपाला,
देवकि नन्द अहो ब्रजचन्द जसोमति के सुत नन्द के लाला ।
कोउ अहीर कहै अहि ईर कहयो कह दूर गपाल कराला;
नाम अनेक पै एक सदा जस हीय के भाव
विलोकि निराला ।।
(पद 221, पृ.95)

इस प्रकार सुन्दर सवैयों में विराजमान यह काव्य ग्रन्थ "कृष्ण रक्षिता कृष्णा" ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्यों में अपनत्व रखती है ।

1.2.1.10 रुक्मिणी मंगल

गुप्त जी द्वारा विरचित ब्रजभाषा का और एक महान कृति है – "रुक्मिणी मंगल"। 1993 में प्रथम संस्करण निकला है। 251 सवैयों में, 105 पृष्ठों में विराजमान यह काव्य की नायिका रुक्मिणी है तो नायक लीलामानुष विग्रह भगवान श्रीकृष्ण हैं। भगवान् कृष्ण की आठ पटरानियों में "रुक्मिणी" का स्थान प्रमुख है। इस कारण ग्रन्थ का प्रधान प्रसंग – "रुक्मिणी कल्याण", साथ ही साथ राधा और रुक्मिणी में अभेदता का भी निरूपण हुआ है। इस काव्य की शैली देखिए —

"रुक्मिणि गौरि की ओर चढी पहुँची फिर हाथन जोरि के ठारी,
कंजपदै फिर जाइ पड़ी लगि नैन झड़ी उर-भाव उभारी।
हीय में पीय की प्रीति – सरो उमड़ी-घुमड़ी नाहिं जाइ सम्हारी;
नीत विनीत कहै सैंधि कंठ – रही सरनागत मात। तिहारी"
(पद 166, पृ. 73)

इस प्रकार यह काव्य आधुनिक ब्रज भाषा के भक्ति-काव्यों में अपने लिए एक महत्व पूर्ण स्थान रखती है।

...

1.2.1.11 गजल गोविन्द

गुप्त जी द्वारा रचित 104 पृष्ठों में विराजमान "गजल गोविन्द" हिन्दी गजल साहित्य परंपरा में अपनेलिए महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस काव्य में 100 गजल हैं जो भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित है। गजल में बहर (लय, ध्वनि या गेयत्व) का होना

परमावश्यक है । वस्तुतः गेयत्व तो काव्य का प्राण अथवा आत्मा ही है । जिस कविता, गीत या छन्द विशेष में भी गेयत्व न हो, लय अथवा राग न हो, उसमें काव्य सौन्दर्य तथा माधुर्य का भी भाव उत्पन्न नहीं हो सकता । इस दृष्टि से देखें तो गुप्त जी द्वारा रचित साहित्य लय, ध्वनि, गेयत्व का परिपूर्ण स्वरूप है । प्रस्तुत काव्य इसका एक उदाहरण है । इसमें एक सौ गजल है, हर एक गजल का अपना-अपना नाम है । इसका एक उदाहरण देखिए --

गोविन्द ! अपरम्पार महिमा आपकी विख्यात है ।
देवेन्द्र शम्भु विरंचि को भी तो नहीं वह ज्ञात है ।।
हे नाथ ! खल होते प्रबल, अवतार तब-तब धारते ।
जो हैं सुजन मुनि भक्तजन, भय से उन्हें निस्तारते ।।
आते स्वयं संसार में मिटता ~~सब~~ सभी उत्पात है ।
गोविन्द ! अपरम्पार महिमा ।

--- महिमा आपकी विख्यात है

(गजल 97, पृ. 101)

इस प्रकार गुप्त जी द्वारा विरचित यह काव्य अतीव मनोहर एवं सुन्दर है ।

...

1•2•2• गुप्त जी द्वारा रचित अन्य काव्यों का परिचय :—

1•2•2•1• हनुमच्चरित मानस :—

श्री दाऊदयाल गुप्त जी का और एक महोत्कृष्ट रचना "श्री हनुमच्चरित मानस" है, यह आठ काण्डों में 344 पृष्ठों में विराजमान यह महाकाव्य ब्रजभाषा के आधुनिक भक्ति काव्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। यह दोहा – चौपाई शैली में है। शैली की दृष्टि से यह तुलसी के "रामचरित मानस" के अनुरूप है। इस काव्य के नायक "हनुमान" है जो श्रीरामभक्त है। इस काव्य में दो प्रधान पात्र हैं वे हैं ईश्वर के अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र है और नायिका सर्वेश्वरी सीता है। हनुमान जी को नायक बनाकर लिखे गये इस महाकाव्य में श्री हनुमान जी के जीवन चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। यह काव्य भी आठ काण्डों में विभाजित है — 1• अवतरण काण्ड 2• बालकाण्ड 3• किष्किन्धा काण्ड

4• सुन्दर काण्ड 5• सेतुबन्ध काण्ड 6• युद्ध काण्ड

7• अवध काण्ड 8• उत्तर काण्ड।

दुष्ट शिक्षण और शिष्ट रक्षण हेतु भगवान अवतार लेता रहा है। सुर, मुनि गणों के विलाप सुनकर भगवान ने उनको आश्वासन दिलाकर भेजा—

"सुनु सुरगन मम पुन एहि होई। सत्य घटै नसि अधरम जोई
तौ करि हौं मैं धरि अवतारा। संतन्ह रच्छन खलन्ह संहारा
सोइ पुन प्रालहुं मैं एहि काला। धरिहौं द्रुत नरभेष निराला
सकुल दसानन करि वध करहुं। जो भूभार दुसह सह हरहुं।।"

हनुमच्चरित मानस – अवतरण काण्ड, पद 12

भगवान श्रीराम बनकर दशरथ तनय के रूप में प्रकट हुआ। देवताओं ने भी अपने - अपने अंशों से कपि रूपों को प्रकट किया। शम्भु अंश से हनुमान प्रकट हुए ---

"संभु अंस प्रगटेउ हनुमंता। संकट हरन वरद बलवंता।
रामदूत गुन ज्ञान निधाना। अंजनिसुवन जगत सब जाना।।"
हनुमच्चरित मानस-अवतरण काण्ड, पद 13

यहाँ दाऊदयाल गुप्त जी ने हनुमत जन्म सम्बन्धी कई धारणाओं को अपनाया और कल्पना की समाहार शक्ति के द्वारा अत्यंत मनोहरता पूर्वक उन धारणाओं को अपने काव्य में स्थान भी दिया। एक जगह हनुमान को शम्भु अंश सम्भूता कहा तो एक जगह वायुनंदन के रूप में अभिहित किया, एक जगह उन्होंने एक मनोहर कथा को रचाया-- दशरथ ने यज्ञ पुरुष से दिये गये पायस [खीर] को अपने तीन रानियों में बाँटा। उसी समय कैकेयी के हाथ में स्थित पायस [खीर] की चरू को एक गृध्री ने लेकर गगन मार्ग में चलने लगी तो समीर उसे छुड़वाकर अंजनि के अंजुलि में डाल दिया। उसे, पवनप्रदत्त प्रसाद समझकर अंजनी ने सेवन किया। अतः हनुमान जी का जन्म हुआ। [49]

साधारणतया हम जानते हैं भगवान रामचन्द्र जी से पहली मुलाकात हनुमान जी की ऋष्यमूक पर्वत पर ही हुई, उसके पहले नहीं। लेकिन दाऊदयाल गुप्त ने हनुमान जी का बचपन श्रीरामचन्द्र जी के साथ गुजरा कर कथा को अत्यन्त रोचकता प्रदान की।

एक दिन अंजनीदेवी अपने सुत को पास बिठाकर विगत कल्प की रामकथा को सुनाती है, रामभक्त बनने का आशीर्वाद देती है। [50]

एक दिन शिव भगवान श्रीरामचन्द्र के दर्शनार्थ जाते समय हनुमान को भी अपने साथ अयोध्यापुरी ले चले। तब श्रीराम ने हनुमान को देखकर अपने पास ही रख लिया। §5।§

एक दिन कौशिक मुनि ने दशरथ के पास आकर यज्ञ रक्षणार्थ राम, लक्ष्मण को अपने साथ भेजने की आज्ञा ली। उस समय रामचन्द्र जी ने हनुमान को बुलाकर कहा ----

"बढेउ खलन्ह अति अत्याचारा । रच्छहुँ सत हरिहौं भू भारा।
दस मुख दुष्ट परम विकराला । मुनि जेहिं नाम कीन्हि दिग्पाला।
कपि पति अति बल बाली सोई। करि निज ओर लीन्ह खल सोई।
जेहिं सुग्रीव अनुज गृह हीना । आयहु रत सेवक सम दीना
तउ करि है सुकोह कपिराई। भजि है सो निज प्रान बचाई
सोइ कुकाल तेहि उपकृत करहू । रहहु सहाय संग भय हरहू
इचलीला कछु करहुँ सहीई। मख रच्छन मिस मुनि संग जाई।
मारीचादि असुर बलवंता। मारि मिलहुँ तो सन हनुमंता।।"

§हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड,पद 50§

फिर श्रीरामचन्द्र जी ने सीताहरण के बाद ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान से मिलकर उन कपिजनों की सहायता से रावणादि असुरों का वध करके विश्व में सुशांति की स्थापना की।

गुप्त जी की दृष्टि में राम से अधिक उनके भक्तों का उदार सत्कार व भक्ति करनी चाहिए। क्योंकि भक्त अधिक शक्तिशाली होता है। इसीलिए गुप्त जी ने भगवान राम के सेवक हनुमान के स्तुति की है। भगवान श्रीराम के दूत हनुमान की मनोहर, मंगल करनेवाली सुखदायिनी मूर्ति का स्मरण करते ही समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं। भगवान रामचंद्र

ने भी हनुमान से यह उद्घोषणा की — जो तुम्हारी [हनुमान] पूजा करेगा, तुम्हारा भक्त बनेगा वही मेरा भक्त होगा ---

"मोरेउ भगत सोइ प्रिय मोहीं, जो श्रद्धा करि पूजहिं तोहीं
करि है सोइ प्रसन्न नहिं कोई, पावहि मोर कृपा नहिं सोई।।"
[हनुमच्चरित मानस – उत्तरार्ध काण्ड, पद 11]

इसलिए गुप्त जी कहते हैं ---

"भगति राम की जो करि चाहा। चाहिअ प्रथम सुमिरन अपनाहा।
जो समुपस्थित संकट भारा। सुमिरि चाहिअ मुनि पवन कुमारा।।

"सब संकट भरा सोकमय, जो भव सिंधु – अपार।
पाप ताप हरि अन्त महुँ, करि हैं सोइ कपि पार।।"
[हनुमच्चरित मानस – उत्तरार्ध काण्ड,पद87]

गुप्त जी ने हनुमत चरित्र सम्बन्धी अनेक प्रसंगों का वर्णन करने में अनेकानेक ग्रंथों को सहारा लिया। उनमें प्रमुख है -- वाल्मीकि रामायण, आनन्द रामायण, आध्यात्म रामायण, चम्पू रामायण, शिव पुराण, वायु पुराण, स्कन्द पुराण, नारद पुराण आदि।

इस कृति के बारे में डॉ॰राजेन्द्रकुमार अग्रवाल जी कहते हैं — "राम कथा में राम के प्रभाव से हनुमान का जो चरित्र अपने पूरे महत्व को प्राप्त नहीं कर सका था, कवि ने उसे यहाँ पूरी तरह प्रकाशित किया है।"

इस प्रकार गुप्त जी द्वारा विरचित "श्री हनुमच्चरित मानस" आधुनिक हिन्दी ब्रज साहित्य में अपने लिए एक महत्वपूर्ण स्थान कायम कर रखा है।

1·2·2·2· शंकर :—

शिव की कथा शैव ग्रन्थों में एवं पुराणों में वर्णित है। पूर्णत: शिव पर रचे खड़ीबोली महाकाव्य का जो अभाव था "शंकर" महाकाव्य उसकी पूर्ति करता है। शिव सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटनाओं एवं पक्षों से निर्मित यह काव्य 18 सर्गों में 264 पृष्ठों में विराजमान है। ये अठारह सर्ग कथा की दृष्टि से इस प्रकार है — 1· सती शिव विवाह
2· अनिमंत्रित सती का दक्ष यज्ञोत्सव में जाना 3· देवगण के गृह कलह के आन्तरिक परिवेश में सती का आत्मदाह 4· दक्षपत्नी प्रसूति का नयात्मक प्रलाप 5· वीरभद्र की उत्पत्ति और दक्षनगर की ओर प्रस्थान
6· दक्षयज्ञ विध्वंस
7·8· देव – मुनियों का पश्चात्ताप पूर्वक शंकर को प्रसन्न करना
9· पार्वती का अवतरण, हिमालय-नारद संवाद, उमा को तपश्चर्या की प्रेरणा
10· माता के विरोध पर भी उमा का वन गमन और तपश्चर्या
11· इन्द्र की प्रेरणा पर कामदेव के शिवजी के तप भंग करने को जाना
12· कामदेव का भस्म होना
13· पार्वती की उत्कण्ठा, सप्तर्षियों का उमा को भ्रमित करने का प्रयत्न,
किन्तु उमा का अपने निश्चय पर दृढ़ रहना
14· शिवजी द्वारा उमा के प्रेम की परीक्षा
15· हिमालय द्वारा लग्न-पत्रिका प्रेषण
16· मेना का विरोध, उसे विविध रूपों का दर्शन, शिव द्वारा तोरण का भेद
17· शिव – उमा विवाह, द्यूत क्रीडा
18· तारकासुर वध का हर्षोल्लास आदि।

गुप्त जी ने इस काव्य में भगवान शिव को अनेक रूपों दर्शाया है। शिव अव्यक्त ब्रह्म है। फिर भी भक्तों की रक्षा करने हेतु व्यक्त होते है —

"ब्रह्म हैं, अव्यक्त वे ही
व्यक्त भक्तों - हित सदा ही,
नाम रूप अनन्त, व्यापक
है असीमित सम्पदा की।।"

§ शंकर महाकाव्य पृ 24 §

वे सदा भक्तवत्सल भगवान है। भक्तजनों के आपदा को हरते रहते हैं। ध्यातव्य है, विषपान भी केवल लोकहित के लिए ही किया था। §52§ फिर गुप्त जी कहते हैं --

"सत्यशिव सुन्दर सुखद
भोले महा, अघ - ताप भंजन।
वे सदा करते रहे हैं
लोक का कल्याण - चिन्तन।।"

§ शंकर महाकाव्य पृ 84 §

उनके इशारों पर यह संसार चल रहा है। §53§ वही सर्वेश्वर है, समस्त देवगण उनकी पूजा करते हैं। §54§ उनके समान इस जग में अन्य कोई नहीं है। §55§ फिर वे कहते हैं ---

"विश्वास करो - वे ध्यावान, वैभव - निधान जग के स्वामी।
ब्रह्मा, हरि, सुर, नर, किन्नर गण, सबही उनके अनुगामी।।"

§ शंकर महाकाव्य पृ 21। §

गुप्त जी कहते हैं शिव निंदा, हरि निंदा ही है। शिव द्रोहक, हरि भक्त नहीं कहलाते ---

"सन्यासी दुःखधारी भी, ब्रह्मचारी तप धारी भी।
शिवनिन्दक जो हो जाते, हरि - भक्त न वे कहलाते।।"

¦शंकर महाकाव्य पृ. 203 ¦

इसीलिए ही गुप्त जी ने मुख्यतया कृष्ण भक्त होते हुए भी शैव भक्ति का समर्थन किया और गुण गान किया --

"जयमहेश! शंकर। त्रिपुरारी, शक्ति प्रदायक, मंगलकारी।
भक्ति मुक्ति दाता, भय हारी, छवि - विलोक उनमें सुखभारी।।
अजर अमर यह रूप तुम्हारा, सबल काल भी तुमसे हारा।।
नाथ! नम्र शब्दों के द्वारा, आज रही अनुरोध हमारा।
अब तो शीश वरद - कर धरना, हो कुछ दोष, उन्हें भी हरना।।
हमको कभी न नाथ! बिसरना, अनुचर जान अनुग्रह करना।।"

¦ शंकर महाकाव्य पृ. 178 ¦

उस महादेव का ध्यान करना चाहिए। समस्त कार्य सम्पन्न हो जायेगा। शिवपुराण से सर्व संकट दूर्ण हो जायेगा।¦56¦ इसीलिए गुप्त जी कहते हैं ---

"योग, जप, शिव - भक्ति ही कर्तव्य है।"¦

¦ शंकर महाकाव्य पृ. 140 ¦

इस प्रकार गुप्त जी द्वारा विरचित यह "शंकर" महाकाव्य सुंदर बन पड़ा है। शैली में प्रवाह है। भाषा की सरसता एवं सुगमता इस काव्य की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। इस काव्य में कवि की मौलिक प्रतिभा खुलकर सामने आयी है।

1·2·2·3· महाशक्ति दुर्गा :---

यह महाकाव्य भी हिन्दी खड़ीबोली में अष्टादश सर्गों में 304 पृष्ठों में निकला है। श्री दाऊदयाल गुप्त जी द्वारा रचित यह काव्य, साहित्यभण्डार का अमूल्य रत्न है। इसमें दुर्गासप्तशती का उपाख्यान तो है ही, साथ ही देवी भागवत्, देव्युपनिषद्, अन्नपूर्णोपनिषद्, गायत्र्युपनिषद् आदि अनेक उपनिषदों तथा महाकालिका पुराण, स्कन्द पुराण, शिवपुराण, वराह पुराण, विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराणादि में जहाँ जो भी विशेषता मिली उसे ग्रहण करके निगमागम समस्त विभिन्न तन्त्र मन्त्रों से सार भूत समावेश पूर्वक इस काव्य की रचना कथावृत्त के अनुसार छन्दों में हुई है।

इस काव्य ग्रन्थ में "दुर्गासप्तशती" के तेरहों अध्याय का यथा सम्भव पूर्ण रूप से कथन हुआ है। साथ ही सप्तशती में वर्णित अर्गला स्तोत्र, तन्त्रोक्त देवी सूक्त, प्राधानिक रहस्य, वैकृतिक रहस्य, मूर्तिरहस्य आदि को भी सार रूप में सम्मिलित किया गया है। पन्द्रहवीं सर्ग में आदिशक्ति, महामाया रासेश्वरी श्री राधा एवं नन्दा की भी महिमा गायी गई है। सोलहवें सर्ग में मानस पूजा, सत्रहवें सर्ग में देवी भागवत के आधार पर यज्ञ कथा और पूजा, अठारहवें सर्ग में राजा सुरथ और समाधि वैश्य की उपासना से प्रसन्न हुई देवी उन दोनों को इच्छित वर प्रदान करती हैं। इस प्रकार इसमें पुण्यात्मिका परमाहरा महाशक्ति की महिमा का वर्णन किया गया है।

गुप्त जी कहते हैं — महाशक्ति ही सबकुछ है। उसकी इच्छा के बिना कभी, कुछ भी नहीं होता। यद्यपि वह महाशक्ति एक है, किन्तु क्रिया - कलाप की भिन्नता से वह एक ही अनन्त और अज्ञेय रूप धारण करती है ---

"वे ही शताक्षि, दुर्गा, गौरी बन जाती। चण्डी,काली खलदमनी भी
कहलाती।
वे सती पार्वती उमा विशोका होतीं।जो पूजन करता,उसके सब
भय खोतीं
जप,ध्यान,नमस्कारों से उनको ध्याता,बल अन्न, सुधारस, अक्षय
फल वह पाता।।"

१महाशक्ति दुर्गा - पृ. 16 १

ब्रह्म, विष्णु, महेश्वर आदि उसी के अनुचर हैं। रवि, शशि की गति भी उसी पर निर्भर है। सृष्टि, स्थिति, लयकारिणी वही है। ।त्रिदेवों की शक्ति वही है ---

"तुम एक मात्र हो लोक रक्षका माता,
ले प्रेरणा तुमसे रचते विश्व विधाता।
नारायण भी पालन - बल तुमसे पाते।
तव इच्छावश शिव जगती लीन कराते।।"

१ महाशक्ति दुर्गा पृ. 32 १

जब अधर्म बढ़ता है, सन्तों को बहुत दुख होता है तब उस देवी ने अपना रूप दिखाकर दुष्टशिक्षण, शिष्ट रक्षण करती रही। वराह से मिलकर वाराही कहलाती, नारसिंह से मिलकर नारसिंहि कहलाती, वैष्णवी, शिवानी, उमा, रमा, ब्रह्माणी, इन्द्राणी, नन्दा कहे जानेवाली वही है। वही भवबाधा हरानेवाली राधा है। वैष्णवी बनकर प्राणी को परमानन्द प्रदान करनेवाली, शारदा के रूप में ज्ञान-विज्ञान सिखानेवाली, काली बनकर दुष्ट दमन करनेवाली महाशक्ति वही है। १57१

गुप्त जी की मौलिकता यह है "राधा" को महाशक्ति का ही रूप,अवतार मानकर अपने इस काव्य में उनका भी वर्णन किया है। वे कहते हैं---

"त्रेता में सीता रूप हो पाई, वह ही द्वापर में "राधत्" शक्ति कहाई।
यों महाशक्ति जब राधा नाम धराती, तब पंचमहातत्वों का बोध कराती।
[महाशक्ति दुर्गा पृ 253]

गुप्त जी कहते हैं जो उस महाशक्ति का पूजन करते हैं, वे इस भवसागर को पार कर सकते हैं। भक्त जिस रूप में उस माता का दर्शन करना चाहता है, उस रूप में वह दर्शन देती है। भगवती के अनेक रूप हैं, नाम हैं। एक एक रूप के लिए, एक एक अवतार के लिए एक एक वाहन है--- जब वह चामुण्डी रूप धारण करती, प्रेत पर सवारी करती, वाराही महिषवाहना, ऐन्द्री गज पर, वैष्णवी गरुड़ पर, माहेश्वरी वृषभ पर, कौमारी शिखि पर, हरिप्रिया पद्म पर, ब्राह्मी हंसासन पर विराजमान होकर भक्तों को अभय देती हैं। [58] जो उस माँ की कृपा का पात्र होगा उसका जीवन धन्य हो जायेगा ----

"जिन पर माता की कृपा अधिक हो जाती।
निर्मल मति होती, कीर्ति फैलती जाती।।"
[महाशक्ति दुर्गा पृ 52]

जो हर दिन उस माँ के अनन्त रूपों का, नामों का ध्यान करता वह इस जग में विजयी बनता ---

"प्रतिदिन जो इन देवी का गुण गाता।
ध्याता, वह जग में ख्यात सिद्ध हो जाता।।"
[महाशक्ति दुर्गा पृ 248]

इस प्रकार गुप्त जी ने इस महाकाव्य में भगवती दुर्गा माँ के विविध रूपों और उनकी महिमा को अत्यन्त सुन्दरता से वर्णन किया है। साथ ही साथ "मधुकैटभ संहार, महिषासुर वध, चामर वध, उदग्र वध, बिडाल वध, दुर्मुख वध, चण्डमुण्ड वध, रक्त बीज वध, शुम्भ निशुम्भ वध"

आदि प्रसंगों के द्वारा महाशक्ति के भक्त रक्षक एवं दुष्ट संहारक रूप को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्य की शैली सरल, स्पष्ट और सुन्दर है।

1·2·2·4· जय ओंकार :--

परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ नाम है ओंकार। समस्त अवतार उसी अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्त रूप है। चारों वेद और उनकी व्याख्या चार ब्राह्मण ग्रन्थ - शतपथ, गोपथ, ऐतरेय और ताण्ड्य महाब्राह्मण में तो ओंकार की महिमा पर कथानक परक प्रकाश डाला ही गया है, उपनिषदों में भी ओंकार सम्बन्धी आख्यान और उपासना का निर्देश है। इस महाकाव्य में जिन वर्णनों को स्थान दिया गया है, उनमें उपनिषदों का भी अधिक योगदान है। गीता में भी भगवान स्वयं को ओंकार एवं प्रणवाक्षर स्वरूप मानते हैं। इस महाकाव्य में उन्हीं परब्रह्म के विविध रूपों में हिन्दी खड़ीबोली में दर्शन होते हैं।

यह महाकाव्य 250 पृष्ठों में "सोलह सर्गों" में रचा गया है।

"ओम" सर्व व्यापक ब्रह्म है, अनन्त है, सर्वत्र वही है। समस्त रूप उन्ही का है। वही निर्गुण है और सगुण भी। सृष्टि स्थिति लय हेतु वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपों में प्रकट हो रहा है। [59]

वह परब्रह्म है, उनके अनेक रूप है। उसने ही तो विश्व की रचना की। सर्वत्र उसीकी माया दिखाई देती है। कोई नर शिव का, कोई दुर्गा का, कोई विष्णु का, कोई कृष्ण का, कोई हनुमान का भजन करते हैं। लेकिन ये समस्त उपासनाएँ वही "ओम्" परब्रह्म का ही है। भ्रमवश लोग यह नहीं जान पा रहे हैं। [60] गुप्त जी कहते हैं --

"सब रूपों में ही वही अंकुरित होता।
सब अवतारों में वही अवतरित होता।।
सब देवी देवों में भी वही बसा है।
जग जग में केवल वह ही ब्रह्म लसा है।।"

[जय ओंकार पृ. 15]

ओम ही परब्रह्म, सबके कर्ता है। आदि, अनादि वही है। वही व्यक्त, अव्यक्त है, अज, अविनाशी है। वही सर्व संकटहारी है।[61] उसी अव्यक्त ब्रह्म ने वराह रूप धारण कर पृथ्वी को बचाया।[62] वही "वामन" बनकर तीनों लोकों को नाम लिया। [63] वही मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में अवतरित होकर रावणादि दैत्यों का संहार किया। [64] वही कृष्ण के रूप में अवतरित होकर कंसादि दैत्यों को मार कर, जरासंध को हराकर, कुरुकुल का निर्मूलन करने महाभारत युद्ध को रचाया। [65] वही महामाया बनकर मधुकैटभ दैत्यों को विष्णु भगवान से मरवा दिया। [66] वही दुर्गा रूप धारण कर खलदलों को नाश किया। वही काली बनकर रणक्षेत्र में विहार किया। महिषासुर, शुम्भ - निशुम्भ, रक्त बीज, चण्ड - मुण्ड दैत्यों को मार डाला। वही जानकी बनकर दशसिर को मरवाया था, देवकी बनकर कंस का वध करवाया था।[67] उनके अनेक रूप हैं, नाम हैं। संसार में चौरासी लक्ष योनी है, उनमें वहीं विद्यमान है। [68] जल में प्रवाह, अनल में तेज, धरती में सहनता ये सब वही है। [69] गुप्त जी कहते हैं ---

"ओम नाम सब नामों का आधार है,वही व्याप्त सब रूपों में साकार है
वही एक सब निगमागम का सार है,जो ले शरण,उसी का बेड़ा पार है
ओम् नाम लो यही नित्य है,यही अन्त गति यही सत्य है।
सर्व वेदमय यही कथ्य है,सर्व देवमय यही तथ्य है।।"

[जयओंकार पृ. 120]

1.2.2.5 भक्ति-ज्ञान दोहावली

भक्ति, ज्ञान, योग आदि पर मनीषी कविगण बहुत कुछ कहते-लिखते रहे हैं। किन्तु यह सभी विषय ऐसे हैं, जिन पर जितना भी कहा जाए, थोड़ा ही है। क्यों कि इनकी रचनाओं में भी साधक अपने-अपने अनुभवों से काम लेते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन अनुभवों और अनुभूतियों की सीमा कहाँ तक है। दाऊदयाल गुप्त जी के द्वारा विरचित "भक्ति ज्ञान दोहावली" काव्य 400 दोहों में, 44 पृष्ठों में विराजमान है, जो भक्ति-ज्ञान के दोहों से भरपूर है।

गुप्त जी कहते है कि सदा भगवान कृष्ण का ध्यान करो। अहँकार छोड़े तो कल्याण होता है। उनका कृष्ण भक्ति संबंधी दोहा देखिए --

उठत चलत बैठत सदा, रहैं कृष्ण को ध्यान
आडम्बर सब छोड़िये, तौ निश्चै कल्यान ॥ (पृ. 7, पद 28)

यह कर्म भूमि है। अच्छे काम करना चाहिए। असत्य को छोड़कर, सत्य मार्ग पर चलना चाहिए। परहित चिंतन रखना चाहिए। समस्त जीवों से प्रेम करो, प्रेम रूप है भगवान, जो सदा भक्तों के हृदय में निवास रखते हैं —

कर्मभूमि यह भूमि है, सतकर्मन्ह चितलाउ
असत आचरन त्यागि कै, परहित नेह लगाउ ॥ (पृ. 27, पद 221)

भगवान सगुण भी है और निर्गुण भी। वह आनंद स्वरूप है। ऐसी भावना करके उनके प्रति भक्ति भाव को रखनी चाहिए। गुप्त जी कहते हैं--

सगुन अगुन सब रूप जो, सर्वोपरि सुखधाम
प्रभु आनन्द स्वरूप लखि, भावन भरि प्रनाम ॥ (पृ. 44, पद 400)

इस प्रकार गुप्त जी द्वारा विरचित यह काव्य भक्ति-ज्ञान युत हिन्दी साहित्य भण्डार के लिए एक अमूल्य रत्न है।

1.2.2.6 भक्ति-भजन माला

सूरदास कहते हैं-- "भक्ति बिन भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारी ।" यह सच्ची बात है कि भगवान, भक्ति के कारण ही वश हो जाता है । इसलिए कहते हैं कि "भक्ति वशः पुरुषः" । भक्त, अपने तन, मन और धन को भगवान् के चरणों पर समर्पित करके भाव विभोर बन जाता है, उनके मधुमय लीलाओं का गुणगान करता है, कीर्तन करता है । यद्यपि अ अब तक भजनों की रचना अनेक कवि-मनीषीगण करते रहे हैं, तथापि भावभक्ति के सरोवर में नव सरोज खिलते ही रहते हैं । अपने प्रभु के प्रति भक्त-कवि भी अपनी-अपनी अनुभूतियों के साथ अपने भाव पुष्प समर्पित करने में उत्साहित और आकांक्षित रहते आये हैं । दाऊदयाल गुप्त जी से विरचित "भक्ति-भजन माला" इसी आकांक्षा का एक सफल रूप है, जो खड़ीबोली में लिखी गयी है । इसमें "110 भजन" है, जो अत्यंत मनोहर एवं भावमय है । इस काव्य में गुप्त जी में स्थित एक भक्त हृदय हमारे सामने मुखरित हो उठता है । देखिए --

> सब भक्त विचारे कैसे मिलें भगवान ?
> जप-तप-पूजन का नाथ ! नहीं कुछ ज्ञान ।।
> अर्घ्य पाद्य आसन आवाहन, हमें नहीं कुछ आता
> पुष्प माल्य चन्दन अक्षत भी कैसे कब चढ़ पाता ।।
> ना साधन ही है कैसे जुड़े सामान ।
> निज चरण-शरण दो अब तो दयानिधान ।। (पद 29, पृ. 26)

गुप्त जी सदा यही बात कहते आये हैं कि भगवान एक है । उनके नाम अनेक है । सम्प्रदाय अनेक है, पर मंजिल एक है । इस सत्य को स्वीकार करतो --

ईश्वर एक सदा सब का तू ले ले कोई नाम
व्याप्त हो रही है जग में उसकी ही कीर्ति ललाम ।।
सम्प्रदाय है भिन्न-भिन्न पर मंजिल एक रही है ।
जिसने जिस स्वरूप में ध्याया वैसी टेक रही है ।।" (पद 110, पृ. 98)

इस प्रकार उन्नत भावनाओं से ओत-प्रोत गुप्त जी द्वारा विरचित यह काव्य "भक्ति दोहावली" अपनी ढंग से सुन्दर बन पड़ी है ।

1·2·2·7 <u>गुप्त जी की रचनाओं में पुरस्कृत कृतियाँ</u> :---

1· "मन न भए दस बीस" [ब्रजभाषा] उ·प्र· हिन्दी संस्थान, लखनऊ से
2· श्री हनुमच्चरित मानस [महाकाव्य] उ·प्र· हिन्दी संस्थान,लखनऊ द्वारा
"मलिक मोहम्मद जायसी" – अनुशंसा पुरस्कार से।
3· श्रीकृष्ण चरितमानस [महाकाव्य] बिहार सरकार द्वारा
"डॉ·कामिल बुल्के" पुरस्कार से।

1·2·2·8 <u>सम्मानोपाधियाँ</u> :--

1· साहित्य मार्तण्ड – [बा·वृन्दावनदास, हिन्दी संस्थान,मथुरा]
2· साहित्य श्री – [साहित्य लोक, प्रतापगढ़]
3· राष्ट्रभाषा आचार्य – [अ·भा· साहित्यकार अभिनन्दन समिति उ·प्र·]
4· ब्रज विभूति – [अ·भा·ब्रज साहित्य संगम, आगरा]
5· साहित्य वारिधि – [अ·भा· ब्रज कला संगीत समिति]
6· साहित्य रत्नाकर – [साहित्य महन्त समिति]
7· मनीषी पत्रकार – [प्रेस क्लब, मथुरा]
8· अग्रभूषण – [अ·भा·अग्रवाल समाज] इत्यादि

1·3· <u>निष्कर्ष</u> :---

श्री दाऊदयाल गुप्त जी ब्रज आंचल में आधुनिक हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित कवि हैं। इन्होंने ब्रज और खड़ीबोली दोनों में रचना की। इनकी प्रतिभा चतुर्मुखी है। इन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, निबन्ध आदि साहित्य के सभी अंगों में सफलता पूर्वक रचनाएँ करके अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है। गुप्त जी भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। पिता की भक्ति भावना का असर बालक दाऊदयाल गुप्त

के हृदय पर पड़ा और आगे चलकर यही भक्ति भावना उनके हृदय में खूब विकसित हुई। फल स्वरूप उनके काव्यों में वैष्णव - भक्ति की भावना पूर्ण रूप से व्यक्त हुई। भक्ति के अलावा गुप्त जी ने अपनी काव्य - रचनाओं में देश भक्ति को भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। गुप्त जी की भाषा संस्कृत गर्भित है। इनकी भाषा में सर्वत्र कोमलकांत पदावली का प्रयोग, अनुप्रासों का लालित्य, यमकादि का उचित व्यवहार, भाषा में अनेक रूपता आदि दृष्टिगोचर होते हैं। इसीलिए इनकी भाषा अत्यन्त सरस, स्वाभाविक और हृदय ग्राही बन पड़ी है।

****

सन्दर्भ सूची

1. श्री दाऊदयाल गुप्त से दिनांक 20.5.91 को हुए साक्षात्कार के आधार पर

2. दाऊदयाल के काव्य साहित्य का काव्य शास्त्रीय अध्ययन
डॉ. राजेन्द्र कुमार अग्रवाल पृ-2.

3. वही वही पृ-5.

4. श्री दाऊदयाल गुप्त से दिनांक 20.5.91 को हुए साक्षात्कार के आधार पर

5. दाऊदयाल के काव्य साहित्य का
काव्यशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. राजेन्द्रकुमार अग्रवाल, पृ-5.

6. श्री दाऊदयाल गुप्त से दिनांक 20.5.91 को हुए साक्षात्कार के आधार पर

7. वही वही

8. "राधा" - दाऊदयाल गुप्त पृ-3.

9. श्रीकृष्ण चरितमानस - दाऊदयाल गुप्त, मथुराकांड पद 73.

10. वही - वही द्वारिकाकांड, पद 189.

11. वही - वही उत्तर काण्ड, पद 85.

12. वही - वही वही पद 186.

13. दाऊदयाल के काव्य साहित्य का
काव्यशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. राजेन्द्रकुमार अग्रवाल, पृ-11.

14. राधा - दाऊदयाल गुप्त पृ-5.

15. वही - वही पृ-86.

16. वही - वही पृ-53.

17. वही - वही पृ-43,44.

18. वही - वही पृ-77.

19. बवही - वही पृ-8.

20. वही - वही पृ-84.

21.	राधा	- दाऊदयाल गुप्त		पृ-86.
22.	वही	- वही		पृ-234.
23.	हिन्दी साहित्य में राधा	- द्वारिका प्रसाद मीतल		पृ-559.
24.	दाऊदयाल के काव्य साहित्य का काव्यशास्त्रीय अध्ययन	- डॉ.राजेन्द्रकुमार अग्रवाल		पृ-12.
25.	वही	- वही		पृ-13.
26.	महारास	- दाऊदयाल गुप्त		पृ-11.
27.	वही	- वही	प्रथम अध्याय	पृ-41,42.
28.	वही	- वही	वही	पृ-45.
29.	वही	- वही	प्राक्कथन	पृ-14.
30.	वही	- वही	दूसरा अध्याय	पृ-55.
31.	वही	- वही	प्राक्कथन	पृ-18.
32.	वही	- वही	चतुर्थ अध्याय	पृ-76,77.
33.	वही	- वही	वही	पृ-77,78.
34.	श्याम - सतक	- वही		पद 13.
35.	वही	- वही		पद-15.
36.	वही	- वही		पद-34.
37.	वही	- वही		पद-35.
38.	वही	- वही		पद-96.
39.	वही	- वही		पद-96.
40.	श्याम - संदेसौं	- वही		पृ-19.
41.	वही	- वही		पृ-46.
42.	वही	- वही		पृ-51.
43.	वही	- वही		पृ-69.
444.	वही	- वही		पृ-72,73.
45.	वही	- वही		पृ-83.

46• दाऊदयाल के काव्य साहित्य का
काव्य शास्त्रीय अध्ययन - डॉ•राजेन्द्रकुमार अग्रवाल पृ-14•
47• वैभव - दाऊदयाल गुप्त पद-38•
48• दाऊदयाल के काव्य साहित्य का
काव्य शास्त्रीय अध्ययन - डॉ•राजेन्द्रकुमार अग्रवाल पृ-14•
49• हनुमच्चरित मानस - दाऊदयाल गुप्त, अवतरण काण्ड, पद-49•
50• वही - वही बालकाण्ड पद-25,26•
51• वही - वही वही पद-46•
52• "शंकर" महाकाव्य - वही पृ-23•
53• वही - वही पृ-65•
54• वही - वही पृ-91•
55• वही - वही पृ-227•
56• वही - वही पृ-131•
57• महाशक्ति दुर्गा - वही पृ-257,258•
58• वही - वही पृ-19•
59• जयओंकार - वही पृ-11•
60• वही - वही पृ-14•
61• वही - वही पृ-23•
62• वही - वही पृ-40•
63• वही - वही पृ-102•
64• वही - वही पृ-160•
65• वही - वही पृ-162,163
66• वही - वही पृ-241•
67• वही - वही पृ-242•
68• वही - वही पृ-50•
69• वही - वही पृ-51•

****

द्वितीय अध्याय

भक्ति का स्वरूप

द्वितीय अध्याय

भक्ति तत्व – भक्ति का स्वरूप

2·1· भक्ति की व्याख्या :—

भक्ति एक रागात्मिका प्रवृत्ति है, हृदय का भाव। कर्मफल के प्रति अनासक्त रहकर नैष्कर्म्य की स्थिति की प्राप्ति ही "भक्ति" है। साधना एवं उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता तथा महत्ता का प्रतिपादन वैष्णव चिन्तन धारा का मूलस्वर रहा है। गीता, भागवत, नारद भक्तिसूत्र, नारद पंचरात्र आदि ग्रन्थों द्वारा भक्ति को कर्म तथा योग से भी श्रेष्ठतम स्थान दिया गया है।

भक्ति "शब्द" "भज" धातु से "क्तिन्" प्रत्यय लगाने से बना है। इसका अर्थ है सप्रेम – सेवा। सेवा में प्रेम का भाव निहित रहता है। प्रेम की पूर्णता सेवाभाव में ही है। भक्ति का अर्थ होता है — सेवा, आराधना, श्रद्धा, अनुराग विशेष आदि। भक्ति के बिना किसी भी मनोरथ की प्राप्ति नहीं हो सकती, भागवत – प्राप्ति भी "भक्ति" के बिना संभव नहीं होती।

भक्ति की धारणा अति प्राचीन है। भक्ति का उद्गम वेदों से माना जाता है। डॉ·मुंशीराम शर्मा इस सम्बन्ध में कहते हैं —

वैदिक साहित्य वेदत्रयी के नाम से प्रख्यात है, जो ज्ञान, कर्म एवं उपासना तीन मार्गों का निर्देश करता है, भक्ति तीनों मार्गों की पावन त्रिवेणी का संगम है।{1}

नारदीय पांचरात्र के अनुसार सम्पूर्ण इन्द्रियों को माया के बन्धनों से सर्वथा मुक्त करके अनन्य मनसा भगवदाराधन ही भक्ति है। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रभु के प्रति सर्वांगीण समर्पण को अर्थात् शरणागति को ही "भक्ति" माना है। [2]

शाण्डिल्य सूत्र में ईश्वर के प्रति परानुरक्ति को ही "भक्ति" कहा गया है --"सा परानुरक्ति रीश्वरे।।" [3] नारद भक्ति सूत्र में भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ईश्वर के प्रति प्रेम का नाम ही भक्ति है। "सा त्वस्मिन् प्रेम रूपा:।" [4]

भक्ति स्वत: ही पूर्ण है। वह कर्मज्ञान आदि किसी भी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रखती। कर्म का उद्देश्य वैयक्तिक सुख है। ज्ञान का निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्ति। परन्तु भक्ति का उद्देश्य सर्वथा भिन्न है। जबतक साधक भोग और मोक्ष के मोह से मुक्त न होगा तबतक उसमें भक्ति का प्रादुर्भाव हो ही न सकेगा ---

"भक्ति मुक्ति स्पृहा यावद् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद् भक्ति सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत।।"

[भक्ति रसामृत सिंधु-पूर्वलहरी- 2-1।]

श्री वल्लभाचार्य जी ने भक्ति की व्याख्या की है -- भगवान् में माहात्म्य - ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है। मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं है ---

"माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतो अधिक:
स्नेहो भक्तिरीति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा।"

[तत्त्वदीप निबंध - श्लोक 46]

सूरदास मानते हैं कि जीव के अन्य धर्म क्षणिक है, मात्र भक्ति ही ऐसी है जो युग - युग तक यशस्विनी बनी रहती है तथा भक्ति से ही भगवान की प्राप्ति होती है ---

"भक्ति बिन भगवंत दुर्लभ कहत निगम पुकारि।"
ड्सूरसागर - पृ-37ड्

हितहरिवंश मनुष्य के शरीर की सार्थकता भक्ति से ही मानते हैं। उनका कहना है कि रघुनाथ की सेवा करने में ही मानव शरीर की सार्थकता है ---

"मानुष को तन पाई भजौ रघुनाथ को।"
ड्श्री हित स्फुट वाणी -7।ड्

भगवान को पाने के लिए भक्तिमार्ग ही श्रेष्ठ कहा गया है। क्योंकि "भक्ति वशः पुरुषः"। भगवान भक्ति के कारण ही भक्त के वशीभूत होता है। विशेषता यह है कि भगवान भी अपने भक्त का भजन करते हैं जिस प्रकार भक्त भगवान का---

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्।"ड्
ड् भगवद्गीता - 4/11ड्

इसी बात पर विश्वास रखकर भक्त मनसा, वाचा, कर्मणा अपने को भगवान के प्रति समर्पण करता है, अपने उपास्य पर चित्त को एकाग्र करता है, यही भक्ति है। इष्ट के प्रति चित्त को निष्ठ बनाना ही भक्ति है।

भक्ति स्वयं मोक्ष क रूपा मानी गई है। वास्तविक आध्यात्मिक ज्ञान भक्ति का आनुषंगिक फल है। स्वरूपाशक्ति, तटस्थाशक्ति और

मायाशक्ति से उपलक्षित ईश्वर के त्रिविध स्वरूप का साक्षात्कार ही सच्चा तत्वज्ञान है, ईश्वर इन शक्तियों से भिन्न - अभिन्न दोनों है। भक्ति द्वारा ही इन रूपों का साक्षात्कार सम्भव है।

2·1·1· <u>भक्ति के प्रकार</u> :---

गीता में भक्तों के जो चार भेद - अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी कहे गये हैं। उन्हें प्रकारान्तर से भक्ति के भेद भी माना जा सकता है। [5] ज्ञानी भक्त को भगवान में एकीभाव से स्थित हुआ माना गया है और भगवान को "ज्ञानीभक्त" अत्यधिक प्रिय है, ऐसा कहकर "ज्ञानीभक्त" की उत्कृष्टता भी स्थापित की गयी है---

"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्ति विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः।"
[गीता 7/17]

यों गीता में भक्ति को परा ही माना गया है। "मद्भक्तिं लभते पराम्।"[6] के आधार पर यही कहा जा सकता है कि गीता में भक्ति के भेद की सम्भावना दिखाई नहीं देती। श्रद्धा के तीन भेद अवश्य मिलते हैं — सात्त्विकी, राजसी और तामसी। "[7] इन तीनों प्रकार की श्रद्धा को गीता में व्याख्यायित भी किया गया है।

श्रीमद्भागवत् में भक्ति और साधन दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ है। मन की एकाग्रता से भगवान् का नित्य निरन्तर श्रवण, कीर्तन और आराधना भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान में परानुरक्ति उसका साध्य पक्ष है, साधन रूपा भक्ति को प्रेमाभक्ति तथा रागानुगा अथवा रागात्मिका भक्ति के नाम से पुकारते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु के मत से भक्ति द्विविधा है। वैधी और रागानुगा। भक्ति द्वारा भक्त किसी भी बाह्य उद्देश्य को न रखकर ईश्वरोन्मुख हो जाता है। भक्ति वह शक्ति है जो ईश्वर का हमारे साथ गठ बन्धन कर देती है। "भक्तिरसामृत सिंधु" के रचयिता श्री रूपगोस्वामी ने भक्ति को त्रिविधा मानी है -- साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति ---

"सा भक्ति: साधनं,भव:, प्रेमाचेतित्रिधोदिता।"

(भक्तिरसामृत सिंधु - 2/1)

साधन भक्ति की अपेक्षा दोनों भेद अधिक प्रशस्त है।

श्रीमद्भागवत् में भक्ति के कई भेद गिनाये गये हैं, तृतीय स्कंध में भक्ति के सात्विकी, राजसी, तामसी तथा निर्गुण चार प्रकार माने गये हैं। फिर सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद ने भक्ति के नौ भेद बतलाये हैं ---

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।"

(श्रीमद्भागवत् माहात्म्य,अध्याय 5,श्लोक 23)

भगवान् व भक्ति की प्राप्ति के लिए अंत:करण की शुद्धि आवश्यक है। उसकेलिए कर्मों के फल का त्याग करना चाहिए। भजन से महान पापी भी "साधु" हो जाता है। भजन के अंतर्गत कीर्तन, नामस्मरण, तथा पादसेवनम् अर्थात् पूजा का विधान भी है, भगवान भक्त के पत्र,पुष्प, फल के समर्पण से भी सन्तुष्ट हो जाते हैं ---

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मना।"

(गीता -9/26)

भक्ति ग्रन्थों में भक्ति व उपासना करने की विभिन्न भाव भूमियाँ बतायी गयी हैं। वे हैं दास्य भाव, सख्य भाव तथा कान्ता भाव। इन सबमें भक्ति प्रक्रिया की अन्तिम अवस्था आत्मनिवेदन है। भगवान कृष्ण कहते हैं ---

"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"

[गीता - 18/66]

इन समस्त भेदों के अध्ययन करने के बाद हम इस विषय पर पहुँच सकते हैं कि मुख्य रूप से भक्ति के तीन पक्ष माने जाते हैं --- उपास्य, उपासक और उपासना। इसी आधार पर भक्ति भी मुख्य रूप से उपास्यमूलक भक्ति, उपासना मूलक भक्ति और उपासकमूलक भक्ति हो सकती है।

2•2•1• उपास्यमूलक भक्ति :---

भजनीय के स्वरूप भेद से भक्ति दो प्रकार की जाती है --- निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। फिर सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप से तीन रूपों में देखी जाती है -- शैव भक्ति, शाक्त भक्ति, वैष्णव भक्ति। वैष्णवभक्ति विष्णु के विविध अवतारों के आधार पर अनेक रूपों से की जाती है। जिसमें राम और कृष्ण की भक्ति प्रधान है।

उपास्यमूलक भक्ति को इस प्रकार भी दर्शाया जा सकता है

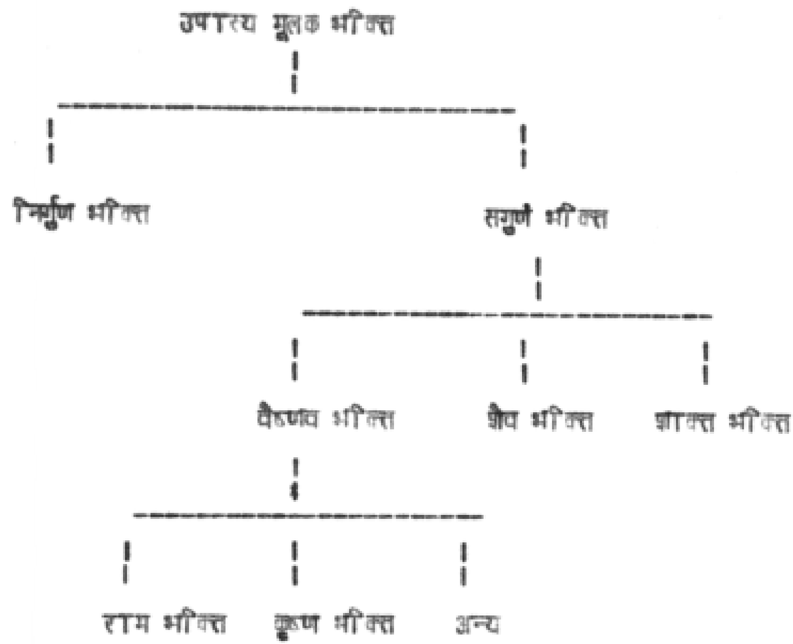

इनके सम्यक् विवेचन से इनका विवरण सहज ही होता है।

अ. <u>निर्गुण भक्ति</u> :—

जब भक्ति आत्मरूपिणी हो जाती है, "अहं" प्रत्यय की साक्षिणी बनती है। निस्संशयात्मिका होती है, तब वह निर्गुण कहलाती है। इसमें भगवान के साथ भक्त की अनन्यवृत्ति हो जाती है। देह धर्म तथा इन्द्रियों के विषयों का आभास नहीं हो जाती है। साधक की सारी मनोवृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं तभी वह भक्त केवल निर्गुण भक्ति में लीन होता है।

निर्गुण भक्त परमात्मा के अवतारों में, उसकी प्रतिमा आदि प्रतीकों में विश्वास नहीं करता। फिर भी अपने निराकार आराध्य को माता - पिता, पति या पत्नी के रूप में मानकर उनके प्रति प्रेम व्यक्त करता है। लेकिन इस स्वरूप का आराधना करना कष्ट साध्य है। स्वयं भगवान ने गीता में कहा ---

"क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्त चेतसाम्
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।" [गीता 12/5]

आ. सगुण भक्ति :---

भगवान का सगुण व साकार रूप की आराधना करनेवालों की भक्ति "सगुण भक्ति" माननी चाहिए। "सगुण भक्ति" का सम्बन्ध साकार भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम से होता है। शांडिल्य कृत भक्ति सूत्रों का व्याख्यान करते हुए नारायण तीर्थ ने बतलाया है कि आचार्य बादरायण के मतानुसार निर्गुण भक्ति का पर्यवसान "सोऽहम्" बुद्धि में होता है और आचार्य कश्यप के अनुसार सगुण भक्ति का पर्यवसान "दासोऽहम्" बुद्धि में।"[6] सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप से तीन रूपों में देखी जाती है।

क. शैव भक्ति :---

भगवान शंकर के प्रति आस्था रखकर की जानेवाली भक्ति शैव भक्ति है। भगवान शंकर की उपासना लाखों वर्ष पहले से होती चली आ रही है। वेद, पुराण, उपनिषद् आदि विविध शास्त्र इसके प्रमाण हैं। शंकर के नाम भी बहुत से हैं, जिनमें शिव, महादेव, भूतनाथ, रुद्र आदि नाम तो सर्वाधिक प्रसिद्ध ही है। वेदों में शंकर के "रुद्रनाम" की बड़ी महिमा स्वीकार की गई है---

"नमस्ते रुद्र मन्य व उतोत इषवे नमः।
बाहुभ्यामुतते नमः।।" {यजुर्वेद 1/16}

महाविष का पान करने से उनका कण्ठ नीला हो गया था। इसीलिए वे नीलकण्ठ कहलाने लगे। यजुर्वेद में भी उनकी स्तुति सहस्र नेत्र एवं नीलकण्ठ की विशेषता के साथ की गई है।

"नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्त्राक्षायमीढुषे।
अथोये अस्य सत्वानोहन्तेभ्योकरन्नमः।।" {यजुर्वेद 8/16}

शंकर एक मात्र परब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ नाम है, जो सर्वदेवमय और सर्व विश्वमय है। सृष्टि, स्थिति, लयकारक वही है। इस प्रकार की भक्ति शिव के प्रति रखकर की जानेवाली उपासना ही शैवोपासना है।

ख• शाक्त भक्ति :---

हिन्दू धर्म में त्रिदेव की अभेदता ही नहीं शक्तियों के साथ अभिन्नता सिद्ध की गयी है। ब्रह्म, विष्णु, शिव की शक्तियाँ ब्राह्मी, वैष्णवी, शिवा कहलाती है। इन सबसे परे मूलशक्ति - पराशक्ति की कल्पना भी की गयी है। देवी भागवत में भगवान विष्णु कहते हैं कि शक्ति ही सकल चराचर प्राणियों के मोह का कारण है। शक्ति से मोहित होकर ही यह भावना देवताओं में व्यक्त होती है -- मैं विष्णु हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ और मैं रुद्र हूँ ---

"अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोहमिति - मोहिता।
न जानीमो वयं दृयात: परं वस्तु सनातनम्।।"

{ देवीभागवत् -- कल्याण देवी भागवतांक पृ23
से उद्धृत}

आगे चलकर कहा गया है कि शक्ति ही सम्पूर्ण जगत की आत्मा है और शक्ति ही चेतन - अचेतन जगत का कारण है ---

"एषा भगवती देवी सर्वेषा कारणं हिन:।
महा विद्या महाविद्या पूर्ण प्रकृति स्वरूपा।।
दुर्ज्ञेयाल्पधियां देवी योगगम्या दुराश्रया।
इच्छा परमात्मन: कर्म, नित्यानित्य स्वरूपिणी।।"
{देवी भागवत् 3/3}

शास्त्रकारों ने अपने ढंग से नाना नामों की उपाधि देकर शक्ति की महिमा को प्रकाशित किया है। यद्यपि वह महाशक्ति एक है किन्तु क्रिया - कलाप की भिन्नता से वह अनन्त और असंख्य रूप धारण करती है। तंत्र शास्त्रों में देवी के रूपों की उपासना भी भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न - भिन्न मन्त्रों के द्वारा करने का निर्देश मिलता है ---

"वैष्णवी तन्त्र मन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव।
मूर्तिभेद यथा देवी पूजां गृह्णाति भूतये।।"
{कालिका पुराण}

अर्थ है "हे भैरव! वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र से वैष्णवी देवी का तथा दुर्गातन्त्र से दुर्गा का पूजन करो।" इसी प्रकार वह देवी मूर्तिभेद के अ अनुसार ही प्राणियों से पूजा ग्रहण करती है।" उसके उनके नाम हैं --- उमा, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती, चण्डी, काली, राधा आदि।
जिस रूप में साधक उस शक्ति का साक्षात्कार करना चाहता है उस रूप में, वह उसे अभय प्रदान करती है। इस प्रकार शक्ति के प्रति की जानेवाली उपासना शाक्तोपासना कही जाती है।

ग• <u>वैष्णव भक्ति</u> :---

वैष्णव धर्म का व्यवस्थित रूप हमें विष्णु पूजा के रूप में भागवत धर्म के प्रतिपादक पांचरात्र, सात्वत एवं नारायणी धर्म की शाखाओं में दृष्टिगत होता है। वैष्णवभक्ति मार्ग का वर्णन हमें महाभारत, गीता और पुराण ग्रन्थों में मिलता है। वैष्णव भक्ति, विष्णु के विविध अवतारों के आधार पर अनेक रूपों में की जाती है। जिसमें राम और कृष्ण की भक्ति प्रधान है।

अ• <u>रामभक्ति</u> :---

प्रागैतिहासिक युग से आधुनिक युग तक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के शील शक्ति एवं सौन्दर्य से मण्डित अलौकिक व्यक्तित्व के विविध रूपों से जनमानस को आकृष्ट किया है। "वाल्मीकि रामायण" को आदि काव्य मानकर रामकथा का मूल स्त्रोत स्वीकार किया जाता है। रामकथा के ओज एवं माधुर्य को जनमानस की भव भूमि पर अधिष्ठित करने का श्रेय भक्तिकालीन भक्त कवियों को ही प्राप्त है।

राम कोई साधारण पुरुष नहीं है। वे पूर्ण ब्रह्म का अवतार है। वही विष्णु, नारायण है, देवाधिदेव है। ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र तक उनकी उपासना करते हैं। वे संसार के कण - कण में व्याप्त है और संसार उनके रोम रोम में व्याप्त है। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। वे शक्तिशाली, शीलवान् तथा परम सौन्दर्यशाली है। उस परम सौन्दर्य-मूर्ति, लोक कल्याणकारी को वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं ---

"जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन प्रभु प्रेरक सही
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही।
पाथोदगात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि राम कृपालु बाहु विसाल भव भय मोचनं।।"
(तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खंड (मानस)
पृ.294)

गौ, देवता, ब्राह्मणों की रक्षा करने, पृथ्वी का भार उतारने, असुरों का संहार करने तथा भक्तों का उद्धार करने के लिए निज इच्छा से पृथ्वी पर अवतरित होकर प्रभु राम अनेक प्रकार के मानवीय चरित्र करते हैं ----

"भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनुभूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।।"(9)

"निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।"(10)

दशरथ पुत्र के रूप में अवतरित होकर रावण, कुंभकर्णादि दैत्यों को नाश करके धर्म की स्थापना की। इस प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम राम के प्रति अनन्य निष्ठा से की जानेवाली भक्ति राम भक्ति है।

ब. <u>कृष्णभक्ति तथा अन्य</u> :---

भगवान राम मर्यादापुरुषोत्तम है तो भगवान कृष्ण लीलापुरुषोत्तम वैदिककाल से ही किसी न किसी रूप में सगुणोपासना के प्रमुख देव कृष्ण काव्य के नायक के रूप में कृष्ण चरित्र पाया जाता है। श्री महाभागवत कृष्णभक्ति का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ कहा जाता है। महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक जितना कृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सब भागवत में एकत्रित हो

गया है। मुख्य रूप से श्रीकृष्ण के तीन रूप हमारे सामने है -- एक महाभारत के कृष्ण, दूसरा गीता के कृष्ण, तीसरा भागवत के कृष्ण। परन्तु प्रधानता उनके रसिकेश्वर स्वरूप का ही है। सूरदास, नंददास, रसखान आदि मध्यकालीन वैष्णव भक्त कवियों के कृष्ण भागवत के व रसिकेश्वर कृष्ण ही है।

श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम, घट - घट व्यापक, अन्तर्यामी, अज, अनीह, अद्वैत ब्रह्म है। सच्चिदानंद है। सृष्टि, स्थिति, लयकारक वही है। भक्त कवि सूरदास कहते हैं -- श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म है। सगुण और निर्गुण हैं। निर्गुण के रूप में गुणातीत, अविगत, अगम, अगोचर है तो सगुण रूप में लीलाधारी राधावर, कुंज बिहारी है। सगुण रूप धारण करके उसने ब्रज में अवतार लिया है, पर उसकी माया ऐसी अद्भुत है कि जिसे श्रुति भी पार नहीं पा सकी है ---

"गुन अतीत अविगत न जनावै, जस अपार श्रुति पार न पावै
जाकी माया लखै न कोई, निर्गुण सगुण धरु सोई।।
अगम अगोचर लीलाधारी, सो राधा बस कुंज बिहारी।।"
{सूरसागर पद 621}

गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्पष्टतया कहा है -- साधुओं की रक्षा करने, दुष्टों का नाश करने, धर्म संस्थापनार्थ अवतरित होता हूँ।

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।" {गीता 4/8}

इस प्रकार ब्रज मनोहर, मुरलीधर, राधा मनोहर, लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण के प्रति की जानेवाली भक्ति "कृष्णभक्ति" है। डॉ॰नगेन्द्र कहते हैं --"पुराणों ने वैष्णव भक्ति के लिए अवतारी राम

और कृष्ण के चरित्र एवं लीलाओं का विस्तार से प्रस्तुत कर एक नये आयाम के लिए अवसर प्रदान किया। राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रूप तो उतने विस्तार से पुराणों में स्थान न पा सका, किन्तु कृष्ण की अपार लीलाओं से पुराणों का कलेवर भरा पड़ा है। कृष्ण के ऐश्वर्यपरक कृत्यों में असुरों के विनाश और धर्म संस्थापन के साथ ही माधुर्यलीला परक वर्णनों से भी पुराण साहित्य आपूर्ण है।"।।।

सगुण भक्ति में कुछ अन्य आराधनीय रूपों की उपासना भी प्रचलित है, जिन्हें सगुण उपास्यों के अन्तरंग सम्बन्धियों के रूप में भक्त अपने सहायक और कल्याणकर्ता के रूप में देखता है। इनमें से हनुमान, गणेश, सरस्वती आदि प्रमुख है।

2•2•2• <u>उपासना मूलक भक्ति [नवधा भक्ति]</u>

भक्ति के अन्तर्गत उपासना उसका व्यावहारिक रूप है। उपासना के अन्तर्गत उपास्य के प्रति किये गये उपासक के कर्मादि आते हैं। उपासना मूलक भक्ति श्रीमद् भागवत और अध्यात्म रामायण में उपलब्ध होती है, जिसके उपासनापरक और साधना पर पृथक - पृथक दो पक्ष हैं। भागवत में यह भक्ति नौ प्रकार की मानी गई है ---

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।।"

[श्रीमद्भागवत पु7/5/23]

इनके तीन भेद किये जा सकते हैं। श्रवण, कीर्तन और स्मरण - आराध्य के नाम को प्रधानता देनेवाले है। पादसेवन, अर्चन, वन्दन रूप सम्बन्धी वैधी भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। वैधी भक्ति नियमपूर्वक की

की जानेवाली उपासना है। दास्य , सख्य और आत्मनिवेदनम सम्बन्धी भाव रागात्मिका भक्ति से समुहन्धित हैं। शास्त्र ग्रन्थों में भक्ति के नाना प्रकारों का उल्लेख तथा विवेचन हुआ है तथापि नवधा भक्ति ही सर्वसम्मत मानी गयी है। जिनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है।

2·2·2·1· श्रवण भक्ति :---

श्रवण नवधा भक्ति का पहला लक्षण है। भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम का वर्णन, श्रवण करना या पठन करना+-"श्रवण भक्ति " है। भक्त अपने मन, वाणी, शरीर को भगवान के गुण श्रवण करने के साधन मानता है। श्रवण भक्ति से मन और वाणी पवित्र करता है। सनकादि मुनि श्रवण भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। श्री हनुमान जी की "यत्र तत्र रघुनाथ कीर्तनम् तत्र तत्र कृतमस्त कांजलिम् वाष्पवारि परि- पूर्ण लोचनम्" वाली बात लोक प्रसिद्ध है। सूर ने भी इसे भक्ति और ज्ञानदायिका के रूप में स्वीकार किया है। ‡12‡ भगवन्नाम श्रवण विरहित जीवन को उन्होंने स्पष्टतः दुःख भाजन माना है।‡13‡

2·2·2·2· कीर्तन भक्ति :---

भगवान के नाम, गुण माहात्म्य, लीला आदि का वर्णन करना, गान करना या उसका उच्च स्वर से पाठ करना कीर्तन कहलाता है। भक्तों ने कीर्तन की महिमा मुक्तकण्ठ से स्वीकार की है। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है कि जहाँ मेरा गुणगान होता है वहाँ मैं निवास करता हूँ ----

"मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।" ‡गीता‡

चैतन्य सम्प्रदाय में कीर्तन को कृष्ण प्रेम प्राप्ति का साधन और पूजा का अनिवार्य अंग माना गया है ---

"कलिकाले नाम रूपे कृष्ण अवतार। नाम है ते हय सर्वजगत् निस्तार।
दार्ढ्य लागि हरे नाम उक्ति तिनवार।जड़ लोक बुझाइते पुनरेवकार।
केवल शब्द पुनरपि निश्चयकारण। ज्ञान योग तप कर्म आदि निवारण।
अन्यथा ये माने तार नाहिक निस्तार। नाहि नाहि नाहि एतिन एकाकार।"

[चैतन्य चरितामृत,आदि लीला, परिच्छेद-17]

भक्त श्रेष्ठ सूरदास ने भी कीर्तन की इस महिमा को परिलक्षित किया और उसके प्रभाव को समझा तथा सबको उसका अनुसरण करने की प्रेरणा भी दी। सूरदास ने कहा है --"जप तप या तीर्थ स्नान करने से जो सुख नहीं मिलता वह गोपाल के नाम का गान करने से मिलता है---

"सो सुख होत गोपालहिं गाए।
सो नहिं होत जप तप के कीने कोटिक तीर्थन्हाए।।"

2•2•2•3• <u>स्मरण भक्ति</u> :---

भगवान के नाम, रूप, गुण तथा लीला की स्मृति करना स्मरण भक्ति है। इसे चिन्तन अथवा ध्यान भी कहते हैं। भक्ति में भगवान के नाम जप का महत्व माना गया है। नारद के भक्ति सूत्रों में स्मरणासक्ति का विवेचन है। निरन्तर परमेश्वर के स्मरण करने से अन्त में परमानन्द की प्राप्ति होती है।[14] गीता में भगवान ने स्वयं इस "ध्यान भक्ति" का उल्लेख किया --"मुझे परमपति के रूप में भावना करके एकाग्रता पूर्वक ध्यान करनेवाले भक्तों को इस संसार रूपी सागर से उद्धार करूंगा।[15] स्मरण भक्ति में ध्रुव, प्रह्लाद, विदुर आदि उल्लेखनीय है।

2.2.2.4. पादसेवन भक्ति :---

भगवान की मूर्ति का दर्शन, स्पर्शन, परिक्रमा, मन्दिर गमन, तीर्थयात्रा, तीर्थस्थान आदि को पादसेवन भक्ति मानते है। पादसेवन के अभ्यास से भक्त के प्रेम में एकाग्रता आ जाती है। भगवान के गुण - गान के साथ पादसेवन अर्थात् पूजा का भी विधान है। पूजा सहज रूप से मूर्ति की होती है। मूर्ति पूजा से भक्त मानसिक पादसेवन की कोटि तक ह पहुँचता है और भगवान के चरणों की सेवा करता है। पादसेवा के प्रमुख भक्त सीता, हनुमान, जटायु, बलि आदि माने जाते है। भागवत के अनुसार श्रीहरि के चरण अमित महिमाशाली है। अतः सूर ने उसी रूप को अपनाते हुए सूरसागर का श्रीगणेश ही "चरण कमल बन्दौं हरि राई।" [16] से किया है।

2.2.2.5. अर्चन भक्ति :---

भगवान की मूर्ति की विधि विहित पूजा "अर्चना" कही जाती है। श्रद्धा सहित भगवान की उपासना ही "अर्चना भक्ति" है। प्रतिमा को प्रेमपूर्वक, पुष्पादि अर्पण करना अर्चना है। मूर्ति के अष्टकालीन अर्चन विधान निर्दिष्ट है। "हरि भक्ति रसामृत सिन्धु" में विविध ह उपचारों के साथ की जानेवाली पूजा को "अर्चन" माना गया है ---

"अर्चनंत्वुपचाराणां स्यान्मन्त्रोपपादनम्।
परिचर्यातु सेवोपकरणादि परिक्रिया।।"

[भ.र.सि.पूर्वविभाग ३ - 2/27]

2·2·2·6· <u>वंदन भक्ति</u> :--

इस भक्ति का अर्थ है भगवान के प्रति किये गये प्रणाम। अर्चना भक्ति में वंदन का समावेश होता है। परन्तु इसमें उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है। भगवान के माहात्म्य का स्मरण करके स्तुति करना, नतमस्तक होकर विनय दिखाना तथा उसे प्रणाम करना "वन्द भक्ति" है। भक्तों ने वंदन भक्ति का बड़ा महत्व माना है। भक्त भगवान के चरणों की वन्दना कर अपने पाप - कर्मों की क्षमा याचना करता है। तिभीषण आदि "वन्दन भक्ति" के अनुरक्त हैं।

2·2·2·7· <u>दास्य भक्ति</u> :---

"भगवान स्वामी है, मैं उनका सेवक हूँ" यह अनन्यभाव मन में दृढ़ करना। "दास्य भक्ति" है।

भक्ति में दास्यभाव का प्रारम्भ स्वामी के सामीप्य लाभ का अमोघ साधन समझा जाता है। प्रभु की रुचि भक्त की रुचि बन जाती है। अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का परित्याग होने लगता है। इससे भक्त भगवान के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है और उसके परिवार का एक अंग बन जाता है।[17] दास्य भक्ति निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में उपलब्ध होती है। निर्गुणवादी महात्मा कबीरदास ने उस भावना को व्यक्त करते हुए कहा है कि मैं राम का कुत्ता हूँ। मेरा नाम मोती है। मेरे गले में राम की रस्सी बंधी हुई है। अत: वे जिधर मुझे खींचते हैं, मैं उधर ही जाता हूँ।

"कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाऊँ।।"
[कबीर ग्रन्थावली पृ 15]

तुलसी में यह भक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई दिखाई देती है, वे स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं ---

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि।।"
(तुलसी ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, पृ 47।)

2.2.2.8. <u>सख्य भक्ति</u> :---

सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर के प्रति सखाभाव से भक्ति करना "सख्य भक्ति" है। भक्ति क्षेत्र की चरमसाधना सख्यभाव में समवसित होती है। साधना करता हुआ भक्ति के द्वारा जीव प्रभु की ओर उन्मुख होता है तो दास्य, वात्सल्य, दाम्पत्य आदि सीढ़ियों को पार करके पुन: सखाभाव को प्राप्त कर लेता है। इस भावना में न दास का दूरत्व है, न पुत्र का संकोच और न पत्नी का अधीन भाव है। ईश्वर का सखा जीव स्वाधीन है। मर्यादाओं से ऊपर है और उसका वरेण्य बन्धु है। -------- सख्य भाव की यह स्वाधीनता उसे भक्ति क्षेत्र में उच्चस्थान पर स्थित कर देती है।"(18)

सख्य भक्ति का ग्रहण निर्गुणोपासना में उपलब्ध नहीं होता। यह केवल सगुणोपासना में ही सम्भव है और वह भी वैष्णव भक्ति के आधार स्तम्भ राम और कृष्ण की भक्ति में है। वल्लभ सम्प्रदाय में सख्यभक्ति का बड़ा महत्व है। गुह, सुग्रीव, विभीषण, अर्जुन, उद्धव आदि प्रसिद्ध सख्य भक्त हैं।

2•2•2•9• आत्मनिवेदन:---

अपनेआप को पूर्णत: भगवान के भरोसे सौंप देना "आत्मनिवेदन भक्ति" है। भक्त अपने पाप कर्मों का विवरण देकर भगवान के सम्मुख आत्मनिवेदन करता है। "अन्यथा शरणंनास्ति त्वमेव शरणंम मम" इस भावना से रहता है। रक्षा व उद्धार की याचना करता है। भगवान ने स्वयं यह उद्घोषणा की कि जो अपने को आत्मसमर्पण करके आश्रय मांगता है उसका उद्धार करेगा।

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वाम् सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:।।"
{गीता - 18/66}

आत्मनिवेदन से ही भगवान की कृपा की प्राप्ति होती है। उपासक सर्वात्मना समर्पण कर परम सुख को प्राप्त करता है। गोपिकाएँ इसके द उदाहरण हैं।

2•2•3• उपासक मूलक भक्ति : {प्रेम रूपा भक्ति} :---

उपासक मूला भक्ति की स्थापना उपासक द्वारा उपास्य के प्रति प्रदर्शित विविध भावों के आधार पर की गई है। इन विविध भावों का आलम्बन प्रेम है। इसलिए इसे प्रेमरूपा भक्ति" भी कह सकते हैं। भगवद् प्रेम के प्रकट होते ही मनुष्य को उन्मत्त बना देता है। अत: प्रेमी भक्त सदैव प्रेम के नशे में चूर होकर प्रभु के गुण - गान, गाने - सुनने तथा उसीके चिन्तन में निमग्न रहता है, उसे अन्य बातें अच्छी नहीं लगती। वह पूर्णत: शांत होकर आत्माराम बन जाता है। सूरदास ने इस भक्ति की महिमा का गुणगान करते हुए भगवान से प्रार्थना की कि-

"प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई। नाथ कृपा करि दीजै सोई।।"

उपासक शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावों से उपास्य की भक्ति करता है। इस आधार पर उपासक मूला भक्ति भी मुख्यतया पांच प्रकार की मानी गई है --- शांत भक्ति, दास्य भक्ति, सख्यभक्ति, वात्सल्य भक्ति और मधुरा भक्ति ।"[19]

2•2•3•1• शान्त भक्ति :--

संसार की अनित्यता, वासनाओं का त्याग और ईश्वर की भक्ति के द्वारा प्राप्त की गयी चित्त की स्थिर अवस्था से जो परमानन्द प्राप्त होता है उसे शांत भाव कहते हैं। शांत भाव की भक्ति में वैराग्य, आत्म प्रबोधन, विनय, आत्मनिवेदन आदि भावों की अभिव्यक्ति होती है। शान्त भक्ति में जीव अन्तर्मुखी होकर अपनी गति पर विचार करता है और पाप कर्मों का स्मरण कर पश्चात्ताप की अ अग्नि में पवित्र हो जाता है। कबीर, सूर, तुलसी आदि सभी भक्त कवियों ने उपासक की इस ज्ञानमूलक धारणा की अभिव्यक्ति की है ----

"अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।।"
[सूरसागर सार [टीका] पृ 28]

2•2•3•2• वात्सल्य भक्ति :---

माता - पिता का अपनी संतान से प्रति प्रेम विशुद्ध एवं निष्काम रहता है। वैसे ही प्रेम भगवान के प्रति बहाना वात्सल्य भक्ति है। माता - पिता की तरह भगवान का प्रत्येक कर्म ध्यान करना। उसका चिन्तन सेवा करना तथा उसकी क्रीडा से रिझ जाना ही वात्सल्य भक्ति है। वात्सल्य भक्ति शुद्ध और श्रेष्ठ मानी जाती है। क्योंकि इसमें स्वार्थ की गंध लेश मात्र भी नहीं होती। इसके उदाहरण यशोदा, नंद, ब्रजांगनाएं हैं।"[20]

2•2•3•3• <u>माधुर्य भक्ति</u> :---

भक्ति के सब भावों में माधुर्य भाव को उत्कृष्ट कहा गया है। मनुष्य की वृत्ति स्वभावतः इन्द्रिय सुख की ओर आकृष्ट रहती है। भक्तों ने इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति को ईश्वरोन्मुख बनाकर "माधुर्य भक्ति" में परिणत किया है। माधुर्य - भक्ति का भारतीय साहित्य में प्रमुख स्थान है। श्री वल्लभ सम्प्रदाय में भक्त का लक्ष्य गोपीभाव से भगवान के अखण्ड सहवास में आनंद लाभ करना माना है। भक्त अपने को स्त्री रूप में कल्पित कर भगवान को प्रियतम मानता है। उससे अनन्य प्रेम करता है। इस भक्ति का आदर्श ब्रज की गोपियाँ हैं। "इस माधुर्य भक्ति में भक्त समस्त सांसारिक बन्धन एवं मर्यादाओं का अतिक्रमण करके प्रिय परमात्मा के साथ तन्मय हो जाता है।"[2]

2•2•3•4• <u>दास भाव भक्ति</u> :---

परमात्मा को माता पिता की भावना से आराधना करना "दास भाव भक्ति" कहा जाता है। प्रभु ही माता और पिता है। अनंत दानी वही है। उससे आनंद प्राप्ति की आकांक्षा कर सकते हैं। गीता में भी यह बात कहीं गयी है कि ---

> "पितासि लोकस्य चराचरस्य।
> त्वमस्य पूज्यस्य गुरुर्गरीयान्।।" [गीता 11/43]

इस प्रकार भक्त गौरव और पूज्य भाव से सर्वेश्वर की आराधना करता है।

नारद जी के अनुसार प्रेमरूपा भक्ति एक होकर भी ग्यारह प्रकार की होती है।

1• गुण महात्म्यासक्ति 2• रूपासक्ति 3• पूजासक्ति
4• दास्यासक्ति 5• दास्यासक्ति 6• सख्यासक्ति
7• कांतासक्ति 8• वात्सल्यासक्ति 9•आत्मनिवेदनासक्ति
10•तन्मयासक्ति 11• परम विरहासक्ति।[22]

2•2•3•5• परमविरहासक्ति :---

इस ह आसक्ति में भक्त भगवान के विरह में सदा व्याकुल रहता है। आध्यात्मिक और लौकिक रस का विचित्र सम्मेलन होकर प्रेम की अनुभूति के लिए विरहाकुल हो जाता है। ध्यान की स्थिति में परम विरहासक्ति का उद्भव हो ता है और अनन्यभाव से तन्मयता का अनुभव करता है इसी स्थिति का अनुभव भक्ति की पराकाष्ठा है। अखण्ड रसानुभूति है।

इस प्रकार गीता से लेकर भक्ति रसामृत सिंधु तक के भक्ति सम्बन्धी कथनों के अध्ययन से भक्ति का जो स्वरूप सामने आता है। उसमें ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम के साथ अन्य अनेक भावों का, मानसिक स्थितियों का , व्यावहारिक क्रियाओं का भी उल्लेख है। "भक्ति" मन का ऐसा अनुभव है जो प्राण के सदृश अन्य अनेक अनुभवों को ढेक देता है। पानी पर तैल बिन्दुवत् जीवन के समस्त अंगों पर छा जाता है। जीवन का कोई अंश भक्ति से पृथक नहीं रह जाता। निरन्तर इष्टमय स्थिति ही भक्ति का स्वरूप बन जाता है। भक्ति की प्रकृति ही ऐसी है कि वह मन को अनुरागमय - तन्मयता प्रदान करती है।"[23]

2·3· भक्ति के साधन :---

परमात्मा की उपलब्धि मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है और उसका साधन है "भक्ति" भक्ति में हृदय का समस्त अनुराग ही मूर्तिमान हो जाता है। भक्ति में ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों का समन्वय है।

भक्ति में प्रधान बाधा कुसंगति है क्योंकि यह काम, क्रोध, मोह, स्मृति भ्रंश, बुद्धिनाश का हेतु है ---

"काम क्रोध मोह स्मृति भ्रंश बुद्धि नाश कारणत्वात्।"
(नारद भक्तिसूत्र - 44)

अत: उसका सर्वथा त्याग परमावश्यक है। भक्ति साधना करने-वाले व्यक्ति को स्त्री, धन, नास्तिक और वैरी का चरित्र नहीं सुनना चाहिए।" (24)

सच्चिदानन्द आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सच्चरित्र, सत्संकल्प, ब्रह्मचर्य, तप, दीक्षा, व्रत, श्रद्धा, विवेक, जागरूकता, सत्संग और एकात्म भावना की आवश्यकता है। यहाँ पर प्रपत्ति, सत्संगति और एकात्म भावना पर चर्चा की जाती है।

2·3·1· प्रपत्ति या शरणागति :---

भक्ति का ही एक सुगम रूप "प्रपत्ति" है। भक्ति इस दु:खद संसार से जीव को मुक्त करने का मुख्य साधन है। कारण भक्तवत्सल भगवान की अनुग्रह शक्ति से ही जीवों का इस भवपंक से उद्धार सम्भव है। शरणागति ही भगवान की अनुग्रह शक्ति को प्रेरित करने का उपाय है। पांचरात्र मत में इसे "न्यास" कहा गया है। प्रथम वैष्णवाचार्य

रामानुज ने भक्ति में शरणागति को मुख्य माना है। इसे "प्रपत्ति" कहते हैं। रामानुज ने प्रपत्ति को "भक्ति का सार" कहा है[25] प्रपत्ति के दो भेद हैं - शरणागति और आत्मसमर्पण, शरणागति, अप्राप्ति तथा मुक्ति का प्रथम सोपान है। स्वयं गीता में भगवान ने इस प्रकार उद्घोषणा की ---

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।"

(गीता 18/66)

जब भक्त अनन्य होकर शरणागत हो जाता है तब प्रभु भी उसका त्याग करने में असमर्थ हो जाते हैं।

प्रपत्ति का दूसरा अंग है "आत्मसमर्पण"। स्वयं को भगवान के चरणों में सौंप देना। जिस प्रकार पत्नी स्वयं को विवाह के समय स्वामी को सौंप देती है। उसी प्रकार अपने तन, मन, आत्मा सर्वस्व को प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना ही आत्मसमर्पण है। भक्त को एक क्षण के लिए भी कैंकर्य विमुख न होना चाहिए। भक्तों का समुचित आदर और दैन्य उसके प्रधान गुण अथवा कर्तव्य हैं।

भगवान की कृपा को अपनी ओर आकृष्ट करने का उपाय है प्रपत्ति। प्रपत्ति छः प्रकार की होती है। 1. अनुकूलस्य संकल्पम् -- जो भगवान को अच्छा लगे वही करना 2. प्रतिकूलस्य वर्जनम् -- भगवान के प्रतिकूल बातों त्याग करना 3. रक्षिष्यतीति विश्वास -- अपने आराध्य के रक्षक के रूप में विश्वास रखना
4. गोप्तृत्ववरणम् - आराध्य को गोप्ता (रक्षक) के रूप में मानना, उसे दयालुता का स्मरण दिलाकर अपने उद्धार की प्रार्थना करना।
5.

5• आत्मनिक्षेप : -- आराध्य के चरणों में पूर्णत: समर्पित करना
6• कार्पण्यम् - आराध्य के प्रति सदैव दीनता रखना।

इस प्रकार षड्विधा शरणागति के द्वारा भगवान की कृपा-शक्ति को जागृत करने का विधान है।

2•3•2• सत्संगति : ----

सत्संग - भक्ति की उत्पत्ति एवं विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करनेवाला अद्वितीय साधन माना गया है और बहुधा सत्संग और साधुसंग को इसके पर्याय रूप में ग्रहण किया गया है।{26} भगवान की कृपा प्राप्ति के लिए महापुरुषों का सेवन, सत्संग करना चाहिए ---

"मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा।।"
{नारद भक्ति सूत्र -38}

सत्पुरुषों की संगति दुर्लभ है। किन्तु प्राप्त होने पर उनका प्रभाव अमोघ और अगम्य है। अद्वैतवादी शंकराचार्य सत्संगति को अत्यंत महत्व देते हैं। उनका कहना है ---

"सत्संगत्वे निस्संगत्वं
निस्संगत्वे निर्मोहत्वं
निर्मोहत्वे निश्चल तत्वं
निश्चलतत्वे जीवन मुक्तिः।।" {भजगोविन्द श्लोक-10}

सत्संग के द्वारा ही माया की शृंखला से जीव बचकर भगवान को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। अत: सत्संगति भक्ति का महत्वपूर्ण साधन है।

2·3·3· <u>एकात्म भाव</u> :---

ईश्वर सर्वान्तर्यामी है, सृष्टि, स्थिति, लयकारक वही है। सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है और सृष्टि से परे भी। श्री अरविन्द कहते हैं —"अहं से रहित राग - द्वेष शून्य तथा कुतूहलपूर्ण दृष्टि से संसार की ओर देखने पर सर्वत्र अनन्त शक्ति के स्रोत परमतत्व के दर्शन होते हैं।"|27| अतः भक्त को अनन्त सृष्टि से प्रेम, स्नेह की भावनाओं से पूर्ण होना चाहिए। विवेकानन्द जी कहते हैं --"भगवान एक है, उनके रूप अनेक हैं। तुम जिस रूप को चाहो उस रूप में उसे अपना सकते हो। भक्त अनेकता से एकता की ओर बढ़ता है, एक भावना से निर्द्वन्द्व, निर्विकल्प होकर शान्त, आनन्द, प्रपूर्ण हो जाता है।"

भक्ति के साधन अनेक हैं, भक्त किसी भी साधन को अपनाकर, परिशुद्ध एवं निश्छल मन से उसका अनुसरण करने से अपने आराध्य को प्राप्त करने में सफलीभूत हो जाता है।

2·4· <u>भक्ति की विशिष्टता</u> :---

भागवत् तत्व की प्राप्ति के तीन प्रधान तत्व माने जाते हैं — ज्ञान मार्ग, कर्ममार्ग, भक्ति मार्ग। इन तीनों में भक्ति मार्ग अत्यन्त सरल मार्ग कहा गया है। "भक्ति" की विशिष्टता यह है कि वह ज्ञान और कर्म को पवित्र कर प्रवृत्ति की ओर सरस रूप से आकर्षित और मार्गनिर्देश कर, अनन्त परब्रह्म की कृपा को प्राप्त कराने का परम साधन है।|28| उत्तम भक्ति, मुक्ति की वासना रहित, ज्ञान, कर्म आदि से अनाच्छादित तथा अनन्यभाव युक्त मानी गई है -- भुक्ति और मुक्ति, भक्ति की दासियाँ तथा ज्ञान और वैराग्य उसके पुत्र हैं ---

" मुक्तिं दासी ददौ तुभ्यं ज्ञान वैराग्यकाविमौ।।"

{भागवत महात्म्य - 2/7}

अर्थात् भक्ति की साधना करने पर ये सब अनुवर्तन करते हुए भक्त के पास पहुँच ही जाते हैं। भक्ति का आनन्द अपरिमेय है। ज्ञान तथा यज्ञादि द्वारा मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। पर भक्ति की नहीं, अत: भक्ति का प्राधान्य स्वतं सिद्ध है। यह इतनी आकर्षक एवं मधुर है कि भगवान को भी अपने वश में कर लेती है। न केवल भक्ति भगवान को वश में कर लेती है अपितु उन्हें मनमाने स्थान पर अवतरित होने के लिए भी बाध्य कर देती है ---

"त्वं तु भक्ति प्रिया तस्य क सततं प्राणतोधिका।
त्वयाहूतस्तु भगवान याति नीच गृहेष्वपि।।"

{भागवत महात्म्य - 2/3}

इस प्रकार अपरिमित विशेषताओं वाली भक्ति कैवल्य से अधिक सामर्थ्यवती है।

2•5• आधुनिक काल में भक्ति का चिन्तन :---

19 वीं शती से पूर्व "भक्ति" का नाता विराटस्वरूप, जगदाधार, सर्वान्तर्यामी परब्रह्म के साथ है, जो सच्चिदानंद स्वरूप माना गया। 19 वीं शती तक आकर यह भक्ति राष्ट्र से जुड़ गयी। "राष्ट्रीय भक्ति" के रूप में परिवर्तित हुई। राष्ट्र के प्रति सेवाभाव रखना ही राष्ट्रीय भक्ति है। आधुनिक युग मानवता की पूजा एवं आराधना का युग है। आज विश्व में सर्वत्र मानवता - प्रेम में धूम मची है और इसीलिए विश्व का बड़े से बड़ा विचारक, मनीषी, दार्शनिक मानवता की पूजा को ही

ईश्वर -पूजा मानी है। उसकी सेवा शुश्रूषा को "ईश्वर भक्ति" मानी है और उनकी हित साधना में ही जीवन का सौभाग्य समझा है।" [29]

नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल गयी। उनके मन में देश हित, समाजहित आदि की नई उर्मी उत्पन्न हुई। जवाहरलाल नेहरू कहते हैं —"जब पश्चिमी लोग समुद्र को पार कर यहाँ आये तब भारत के दरवाजे एक खास दिशा की ओर खुल गये। आधुनिक, औद्योगिक सभ्यता के बिना किसी शोर धीरे - धीरे इस देश में प्रविष्ट हुए। हमारा बुद्धिजीवि अंग्रेजी बुद्धि जीवियों की तरह सोचने का अभ्यास करने लगे।" [30]

आधुनिक युग अपनी बौद्धिकता एवं तर्कप्रियता आदि के लिए प्रसिद्ध है। इसी कारण हम आज अलौकिक घटनाओं को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। डॉ॰श्रीकृष्णलाल ने ठीक ही कहा —"आधुनिक युग में वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार और बुद्धिवाद के प्राधान्य से जब "अन्ध भक्ति" के स्थान पर तार्किक बुद्धि का प्रभाव पड़ा तब शिक्षित और विचारवान पुरुषों को ईश्वर और अवतारवाद में अविश्वास होने लगा। [31]

फलत: उस विश्वात्मा, जगदाधार, सर्वान्तर्यामी को जन जन में व्याप्त दिखाने की भावना का अत्यन्त प्रसार हुआ। इसी कारण श्री हरिऔध जी अपने प्रसिद्ध काव्य "प्रिय प्रवास" में श्रीकृष्ण को अवतारी कृष्ण के रूप में नहीं वरन् आदर्श पुरुषोत्तम के रूप में चित्रण किया है। राधा - कृष्ण का स्वरूप इसमें पक्के समाज सेवी के रूप में चित्रित है। लोक कल्याण उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा है। हरिऔध जी ने "प्रिय प्रवास" में भगवान की "नवधा भक्ति" का वर्णन करते हुए समस्त प्राणियों, सरोवर, गिरि, लता, बेल आदि की रक्षा पूजा, सम्मान एवं सेवा में "ईश्वर भक्ति" के दर्शन किये हैं ---

"विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो है उसी के,
सारे प्राणी सरि गिरि लता बेलियाँ वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा,
भावोपेता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा।।"

(प्रियप्रवास - हरिऔध पृ-16,17)

इस प्रकार आधुनिक युग में भक्ति का नवीन रूप हमारे सामने उभर आता है। इसीलिए आज के कवि किसी भी भगवत सम्बंधी भक्ति रचना का सृजन करें, उसमें जरूर देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति पूर्ण भावनाओं की झलक हमें दिखाई देती लगती है। प्राचीन और नवीन दार्शनिक विचारों का सम्मिश्रण उन काव्यों में अभिव्यक्त होता ही रहा है।

2.6. <u>निष्कर्ष</u>:---

भक्ति के कई रूप हो सकते हैं जैसे देशभक्ति, स्वामिभक्ति, गुरु भक्ति, पितृ भक्ति, मातृ भक्ति आदि। परन्तु मुख्य रूप में वह ईश्वर भक्ति ही है।

इन तत्वों के आधार पर भक्ति स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार किया जा सकता है ---

निराकार या साकार ब्रह्म के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखकर, मन को सांसारिक कर्मों से विमुख करके अनन्यभाव से सदाचार और ईश्वरीय कर्मों (नवधा भक्ति) का पालन प्रतिक्षण करते हुए मन को पवित्र करके आत्मानुभूति अथवा ज्ञान प्राप्त करके सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करलेना ही "भक्ति" है।

सन्दर्भ सूची

1• भक्ति का विकास - डॉ• मुंशीराम शर्मा पृ-111-112
2• भगवद्गीता अध्याय 12 श्लोक 2•
3• शाण्डिल्य सूत्र 2•
4• नारद भक्ति सूत्र 2,3•
5• गीता 7/16•
6• वही 18/15•
7• वही 18/68•
8• तुलसी दर्शन मीमांसा - डॉ• उदयभानु सिंह पृ-275-276•
9• तुलसी ग्रन्थावली द्वितीय खण्ड ‡दोहावली‡ पृ-95•
10• वही पृ-100•
11• हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ•नगेन्द्र पृ-192•
12• सूरसागर 2/33•
13• वही 3/12•
14• "अव्यावृत भजनात्" । ना•भ•सू 36•
15• गीता 12/6,7•
16• सूरसागर 1/1, 1/14•
17• हिन्दी विश्व कोश पृ-423•
18• वही पृ-423•
19• हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना - डॉ•प्रेम स्वरुप,पृ-215•
20• सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व - डॉ•सी•एच•रामुलु,पृ-31•
21• हिन्दी साहित्य में प्रतिबिंबित चिन्तन प्रवाह-
- डॉ•सुधाकर गोकाककर पृ-158•
22• नारद भक्ति सूत्र 82•
23• भक्ति सिद्धांत - आभागुप्त पृ-32•
24• नारद भक्ति सूत्र 63•
25•

25• हिन्दी साहित्य में प्रतिबिंबित चिन्तन प्रवाह

- डॉ• सुधाकर गोकाककर — पृ-154•

26• ब्रजभाषा कृष्ण भक्ति काव्य - डॉ•जगदीश गुप्त — पृ-143•

27• श्री अरविन्द विचार दर्शन - डॉ•श्यामबहादुर वर्मा — पृ-109•

28• सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व - डॉ•सी•एच•रामुलु,पृ-40•

29• साकेत के काव्य, संस्कृति और दर्शन - डॉ•द्वारिका प्रसाद सक्सेना

पृ-329•

30• संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर (पीठिका)

31• हिन्दी साहित्य, सर्वेक्षण और समीक्षा - श्यामानंदन प्रसाद सिंह

पृ-97•

तृतीय अध्याय

दाऊदयाल गुप्त के काव्य में भक्ति तत्व

तृतीय अध्याय

रामदयाल गुप्त के काव्य में भक्तितत्व

उपास्य मूलक भक्ति

सांसारिक विषय वासनाओं की निवृत्ति और परब्रह्म की उपलब्धि के चार मार्ग हुए -- योग मार्ग, ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग। इन मार्गों में अपनी सुलभता के कारण भक्तिमार्ग को सर्वाधिक श्रेष्ठ तथा ग्राह्य माना गया है। गुप्त जी इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं ---

"जेते जोग विराग तप, सब महँ भगति प्रधान"

(श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकांड पद-20)

गुप्त जी कहते हैं --"इस कलियुग में जप, तप, यज्ञ आदि का फल भक्ति द्वारा मिलेगा। इस भवसागर से पार होने का एक मात्र उपाय भक्ति ही है ---

"आन जुगन्ह तप मख फल जोई,कलियुग मिलहि भगति सन सोई।"

(श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-22)

भगवान को पाने के लिए भक्ति मार्ग ही श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि "भक्ति वश: पुरुष:"। भक्ति के कारण ही भगवान भक्त के वशीभूत होता है। विशेषता यह है कि भगवान भी अपने भक्त का भजन करते हैं, जिस प्रकार भक्त भगवान का ---

"ये यथा माँ प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजाम्यहम्।।"

[श्रीमद्भगवद्गीता–4/11]

इसी बात पर विश्वास रखकर भक्त मनसा, वाचा, कर्मणा अपने को भगवान के प्रति समर्पण करता है, अपने उपास्य पर चित्त को एकाग्र करता है वही भक्ति है। उपास्यमूलक भक्ति दो प्रकार की होती है। निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति।

3·1· निर्गुण भक्ति :---

निर्गुण भक्ति केवलाद्वैतवादी आत्मज्ञानी की निराकार ब्रह्म, विषयक भक्ति है।[1] इसमें भक्त भगवान को निर्गुण निराकार मानकर भक्ति करता है। गुप्त जी का काव्य "जयओंकार" इसी भक्ति का द्योतक है।

गुप्त जी कहते हैं भगवान निर्गुण निराकार है, वही परब्रह्म है, ओंकार है। वही भक्तों के हित के लिए सगुण रूप धारण कर रहा है।[2] सृष्टि स्थिति लय हेतु वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में प्रकट होते हैं---

"ओम् अगुण परमात्मा, प्रकटे सगुण सुवेश।
सृष्टि स्थिति लय हेतु वह, ब्रह्म विष्णु महेश।।"

[जयओंकार पृ–1]

वही परब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। सबकुछ उसीसे व्यक्त होकर उसी में समाप्त होता है।[3] सर्वस्व उसी परब्रह्म का है। सर्वत्र उसी की माया दिखाई देती है। महान से महान योगी, सन्यासी, पण्डित भी उस माया के आगे डगमगाते हैं।[4] जो जिस रूप में उस निर्गुण परब्रह्म को देखना चाहते हैं। उस रूप में वह दर्शन देते हैं। राम हो, कृष्ण हो, जो भी हो जिसका भी गुणगान करो। ये समस्त गुणगान उसी का है ---

"कोई नर बनता शैव, वैष्णव कोई,
कोई पूजे यदुनन्दन, राघव कोई।।
कोई पूजे वासव, कोई हनुमान।
कोई रवि,शशि,कोई भैरव बलवान
कोई देवी का भक्त सदा कहलाता।
कोई विभिन्न देवों के ही गुण गाता।।
यद्यपि यों भी उसका ही गुण गाते हैं।
पर भ्रमित ज्ञान वश जान नहीं पाते हैं।
सब भोग क्षेम उसके ही द्वारा होता।
प्राणी उसकी प्रेरणा से पाता खोता।।"

{जयओंकार पृ-14,15}

सरल हृदय से जो उसका ध्यान करेगा। वह उसे पायेगा।{5} उनकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलेगा।{6} इसी निर्गुण निराकार ब्रह्म को ध्यान कर उसी के बल से देवताओं ने दैत्यों को हराया।{7}

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में निर्गुण निराकार ब्रह्म का गुण गान किया। उनके प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट किया।

3•2• सगुण भक्ति :---

भगवान का सगुण साकार रूप की आराधना करनेवालों की भक्ति "सगुण भक्ति" कहलाती है। सगुण भक्ति का सम्बन्ध साकार भगवान के नाम, रूप,गुण लीला और धाम से है। इस भक्ति के अंतर्गत भक्त भगवान के विविध रूपों के दर्शन करते है। सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप से तीन रूपों में देखी जाती है।

1• शैव भक्ति

2• शाक्त भक्ति

3• वैष्णव भक्ति

सगुण भक्ति में कुछ अन्य भजनीय रूपों की उपासना भी प्रचलित है, जिन्हें सगुण उपास्यों के अन्तरंग समूहान्वितों के रूप में भक्त अपने सहायक और कल्याण कर्ता के रूप में देखता है।

3•2•1• <u>शैव भक्ति</u> :---

दाऊदयाल गुप्त ने मुख्यतया कृष्ण भक्त कवि होते हुए भी शंकर की भक्ति का भी उपदेश दिया है ---

"योग,जप,शिव-भक्ति ही कर्तव्य है।"

[शंकर - पृ 140]

दाऊदयाल गुप्त ने पूर्ण हृदय से शिव-भक्ति प्रकट की है। वे कहते हैं ---"परमेश्वर पर विश्वास रखो। समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, समस्त जीवों के लिए आधार वही है। यह समस्त संसार उसी से व्यक्त हो रहा है।"[8]

<u>सर्वेश्वर शिव</u> :---

सृष्टि, स्थिति, लयकारक शिव है।[9] वे दयामय,भक्तजनों की आपदा हरते रहते हैं। उनके अनन्त रूप हैं, नाम हैं। सर्वत्र वही है। सर्वव्यापक है।[10] वे अनादि, अन्तर्यामी, अविनाशी, अविकार, अकामी है।"[11] फिर वे कहते हैं ----

"विश्वास करो–वे भगवान
वैभव–निधान जग के स्वामी
ब्रह्मा, हरि, सुर, नर किन्नरगण
सब ही हैं उनके अनुगामी।"
[शंकर महाकाव्य – पृ 211]

उनके संकेत पर ही यह संसार चल रहा है।[12] शिवपुराण में भगवान शंकर अपने को ब्रह्मा, विष्णु से अभिन्न मानकर कहते हैं ---

"त्रिधाभिन्नोह्यहं विष्णो ब्रह्मा विष्णु हराख्यया
सर्ग रक्षा लय गुणै निष्कलोहं सदा हरे।।"
[शिवपुराण 2/28]

"सर्ग, रक्षा और संहार गुणों के कारण मेरे ही ब्रह्मा, विष्णु और हर नाम से तीन भेद हुए। वस्तुत: मेरा स्वरूप तो सदा ही अभेद रहित है।"

गुप्त जी के शिव भी एक जगह पर अपना स्वरूप देवताओं को समझाते हुए कहते हैं --"मेरे असंख्य नाम हैं। जीव सदा उन नामों को जपते रहते हैं। मेरे गान से ही स्पन्दन होता है। मेरे ध्यान से कल्याण हो रहा है। मेरे अनेक रूप होने पर भी मैं एक हूँ। लोक मुझे महाकाल, त्रिकाल कहता है। वेद मेरा ही गुण गा रहे हैं, तन्त्र मेरे ही सम्मान करते हैं। समस्त पुराणों ने मुझ से प्राण पाया है।"[13]

"जब नहीं मैं व्यक्त तब ओंकार ही हूँ।
व्यक्त होकर भी प्रणव साकार ही हूँ।
विष्णु ब्रह्मा आदि मेरे रूप ही हैं।
नाम भी सब कार्य के अनुरूप ही है।" [जयओंकार–पृ 59]

नारद भी एक जगह पर "मैना" को शिव स्वरूप समझाते हुए कहते हैं ---"उनके समान इस जग में दूसरा और कोई नहीं है। सुर, नर, मुनिगण उनकी पूजा करते हैं।"[4] भगवान रामचन्द्र भी महाशिव का गुणगान करते हैं ---

"संकर, अभयंकर सदा, आसुतोष सुख साध्य।
देवन्ह कहु भगतन्ह वरद, जोगि जतिन्ह आराध्य।।"
[हनुमच्चरित मानस-अवतरणकांड,पद 73]

शिव पुराण में परात्पर शिव रूप में कहते हैं - मेरे हृदय में विष्णु है और विष्णु के हृदय में मैं हूं। जो इन दोनों में अन्तर नहीं समझता वही मुझे प्रिय है। हे विष्णु! आप रूद्र के ध्येय हैं और रूद्र आपके ध्येय हैं। आप में और रूद्र में तनिक भी अन्तर नहीं है, जो मनुष्य रूद्र का भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा उसका सारा पुण्य तुरन्त भस्म हो जायेगा।"[5] गुप्त जी के राम भी इसी भावना को अभिव्यक्त करते हैं।---

"आपु बसे मम हीय महँ, तन हीये मम वास
सोइ ज्ञानी मतिमान नर, जेहिं अभेद विस्वास।।
ज्ञान विरत मूरख महा, जेहिं मति दूषित होइ।
संकर मो महँ आपु महँ, भेद लखहिं नर सोइ।।"
[हनुमच्चरित मानस-अयधकाण्ड,पद 65]

गुप्त जी के कृष्ण भी इसी अभेद तत्व को समझाते हुए कहते हैं--- "शिव से द्वेष भाव रखकर मुझ से प्रेम करने से कोई लाभ नहीं है, वैसे ही मेरे प्रति द्वेष रखकर शिव से प्रेम रखे पर भी उन्हें भक्ति प्राप्त नहीं होगी।"[6] इससे स्पष्ट है कि शिव निंदक हरिभक्त नहीं कहलाता। स्पष्ट शब्दों में गुप्त जी कहते हैं ---

"सन्यासी, ब्रह्मचारी भी
धूलिमाली, तपधारी भी
शिव निन्दक जो हो जाते
हरिभक्त न वे कहलाते।।" [शंकर - पृ 203]

गुप्त जी ने बड़ी तन्मयता के साथ शिव सौन्दर्य का वर्णन किया है। वे कहते हैं ---"मृग चर्म बिछा हुआ है। उस पर भगवान शंकर विराजमान हैं। मुनि, सिद्ध, यक्ष, किन्नर गण उनकी अर्चना कर रहे हैं। धमाधिप भी शंकर की पूजा में लीन खड़े हैं। भूत, प्रेत, पिशाचगण उसका यश गा रहे हैं। शिव के शरीर पर भस्म रमा हुआ है। भाल पर चंदन, भुजाओं तक जटाएँ लटक रही हैं। कंठ में सर्प विराजमान है। इस प्रकार भगवान शंकर तापसी वेश में भक्तों को अभय दे रहे हैं।" [17]

भक्त एवं लोक रक्षक :---

पुराणों के अनुसार समुद्र - मन्थन के समय सर्वप्रथम भयंकर हलाहल निकला था। तब सभी भगवान शंकर की शरण में जाकर रक्षा की प्रार्थना की। तब उन्होंने अभय देकर विष - पान करके "नील कण्ठ" का नाम पाया। गुप्त जी ने भी इस घटना को अपने काव्य में वर्णन किया। [18] उसे न कोई शत्रु है, न मित्र। वह सदा निर्वैर है। [19] वे दयामय हैं सदा भक्त जनों की आपदा हरते रहते हैं। [20] उस भूतेश की जितना भी प्रशंसा की जाए। वह कम ही देख पड़ती है। [21] उस महादेव का गुण गान करने में अपनी अशक्तता को व्यक्त करते हुए गुप्त जी कहते हैं ----

"है आप महायोगी, ज्ञानी
ये सिद्ध हो चुका निर्विवाद
उपमेय उच्च उपमानों से
तो उपमा देना भी प्रमाद।।" [शंकर महाकाव्य- पृ 103]

गुप्त जी स्वच्छ मन से भगवान शंकर से प्रार्थना करते हैं----- "हे प्रभु! आप मुझे न भूलिए। इस अनुचर पर अनुग्रह कीजिए।[22] तेरी शरण में आया हूँ। अब तो मेरे लिए आपके चरणाम्बुजों का ही सहारा है।[23] फिर वे जनता को भगवान शंकर की कृपा के पात्र बनने को कहते हैं।[24] स्पष्ट शब्दों में वे कहते हैं ----

"मेरे तो शंकर ही स्वामी
और नहीं कोई है जग में।" [शंकर महाकाव्य - पृ 169]

शिव और शिवानी में अभेद :----

गुप्त जी ने शिव और शिवानी में अभेद स्थापित किया। वे कहते हैं शिव और शिवानी में किसी प्रकार का भेद नहीं है। उमा शक्ति है तो शिव शक्तिमान है। उनका पूजन ही श्रेष्ठ कर्म है। परमधर्म है।[25] उमा और शम्भु का मिलन प्रकृति-पुरुष का मिलन है। वे ही सृष्टि, स्थिति, लयकारक है -----

"उमा-शम्भु का मिलन था
प्रकृति - पुरुष का मेल।
यह संसार असार सब
है उनका ही खेल।" [शंकर महाकाव्य - पृ 259]

गिरिजा परम माया, योगिनी, गुण खान है। वह सदा शिव के साथ रहकर उसे सतत शक्ति निधान रखती है।[26] गुप्त जी के शिव भी स्वयं पार्वती से कहते हैं ---

> "प्रिये! हम तुम सदैव है एक
> किन्तु भ्रम से ही लगे अनेक।।
> सदा हम तो अद्वैत विशुद्ध
> हमारे द्विधा कलाप अशुद्ध।।" [नकुलोंकार पृ-240]

इस प्रकार ऊपर बताये गये उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उमा और शंकर में याने शिव और शिवानी में कोई भेद नहीं है। बल्कि वे दोनों एक ही है। अभिन्न हैं।

3.2.2. शाक्त भक्ति :---

हिन्दू धर्म में त्रिदेव की अभेदता ही नहीं शक्तियों के साथ अभिन्नता भी सिद्ध की गयी है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की शक्तियाँ;-- ब्राह्मी, वैष्णवी, शिवा कहलाती हैं। इन सबके परे मूलशक्ति - पराशक्ति की कल्पना भी की गयी है।[27] देवी भागवत में कहा गया है -- शक्ति ही सम्पूर्ण जगत की आत्मा है और शक्ति ही चेतन अचेतन जगत का कारण है ---

> एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हिन:।
> महाविद्या महाविद्या पूर्ण प्रकृति हय्या।।"
> [देवी भागवत 3/3]

शास्त्रकारों ने अपने अपने ढंग से नाना नामों की उपाधि देकर शक्ति की महिमा को प्रकाशित किया है। जब जब दुष्टों ने जग में पाप

बढ़ाया तब तब देवी ने अपना रूप दिखाया। गुप्त जी ने उस महाशक्ति के स्वरूप का वर्णन किया कि "वही महाशक्ति स्वयं दुष्टों का संहार करती है या शक्तिमान में शक्ति स्वयं भरती है, वराह से मिलकर वाराही बन जाती, नृसिंह से मिलकर नारसिंही कहलाती है। वैष्णवी, शिवानी, उमा, रमा, ब्रह्माणी, नन्द, विन्ध्या या इन्द्राणी, कल्याणी कृष्णा, श्यामा, राधा इत्यादि नामों से अभिहित की जाती हुई जीवों का उद्धार करनेवाली भी वही है।"(28) वही महाशक्ति एक मात्र लोक रक्षिका है। उनसे ही प्रेरणा पाकर विधाता विश्व को रचते हैं। नारायण भी पालन बल इनसे ही पाते हैं। इनके इच्छावश शिव जगती को लीन करते हैं।(29) स्वयं ब्रह्मा उनका गुण गान करते हुए कहते हैं ---

" मैं ब्रह्मा एवं विष्णु और शिव शंकर
तव शक्ति प्राप्त करकर या बने भयंकर।।"
(महाशक्ति दुर्गा - पृ 35)

सृष्टि, स्थिति, लय कारिणी वहीं है।(30) जीवों को प्राणदान देनेवाली, पंचभूतों (जल,तेज,वायु, आकाश,मही) में व्यक्त होनेवाली भी वही महाशक्ति है। वह त्रिलोक की माता है। उसके संकेत के बिना जगती में एक पत्ता भी हिल नहीं पाता ।"(31) उनकी इच्छा से ही सबकुछ होता है। यह समस्त जग उससे प्रकट होकर उसी में खो जाता है।(32) विधि, विष्णु, शिव, इन्द्रादि देवता गन उसी के अनुचर हैं। रवि शशि की गति भी उस पर ही निर्भर है।(33)

ब्रह्मा ने सृष्टि के आरंभ में मधुकैटभ असुरों को दमन करने विष्णुभगवान को जगाने के लिए इसी महाशक्ति की स्तुति की। विष्णु भी उसी की माया से मधुकैटभों को मारने में समर्थ बने। उसी देवी ने

महिषासुर, धूम्रलोचन, शुम्भ - निशुम्भ, रक्तबीज, चण्ड मुण्डादि असुरों का दमन कर दुष्ट शिक्षण, शिष्ट रक्षण किया। वही दुर्गा है, काली है। वही महाशक्ति जनकनन्दिनी बनकर दशशिर को मरवाया। वही रस रासेश्वरी राधा, वही उमा और लक्ष्मी है। सदा सुर, नर, किन्नर, साधु - सन्त उसी का गुणगान करते हैं। [34]

एक जगह पर वह महाशक्ति प्रकटित होकर ब्रह्मा को अपना स्वरूप समझाती हुई कहती है ---"मैं ही गायत्री हूँ। मेरी गति अनूप है। मोक्ष रूपा सावित्री मैं ही हूँ। ब्रह्माणी, नारायणी, शिवानी मैं हूँ। समस्त सुखों को प्रदान करने वाली दुर्गा मैं हूँ। सीता, राधा, काली, कराली मैं ही हूँ। विशाल दृग नयनी इन्द्राणी मैं हूँ। ब्रह्मरूपिणी, त्रिजगमाची, त्रिमात्र मैं ही हूँ। त्रिदेवों को शक्तिमान बनाती हूँ। वे मुझ से ही व्यक्त हो रहे हैं। समस्त कार्य मुझ से ही सम्पन्न हो रहा है। सृष्टि, स्थिति, लयकारिणी मैं ही हूँ। मैं महाशक्ति अनादि हूँ।" [35]

गुप्त जी ने शाक्त भक्ति के अन्तर्गत दुर्गा, गायत्री, कात्यायनी, काली, सीता, राधा आदि शक्ति स्वरूपों का गुणगान किया।

<u>दुर्गा</u> :---

शाक्तभक्ति में महाशक्ति दुर्गा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त जी कहते हैं ---"दुर्गा महाशक्ति है। सृष्टि, स्थिति लयकारिणी वही है। वही ब्रह्माणी बनकर जग को रचती, वैष्णवी बनकर रक्षा करती, रुद्र भवानी बनकर लय करती है। [36]

"देवी माहात्म्य" में दुर्गा के नव रूपों को उल्लेख किया गया है वे हैं शैल पुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री।[37] गुप्त जी ने भी अपने प्रसिद्ध काव्य "महाशक्ति दुर्गा" में दुर्गा के इन नव रूपों को उल्लेख किया है ---

"है प्रथम शैलजा, ब्रह्मचारिणी दूजी।
शुभदा, सुखदा है, चन्द्रघण्टिका तीजी।।
चौथी कूष्माण्डा, स्कन्द जननि हैं पंचम।
षष्ठी कात्यायनि, कालरात्रि है सप्तम।।
है महागौरि अष्टम परमार्थ प्रदायिनि।।
जो नवम सिद्धिदात्री सो भाग्य विधायिनि।।
ये नाम हुए नव, नव दुर्गा कहलाती।
रक्षा करती, भक्तों का भाग्य जगाती।।"

[महाशक्ति दुर्गा पृ. 18]

भगवान कृष्ण भी दुर्गा महाशक्ति की महिमा जानते हैं। इसीलिए वे पार्थ से कहते हैं -- हे पार्थ! भगवती दुर्गा की पूजा भक्ति भाव से करो। अवश्य तुम्हारी विजय होगी। तुम कृतार्थ हो जाओगे।[38] कृष्ण वचन सुनकर पार्थ दुर्गा महाशक्ति का गुणगान करते हैं। --"हे दुर्गे! तुम्हीं काली, चामुण्डा, कात्यायनी हो। महिषासुर मर्दनी तुम हो। अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करनेवाली ज्ञान ज्योति प्रकाशित करनेवाली तुम ही हो। मोहरात्रि, महारात्रि, कालरात्रि तुम्हारे ही नाम हैं। हे माँ! तुम्हारे समान और कोई नहीं है। विद्या और अविद्या तुम्हीं हो। सबमें रहनेवाली तुम ही हो। संसार में जो सत-असत स्वरूप तुम ही हो।" [39] उसकी इच्छा से ही सबकुछ हो रहा है। यह समस्त जग उससे प्रकट होकर उसी में विलीन होता है।[40]

स्वयं दुर्गा महासुर शम्भु को अपना स्वरूप समझाती है कि मैं एकाकी हूं। मेरे समान और कोई नहीं है। ब्रह्म रूपिणी, कल्याणी, आनन्दी मैं ही हूं। मेरी समता में सुर - असुर गणों का बल न गण्य है। रे मूढ़! सदा मेरी महिमा अगम्य रही है।[41]

इस प्रकार महाशक्ति दुर्गा के गुण और नाम अनेक हैं। समस्त दिशाएँ उसीसे व्याप्त हैं। वे काम हेतु सब समस्त कामनाओं को पूर्ण करती। भक्तों, सन्तों के दुख सर्वदा हरती है।[42] फिर गुप्त जी कहते हैं ---

"प्रतिदिन जो इन देवी का गुण गाता
ध्याता, वह जग में ख्यात सिद्ध हो जाता।"

[महाशक्ति दुर्गा -पृ 246]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में महाशक्ति दुर्गा की स्तुति की और उनके प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट किया।

<u>गायत्री</u> :---

गायत्री वेदमाता है। गायत्रीमंत्र विश्व विख्यात है। गुप्त जी के कृष्ण स्वयं "गायत्री" का गुणगान करते हैं और गायत्री जप करने का उपदेश देते हैं --- गायत्री वेद माता है। विश्व के मैं प्रधानमंत्र गायत्री मंत्र है। रासेश्वरी राधा से वह प्रकट हुई है। सुयश पाने के लिए या युगल दर्शनाभिलाषी, या निर्गुण ब्रह्म पद चाहने वाले उस मंत्र का जप करने से वे इच्छाएँ सिद्ध हो जाते हैं।[43]

महाकाली :---

"देवी माहात्म्य" में महाकाली के आविर्भाव के बारे में कहा गया है कि अम्बिका का मुख क्रोध के कारण काला बना तब उसके ललाट से महाकाली प्रकट हुई है ---

"ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा।।
भ्रुकुटी कुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासि पाशिनी।।"

[देवी माहात्म्यम्-सप्तम अध्याय,5,6•]

दाउदयाल गुप्त ने महाकाली का आविर्भाव इसी रूप में वर्णन किया।[44] गुप्त जी ने महाकाली के भयंकर स्वरूप को अद्भुत ढंग से वर्णन किया कि महाकाली का वेश अत्यंत भयानक था। वह प्रलयंकर की माया थी। खट्वांग, खड्ग युत जगदम्बा की छाया थी। हाथ में पाश था। गले में मुण्डों की माला थी। शरीर भव्य विशाल था। गज चर्म धारण किया। आँखें लाल थीं। सर्पों को आभरणों के रूप में धारण किया था।[45] हाथ में शूल धारण कर खलदलों को नष्ट करती, युद्ध क्षेत्र में विहार करनेवाली अत्यंत भयानक है।[46] चण्ड-मुंडों का वध करने हेतु अम्बा ने काली को चामुण्डा का नाम दिया --

"बोली अम्बा हँस - "भिन्न किये दो खल मुण्डा।
इसलिए नाम तेरा अब होगा चामुण्डा।।"

[महाशक्ति दुर्गा , पृ-164]

गुप्त जी ने महाकाली के चामुण्डा रूप का भी गुणगान किया और उनके प्रति भक्ति भाव प्रकट किया ---

"जय ओम् जयन्ती माता मंगला काली।
जय भद्रकालिके कपालिनि विकराली।
देवी चामुण्डे! जय भूतार्ति निवारिणी।
जय सर्वगते, शुभदे, जय दुर्गति हारिणी।।"
(महाशक्ति दुर्गा , पृ-27)

<u>ब्रह्माणी</u> :----

हंसों के विमान पर चढ़कर, माला, कमण्डल धारण कर विचरने-वाली शक्ति ब्रह्माणी का वर्णन देवी माहात्म्य में विस्तृत मात्रा में दिखाई देता है ---

"हंस युक्त विमानाग्रे साक्षसूत्र कमंडलु:।
आयाता ब्रह्मण: शक्ति ब्रह्माणी साभिधीयते।।"
(देवी महात्म्य-अष्टम अध्याय, श्लोक-15)

गुप्त जी ने उसी ब्राह्मी रूप का गुणगान किया कि कण्ठ में मणिमयमाला, कर में दिव्य कमण्डलु, मुख पर ब्रह्म तेज से युक्त ब्रह्माणी हंस वाहन पर विराजमान होकर भक्तों को ज्ञान प्रदान करती है।(47) जग की रचना करनेवाली शक्ति रही है।(48) इस ब्रह्माणी शक्ति को कमण्डल धारण कर मंत्र जल से खलदल का विनाश करनेवाली कल्याणी के रूप में गुप्त जी ने वर्णन किया।(49) इस ब्रह्माणी के अनेक नाम है वही शारदा, सरस्वती है। गुप्त जी शारदा से प्रार्थना करते हैं कि हे शारदे! स्वरमयी, व्यंजनमयी, अक्षरमयी ज्ञान का उपहार दे। लोक में स्वर-लहरियों से प्रेम भरनेवाली हे माँ! मुझे बुद्धि का भण्डार दे।(50) हे सरस्वती! शुम्भ - निशुम्भ असुरों को वध करके देवताओं को अभयदान तुम ने ही दिया। गौरी तन से अभिव्यक्त होकर आठ भुजाओं में शर,

मुशल, त्रिशूल, शंख, चक्र, घंटा, हल, धनु आदि अस्त्र धारण कर साधक को सर्वज्ञ बनानेवाली भी तुम ही हो।§51§ इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में हमें ब्रह्माणी का स्वरूप दिखाई देता है।

वैष्णवी :---

वैष्णवी शक्ति के अनेक नाम हैं रमा, लक्ष्मी, नारायणी इत्यादि। क्षीर समुद्र मंथन में वैष्णवी शक्ति रमा प्रकट हुई। हरि से अनुरक्त हुई§52§ गरुड़ वाहन पर विराजमान होकर शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनु, खड्ग धारण कर दैत्यों को विनाश करनेवाली महाशक्ति वैष्णवी शक्ति है।§53§ वही जगज्जननी महालक्ष्मी है, सभी संकटों को शमन करनेवाली, अरिष्टों, क्रुद्धों, रिपुओं, खलों का दमन करनेवाली शक्ति है।§54§ सर्वोच्च श शक्ति, नियन्ता सर्वतन्त्रा भी है।§55§ वही साकार है। आकार से भी परे वे ही हैं। अनेकों नाम धारण कर स्वयं वही प्रकट होती है। सुयश, अपयश, पराजय - विजय की हेतु वही है। उन्हीं के अनुग्रह से मनुज सम्मान पाता है§56§ गुप्त जी ने महालक्ष्मी का अनुपम सौन्दर्य एवं अद्वितीय स्वरूप का वर्णन किया। यथा ---

" वे त्रिगुणमयी, महती लक्ष्मी प्रत्यक्ष।
मुख धवल, नील भुज, सौम्य सुभक्त समक्ष।
शिर मुकुट, कर्णयुग कुण्डल, मलयज भाल।
माला सुरत्न सुन्दर, विविध गलमल।।
वक्षस्थल पीवक, रक्तवर्ण मध्यांग।
जंघा नीली, पादाब्ज, शुभ सर्वांग।।
लावण्य परम सौभाग्य कान्ति अतिदिव्य।
अष्टादश भुज, बल भुज - सहस्त्र सम भव्य।।"
§महाशक्ति दुर्गा - पृ-24।§

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में वैष्णवी शक्ति का स्वरूप एवं शक्ति का वर्णन करके उनके प्रति भक्तिभाव प्रकट किया।

<u>रुद्राणी</u> :---

रुद्राणी अनेक नामों से अभिहित किया जाता है -- भवानी, शिवानी, उमा, गिरिजा, पार्वती, कात्यायनी, गौरी, सती, अम्बा आदि। सृष्टि, स्थिति, लयकारिणी वही है। वही विश्वेश्वरी है।{57} महाशक्ति रुद्राणी का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं ---

"रुद्राणी प्रकारूढ़ा सदा शिवानी भी।
शिर धारे अर्ध मयंक सुभव्या भवानी भी।।
मणिबन्ध व्याल कंकण, त्रिशूलमय पाणी भी।
गौरी गौरांगी प्रलयंकरि कल्याणि भी।।"

{महाशक्ति दुर्गा ,पृ-157}

वही महाशक्ति गिरि सुता के रूप में अवतरित हुई। गिरि सुता सौन्दर्य की साकार मूर्ति है{58} वही परममाया, योगिनी सब गुणों की खान है। वही सतत शिव से मिले हुए उन्हें शक्ति - निधान बनाती है। वही उमा है। उमा - शम्भु का मिलन था -- प्रकृति - पुरुष का।{59} महाशिव भी भवानी का दास बनकर रहना चाहते हुए कहते हैं ---"मैं गिरिजा का दास कहाऊँगा। यह मेरे लिए अत्यंत सौभाग्य की बात है। इस बात को मैं स्वीकारूँगा, जो भी आज्ञा हो मैं पालूँगा।{60}

गुप्त जी शिव और शिवानी में अभेद स्थापित करते हैं। वे कहते हैं उमा शक्ति है तो शिव शक्तिमान है। उनका ही पूजन श्रेष्ठ कर्म है। जग में परम धर्म वे ही है। {61} वह महाशक्ति ही कात्यायनी है।

समस्त कामनाओं को पूरण करनेवाली है। इसीलिए हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में नन्द जी के व्रज की कुमारियों ने हविष्यान्न को खाकर भगवती कात्यायनी देवी की पूजा व्रत को धारण किया। उनके व्रत का उद्देश्य था ---- पति रूप में भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति, भगवती से वे यही प्रार्थना करती। यथा ---

"जय जय कात्यायनी माता। विधुवदनी अति उज्ज्वल गाता।
मातु हरहु सब बाधा हमारी। मिलहिं नन्दसुत वर सुखकारी।।"

॥श्रीकृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद 9॥

गुप्त जी उस महाशक्ति अम्बा का गुणगान करते हुए प्रार्थना करते हैं --"हे जननी! हे महामाये! हे जगदम्बे! हम भक्तों पर दया रखो। तव सेवक हैं हम। संकट कभी हमें न आवें। सर्वदा सुखी बनाओ। तुम्हारे अनुग्रह से ही समस्त कामनाएँ पूर्ण होती है। हे माता तुम्हें जय हो।"॥62॥

सीता :----

जगत् में दशावतार प्रसिद्ध हैं। उनमें रामावतार का अत्यन्त महत्व है। दुष्ट शिक्षार्थ, शिष्ट रक्षार्थ त्रेता युग में भगवान रामचन्द्र जी प्रकट हुए हैं। उनकी शक्ति सीता रूप में उनके साथ अवतरित हुई।॥63॥ सीता साक्षात् लक्ष्मी याने विष्णु शक्ति ही है। यही बात महाविष्णु देवताओं से बताकर उन्हें धीरज बंधाते हैं ---

"मम महती माया प्रगटि, सीय नाम कहँ धारि।
तेहि मिस दुइ है लोक महँ, सब असुरन्ह संहारि।।"

॥हनुमच्चरित मानस- अवतरण काण्ड, पद-13॥

यही बात हनुमान लंकेश से बताते हैं -- जब जब भगवान जग में अवतरित हुआ साथ में उनकी माया भी प्रकट होती है। सीता साधारण स्त्री नहीं बल्कि महाशक्ति है। वह परम स्वतन्त्र शक्ति है। उसे बंदिनी बनाना जीव के लिए असाध्य बात है।[64] विभीषण भी यही बात कहते हैं।[65] भगवान विष्णु ने भी सीता को महालक्ष्मी का अवतार मानकर उनका गुणगान किया।-----

"फिर कही प्रभु ने प्रिया से मंजुलवाणी।
तुम सत "सकार" ईकार" भरी कल्याणी।।
लेकर "तकार" विस्तार जगत् का करती।
अव्यक्त व्यक्त हो क्रोध, मोह मद हरती।।
तुम ही त्रिशक्ति हो - इच्छा, क्रिया, निराली।
महती विद्या, माया या दुर्गा, काली।।
लक्ष्मी श्रीदेवी, भूदेवी कहलातीं।
तुम ही हलाग्र से सीता रूप दिखाती।।"

[जय ओंकार - पृ. 176]

स्वयं भगवती सीता अपने को महाशक्ति के रूप में घोषित करते हुए हनुमान से अपने स्वरूप को समझाती है --"हे पवनकुमार! ब्रह्म अज, अमर, अविनाशी सदा निरंतर घट - घट वासी है। उनके अनन्त रूप हैं। वे स्वयं कोई कार्य नहीं करते। मैं उनकी मूलप्रकृति, सदा उसे अनुसरण करनेवाली हूँ। सृष्टि, स्थिति, लयकारिणी मैं ही हूँ। इस लोक में रघुराम से जो दुष्ट शिक्षण, शिष्ट रक्षण हो रहा है वे समस्त कार्य मुझ से ही सम्पन्न हो रहे हैं। मेरी इच्छा से ही रघुराम ने अवधपुर में जन्म लिया, मेरी प्रेरणा से ही कौशिक मुनि ने मख रक्षणार्थ रघुराम को माँगा मेरी प्रेरणा से ही दशरथ ने अपने पुत्रों को उनके साथ भेजा। मेरी प्रेरणा

से कौशिक दोनों भ्राताओं को लेकर जनकपुरी पहुँचे। मेरी इच्छा से ब धनुर्भंग हुआ। मेरी इच्छा से ही मन्थरा प्रेरित हुई, कैकेई की मति फेरी ताकि उसने हमें वन जाने की आज्ञा दी। खर दूषण वध, कनक मृग का आगमन, रावण का मायाबल से मुझे अपहरण करना, रामचन्द्र से सुग्रीव मैत्री, बालि वध, मेरे अन्वेषण हेतु तेरा लंकापुरी में प्रवेश होना, सेतु बन्धन, रावणादि दैत्यों का ब दमन होना ये समस्त कार्य मेरी प्रेरणा मात्र संपन्न हुए है।" [66]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में सीता को राम - शक्ति, महामाया, सर्वेश्वरी के रूप में दर्शाया और उनके प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट किया।

<u>राधा शक्ति</u> :----

श्रीकृष्ण की भाँति राधा का उल्लेख भी भारतीय वाङ्मय में आदिकाल से मिलता है। इस संदर्भ में डॉ॰द्वारिका प्रसाद मीतल जी कहते हैं कि भारतीय साधना और आराधना की परिणति का नाम ही राधा है।[67] सामवेद में सामरहस्य लक्ष्मी संवाद में लिखा हुआ है कि----

"अनादृयोऽयं पुरूष एक एवाऽस्ति तदवै रूपं द्विधा विधाय सर्वान् रसान् समाहरति स्वयमेव नायिका रूपं विधाय समाराधन तत्परो- भूत तस्मात् तां राधां रसिकानंदां वेद विदो वदन्ति।"[68]

अर्थात् इन सबका आदि कारण पुरूष एक ही है। इस प्रकार उस रूप को दो प्रकार से सब रसों का समाहार करता है। अर्थात् प्रकाशित करता है। स्वयं ही श्रृंगार प्रदर्शिनी नायिका रमणी का रूप करके उस नायिका के समाराधन में अर्थात् मानव आदि लीला के सम्य सेवन में तत्पर हुआ। वेदों के जाननेवाले इस कारण से उस नायिका ब

राधा को प्रेमामृत रस लेके स्वाद लेने में कुशल, रसिकों के आनन्द देनेवाली कहते हैं।

उपनिषदों में राधिकोपनिषद् तथा गोपालतापनियोपनिषद् तो मुख्य रूप से राधा से ही सम्बन्धित हैं। नारद, वराह, स्कन्द, ब्रह्माण्ड, मत्स्य पुराणों में राधा का वर्णन है। श्रीदेवी भागवत् में राधा की उपासना तथा पूजा पद्धति का विशेष विवरण मिलता है। इसमें राधा को मूल प्रकृति के रूप में ही माना है।

सूरदास ने राधा को आह्लादिनी शक्ति के रूप में, प्रेम की देवी रूप में प्रस्तुत किया। डॉ॰कमला आत्रेय कहते हैं --- "कृष्ण सूर के उपास्य है और राधा उनके उपास्य की उपासिका। इसलिए सूर ने र राधा का चित्रण भी अलौकिक रूप में ही प्रस्तुत किया है। वह कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। राधा को वह अत्यन्त प्रेम करते हैं। सूरदास ने राधिका का वर्णन कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति एवं प्रेम की देवी के रूप में प्रस्तुत किया है परन्तु प्रत्येक स्थान पर उसका वर्णन मानवीय ह धरातल पर ही किया गया है।[69]

रीतिकाल में बिहारी, केशव, मतिराम, देव आदि कविजनों ने मुख्यतया राधा के शृंगार स्वरूप की ओर ध्यान दिया। रीतिकाल की राधिका चंचला, निशंका, रसिका, मुखरा, विलासिनी और बाल तरूणी है। वह तो अल्हड किशोरी है।[70]

आधुनिक काल में राधा के चरित्र का बहुमुखी चित्रण हुआ है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, द्वारिका प्रसाद मिश्र आदि कविजनों की राधा भक्तिकाल के कवियों की सर्वेश्वरी, ह्लादिनी शक्ति रससिद्ध वैष्णवों की रासेश्वरी, रीतिबद्ध कवियों की

काव्य नायिका तथा तत्कालीन युग की आवश्यकतानुसार लोकसेविका एवं अनुपम नारी रत्न है। इस काल में भक्ति, श्रृंगार, देशप्रेम, सामाजिक परिवेश और प्रकृति के विभिन्न अंगोपांगों को लेकर गद्य और पद्य दोनों में कृष्ण को नायक के रूप में, राधा को नायिका के रूप में लेकर प्रचुर साहित्य रचा गया है।

दाऊदयाल गुप्त के आराध्य देवता राधा है। गर्गसंहिता एवं ब्रह्म वैवर्त पुराण आदि में वर्णित राधा के विभिन्न स्वरूप इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। गुप्त जी ने "राधा" नामक एक महाकाव्य की भी रचना की है। इस काव्य के बारे में कृष्णदत्त पालीवाल जी कहते है---"राधा कृष्ण विषयक प्राचीन परम्परा एवं आधुनिक विचारधारा के बीच मध्यमार्ग का अनुसरण कर जहाँ एक ओर लेखक ने रूढ़िगत धार्मिक विचारों की रक्षा की है। वहाँ उसने वर्तमान की उपेक्षा नहीं की।[7]

इसमें वर्णित राधा एक ओर सर्वेश्वरी, आह्लादिनी शक्ति, कृष्ण का प्राणाधि देवी है तो दूसरी ओर भक्ति का प्रतीक समाज सेविका एवं अनुपम नारी रत्न है।

सर्वेश्वरी राधा :---

दाऊदयाल गुप्त की राधा परिपूर्ण शक्ति स्वरूपा, भक्ति, मुक्ति दायिनी है। सारे प्राणियों के अधिदेवी वही है। जगदीश्वरी, लोकमाता, मूल प्रकृति वही है। गुप्त जी महाशक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं ---

"यों महाशक्ति जब राधा नाम धराती।
तब पंच महातत्वों का बोध कराती।।

जो अन्य नाम "राधा" ऐश्वर्यार्थक है।
निगमागम सब में सिद्ध रूप सार्थक है।।
त्रेता में सीता रूप प्रकट हो पाई।
वह ही द्वापर में "राधा" शक्ति कहाई।।"
{महाशक्ति दुर्गा - पृ 253}

वह आदि शक्ति है और अवतार रूप में उनका जन्म व्रजवन में "रावल" ग्राम में हुआ --

"कालिन्दी के कूल बसा, व्रज वन में रावल ग्राम।
जहाँ हुई अवतरित हरिप्रिया, आदिशक्ति राधा सुख धामा।।"
{राधा पृ 53}

राधा की आद्याशक्ति होने की बात गुप्त जी के काव्य में कृष्ण, ब्रह्म, गर्गाचार्य आदि भी कहते हैं।

ब्रह्मा ने योग निद्रा में स्थित भगवान विष्णु को जगाने के लिए मूल प्रकृति, आदिशक्ति, रासेश्वरी राधा के इस रूप का गुणगान किया।{72}

एक बार गर्गाचार्य श्री वृषभानु महाराज से कहता है --

"साधारण कन्याओं में यह सुता नहीं है।
आदिशक्ति ही स्वयं यहाँ अवतरित हुई है।"{ राधा पृ 46}

फिर भगवान श्री कृष्ण व्रज में अवतरित होने के सन्दर्भ में, नंद को आश्वासन देते समय, कुरुक्षेत्र में राधा से मिलन संदर्भ में, फिर अर्जुन से राधा स्वरूप को स्पष्ट बताने के संदर्भ में राधा का यह रूप हमें दृष्टिगोचर होता है।

देवगण भगवान कृष्ण को दुष्टविनाशार्थ जग में अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं तो कृष्ण उनको अभयदान देते हैं। साथ ही राधा को भी भूलोक में अवतरित होने का अनुरोध करते हुए कहते हैं —"हे प्रिये! तुम शक्ति स्वरूपा हो। तुम्हारे बिना मैं क्या कर सकता हूँ? तुम्हारे इंगित पर यह संसार चल रहा है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि तुम्हारे आदेश का पालन करते हैं। तुम्हारी मुस्कान से ही सर्वसृष्टि होती है। तुम्हारे कारण ही मैं इस लोक के के पालन में प्रवृत्त हो रहा हूँ। तुम्हारे क्रोध से जल प्रलय हो रहा है।{73} फिर वे कहते हैं---

"प्राण पा तुम से हुआ हूँ
प्राणवान महान भी मैं।
बस तुम्हारे ही बनाये
बन गया भगवान भी मैं।।" {राधा - पृ 35}

कंस वध के बाद नंद को आश्वासन देकर कृष्ण व्रज वापस भेजता है। उस समय कृष्ण नंद से कहते हैं —"आपके दुःखित होने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरी शक्ति राधा अब व्रज में प्रकट हुई है। उस देवी का नाम लेते ही सारे कष्ट दूर हो जाएँगे। वह भक्ति और मुक्ति ब दायिनी है। मेरे प्राण समान है। सारे प्राणियों के अधिदेवी वही है। वही दुर्गा, काली, शक्ति के रूप में अभिहित की जा रही है। सृष्टि, स्थिति लयकारिणी वही है। उसके रहते दुखित होने की आवश्यकता नहीं है।"{74}

फिर कुरुक्षेत्र में राधा से उसके स्वरूप की याद दिलाते हुए कृष्ण कहते है ---

"तुम जननी स्वामिनी सब केरी।नरतत जग सब इंगित हेरी।
सारद रमा उमा इंद्रानि। दुर्गा,काली रूप भवानी।।

विद्या माया सीता स्यामा। सत्या कालिंदी सतभामा।
रुक्मिनि आदि नारि जग जोऊ। सो सब प्रिये अंश तव होऊ।।"
[श्रीकृष्णचरितमानस – द्वारिका काण्ड पद।92]

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त जी की राधा एक सामान्य कन्या नहीं है बल्कि एक पूर्णशक्ति स्वरूपिणी एवं सर्वेश्वरी है।

आह्लादिनी शक्ति :---

राधा भगवान की आह्लादिनी शक्ति है। वह श्रीकृष्ण को आह्लादित करती है, इसलिए वह आह्लादिनी है। श्रीकृष्ण को आह्लादित करके स्वयं आह्लादित होती है। वह प्रेम की स्वरूपिणी है। श्रीकृष्ण अपनी ही ह्लादिनी शक्ति से आप ही आह्लादित होते हैं। और अपने - अपने आह्लाद से नित्य श्रीराधा को आह्लादित करते रहते हैं। यह आनन्द चिन्मय रस की नित्य रसलीला है।[75]

ह्लादिनी का सार है प्रेम। प्रेम क्रमशः घनीभूत होते - होते स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभाव नाम से को प्राप्त होता है। महाभाव की परमतम अपूर्व अवस्था का नाम है --- मादनाख्य महाभाव अर्थात् प्रेम का परम सार मादनाख्य महाभाव है। उस मादनाख्य महाभाव की साक्षात् मूर्ति श्रीराधा जी है। राधा विशुद्ध प्रेम की कल्पलतिका है। उनका प्रेम ऐसा है कि वह अपने प्रियतम के चरणों में अपने आपको निछावर कर देती है। इसलिए राधा कृष्णमयी है। उनके भीतर तथा सब जगह कृष्ण ही कृष्ण विराजमान है। वे श्रीकृष्ण की प्रेमसेवा में रत रहती हैं।[76]

गुप्त जी ने अपने काव्य में राधा के इस रूप का भी मनोहर ढंग से चित्रण किया। श्रीराधा गोविन्द को सर्वाधिक आनन्द सम्पादित करती है। श्रीराधा अपने रूप गुण से, सौन्दर्य माधुर्य से तथा विलास वैदग्ध्यादि से श्री गोविन्द को सब प्रकार मोहित करती है। श्रीराधा गोविन्द की सर्वस्वा है। वे श्रीकृष्ण की कान्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण को सदा स्नेहदान करती रहती है। कृष्ण भी सदा राधा का सब संग चाहते हैं, क्योंकि उनको राधा के संग रहने में ही बड़ा आनन्द आता है---

"कहा कृष्ण ने - प्रिये! तुम्हारी कामना
है सराहने योग्य और शाश्वत महा
मेरा मन भी सुखी तुम्हारे संग में
होता हूँ मैं कितना आनंदित अहा।।"

(राधा - पृ-154)

फिर कृष्ण राधा से प्रार्थना करते है ---

"संग छोड़ि नहीं कहीं, मम जाउ, नित्य मनावती
जो रहौ तुम दूर तौ मन चेतना बिसरावती,
लोकऊ तजि सोक भौंह-विलास लो गति पावती
हास देखत नाचती, मुसकावती गुन गावती।।"

(महारास- पृ-60)

यमुना कूल पर कृष्ण और राधा के विनोद सम्बन्धी कई प्रसंगों को गुप्त जी ने अपने काव्य में मनोहरता पूर्वक चित्रण किया।

अपने चंचल स्वभाव के कारण वे तरह तरह की केलियाँ करते हैं--कभी राधा कृष्ण पर धूल फैंक कर वेणु छीन लेती है तो कभी कृष्ण राधा के हाथ में शोभायमान पद्म को। कृष्ण कहते हैं ---

"कहा - तब दूँगा मैं यह पद्म
रखोगी वंशी मेरे हाथ।
कहा राधा ने - यह अन्याय
एक अबला पर करते नाथ।" (राधा - पृ-90)

तब कृष्ण कहते हैं --"वे अबलाएँ नहीं कहलाती जो पुरुषों के नयनों में धूल फेंककर, वेणु छीन लेती हैं। वे सबलाएँ हैं।"(77) फिर कभी कृष्ण राधा के साथ जल विहार करते हैं।"(78) फिर कभी राधा का शृंगार स्वयं अपने हाथों से करते हैं।(79) फिर कभी होली खेलते हैं।"(80)

इस प्रकार राधा श्रीकृष्ण को आह्लादित करके स्वयं आह्लादित होती है। यह प्रेम का स्वरूप है। कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति है।

रासेश्वरी राधा :---

सृष्टि आनन्द रूपा है। आनन्द सृष्टि की आदि में भी है। अंत में भी। "रसो वै सः, मधु वै सः" आदि उपनिषद् वाक्यों द्वारा उस परमपुरुष को परमानन्द स्वरूप ही कहा गया है।"वही परम पुरुष अपने रूप को दो प्रकारवाला करके सब रसों का समाहार करता है। स्वयं ही शृंगार प्रदर्शिनी नायिका रमणी का रूप करके उस नायिका के समाराधन में अर्थात् मान आदि लीला के समय सेवा में तत्पर हुआ। वेदों के जाननेवाले उस कारण से ही उस नायिका "राधा" को प्रेमामृत रस के स्वाद लेने में कुशल, रसिकों का आनंद देनेवाली कहते हैं।(81) श्रीकृष्ण रासेश्वर हैं तो राधिका रासेश्वरी।

गुप्त जी के काव्य में सर्वत्र हमें राधा के इस रूप के दर्शन होते हैं। गुप्त जी के प्रसिद्ध काव्य" श्रीकृष्ण चरित मानस" के प्रथम काण्ड में ही

हमें रासेश्वरी राधा का वर्णन मिलता है। "मधुकैटभ संहार" प्रसंग में ब्रह्मा योगनिद्रा में स्थित भगवान को जगाने हेतु रासेश्वरी राधा को पुकारता है ---

"जय जय रासेश्वरी रम्ये। जय शिव सन्तानदायान अगम्ये।।
जय सत्ये सर्व भय भंगे। विधु वदनी दामिनिद्युति अंगे।
तुम कृष्णार्ध अंग सम्भूता। को कहि सकहि प्रभाव अकूता।
मूल प्रकृति गति मति जग जननी। सर्वाद्या वन्द्या अघहरनी।
मधुकैटभ दोउ खल दुख दाता। जेहि विधि न सहि करहु सोइ माता।
(श्री कृष्ण चरित मानस-अवतरण कांड,पद-8)

तुरंत राधा वहाँ प्रकट होकर उसे अभय देती है -----

"नीलाश्मद्युति नयन त्रय, आयुध युत दश हाथ
रासेश्वरि वहँ आइ तेहि, चरन नवायेउ माथ
विधि तेहिं लखि धीरज उर लाया, हाथ जोरि निज शीश
झुकाया।।"
(श्री कृष्ण चरित मानस-अवतरण काण्ड,पद-9)

फिर रासेश्वरी राधा का वर्णन हमें "अलौकिक गोलोक प्रसंग में दिखाई देता है। वहाँ रासेश्वरी राधा दिव्य सिंहासन पर कृष्ण के साथ विराजमान रहती है।(82) फिर वहाँ अद्भुत रास निरन्तर मनाती है। उन दोनों की रासलीला से समस्त सृष्टि नर्तनशील होती है।(83) वही रासेश्वरी वृषभानुकुमारी के रूप में जन्म लेती है। उस अनुपम सौन्दर्यश्री को देखकर नंद और यशोदा मुग्ध हो जाते हैं। गुप्त जी ने रासेश्वरी राधा के सौन्दर्य का मनोहरता पूर्वक वर्णन किया ---

गौर बरन आनन मन मोहै। मनिमय सीस चन्द्रिका सो है।।
कृष्ण केश लखि भृंग लजाना। नासा नग पर कुण्डल काना।।
अधर लाल मुसकान मनोहर। गोल कपोल सुग्रीवा सुन्दर।।
कण्ठमाल मनिरतन जड़ानी। हाथन वलय सुबरन सुहानी।।
सोहै कर सरोज सुखकारी। कटिमहँ कनक कोंधनी धारी।।
पग पैंजनि रुन झुन धुन करहीं। शोभवसन तन रितु अनुसर ही।।

उस अद्भुत सौन्दर्य मूर्ति रासेश्वरी राधा के साथ श्री कृष्ण का विवाह ब्रह्मा ने भाण्डीरवन में करवाया।

फिर हमें रासेश्वरी का रूप तब दिखाई देता है जब उद्धव मथुरा से कृष्ण संदेश लेकर ब्रज आकर व्याकुल गोपियों को ज्ञानमार्ग पर प्रविष्ट कराना चाहता है। आखिर उसका गर्वभंग होकर रासेश्वरी की शरण में आता है और प्रार्थना करता है ---

"राधा रम्या राधिका, रासेश्वरी रसधाम।
सिद्ध सिद्धि शुभ दायिनी, सत सत बार प्रनाम।।
रस रास रूप अनूप धूप समान अंगन सोहिनी।।
करुनामयी, दयामयी, मायामयी, मनमोहिनी।।
अभिराम सुन्दर स्याम की अर्धांग जो सुख धाम हैं।।
निष्काम्य काम्य विधायिनी तिन्ह कहँ अनेक प्रनाम हैं।

[श्री कृष्ण चरित मानस-मथुरा काण्ड, पद 129]

फिर जब कृष्ण कुरुक्षेत्र में पत्नियों सहित राधा और गोपियों से मिलते हैं। तब कृष्ण की पत्नियाँ राधा के दर्शन करके अपने को धन्य समझती है और कहती है ----

"कहि रुक्मिनि वृषभानुकुमारी। करै याद पिय सतत तुम्हारी।
धन्य भई तव दरसन पाया। मो पहँ संतत राखि अ दाया।
सुनि विहसित रासेश्वरी कहहीं। संग तुम्हारा सदा पिय रहहीं।
यहि लगि तुम्ह बड़ भागिनि होऊ। तव सम धन्य अन्य नहिं कोऊ।
सतभामा विहसति अस बोली। रासेश्वरी किमि करहु ठिठोली।
निश्चल निस्पृह तुम्हारी प्रीती। हम समता करि हैं केहिं रीती।।"
(श्री कृष्ण चरितमानस - द्वारिका काण्ड,पद-195)

फिर वे कहती है कि हे रासेश्वरी! हमेशा तुम उनके हृदय में विराजमान रहे। दिन रात प्रभु तुम्हारे नाम जप करते हैं। इतने में जामवती कहने लगी --"दिन रात वह तुम्हारा गुणगान करते हैं और कहते हैं, तुम्हारे समान प्रिय और कोई नहीं है। हमें भी बताओ कि वह जादू क्या है ताकि नाथ तुम्हारे जप करते रहे हैं। हे रासेश्वरी! हम पर दया करो। हमें भी ऐसे कुछ मन्त्र या तन्त्र बताओ।"(84)

ऊपर बताये गये प्रसंगों में हमें रासेश्वरी राधा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

<u>कृष्ण प्राणाधि देवी, कृष्ण प्राणाधिका प्रिया</u> :--

श्री राधिका और कृष्ण स्वरूपत: एक हैं परन्तु लीला रस की पुष्टि के लिए श्री राधा में प्रेम का सर्वातिशायी विकास हुआ है। श्री कृष्ण जैसे अखण्ड रस रूप है। श्री राधा वैसे ही अखण्ड रस वल्लभा है। राधा विशुद्ध प्रेम की कल्पलतिका है। उनका प्रेम ऐसा है कि वह अपने प्रियतम के चरणों में अपने आपको निछावर कर देती है। वह कृष्ण की प्राणाधि देवी है एवं कृष्ण प्राणाधिक प्रिया है। वे कृष्ण की कान्ताओं में सर्वोत्कृष्ट हैं, इसीलिए गुप्त जी के कृष्ण स्वयं अपने को राधा के अधीन मानते हैं और कहते है ---

"मैं परब्रह्म अजर अविनाशी। आत्म रूप सब घट घटवासी।
जब मैं होन चहहुँ बहु रूपा। प्रगटावहुँ संसार अनूपा।।
सर्ग अवस्थिति अरु संहारा। हुइ है सो सब काज तुम्हारा।
एहि अध्यात्म रहस सब होई। जन सामान्य जानि नहिं कोई।।
परमेश्वरी अधीन मैं तोरे। करु अपराध छमा सब मोरे।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस- द्वारिका काण्ड, पद-194]

जिस प्रकार राधा श्री कृष्ण की आराधना करती है, उसी प्रकार श्री कृष्ण राधा की। इसीलिए वह राधा कही गयी --

"कृष्णेन आराध्यैते इति राधा।
कृष्णं समाराध्यति सदा इति राधिका।। [राधिकोपनिषद्]

यही बात का समर्थन करते हुए रुक्मिनी, सत्यभामादि राधा को सराहती हैं और कहती हैं --"हे रासेश्वरी ! सदा तुम भगवान के हृदय में विराजमान रहे। वह सदा तुम्हारा नाम ही रटते रहते हैं। सदा यही कहते हैं कि राधा समान और कोई मेरे लिए प्रिय नहीं है।" [85]

भगवान श्री कृष्ण भूलोक में अवतरित होने के संदर्भ में राधा को भी अपने साथ अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं और कहते हैं ---

"कहेउ कृष्ण तुम कहहु का, यहि जग तव अधीन।
तुम बिनु सेवा सून सब, रहहि सुषुप्ती लीन।
यहि लखि सोवहु उदधि मँझारि, खोलहु तब तुम नींद हमारी।।
चाइ परस छोभित मन होई। जो तव चाह करहुँ मैं सोई।।
सतत रहहुँ तव रूप निहारी, जहँ जहँ गवनहुँ चलहुँ पिछारी।।"

[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकांण्ड, पद-91]

इससे हमें स्पष्ट होता है कि राधा कृष्णांग संभूता ही नहीं बल्कि कृष्ण प्राणाधि देवी, कृष्ण प्राणाधिक प्रिया एवं कृष्ण प्रेममयी शक्ति है।

भक्ति का प्रतीक :—

स्वामि भक्ति परक पात्रों में आत्मसमर्पण के साथ - साथ सर्व-स्वार्पण की भावना निहित रहती है। ऐसे पात्र जो भी कार्य करते हैं, वे सब स्वामी के हितार्थ ही करते हैं। उसमें उनका हिताहित का सन्निवेश नहीं रहता जैसा कि पहले कहा जा चुका है। राधा का प्रेम अनन्य है, फिर भी राधा का कृष्णानुराग स्वामिभक्ति मूलक है।"[86]

समस्त जीवराशि उसी परब्रह्म का ही अंश है। ये जीव, जगत में आकर फिर साधनादि के द्वारा उसी में विलीन हो जाते हैं। इनमें कुछ भगवान के सगुण रूप को स्वीकारते हैं तो कुछ निर्गुण रूप को। निर्गुण रूप अगोचर, अरूप होने के कारण भक्तों के लिए कष्ट साध्य है। सगुण रूप भक्तजनों के लिए सुलभतर है। उसी सगुण रूप धारी है -गोलोकवासी श्रीकृष्ण। सच्चे प्रेम से उसे पा सकते हैं। सच्चे साधक इस प्रेम भक्ति के मार्ग में अनेक कष्ट आने पर भी अडिग रहते हैं।

राधा कृष्णांग संभूता है। कृष्ण प्राणाधिदेवी है। फिर भी कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए इसी प्रेम मार्ग को अपनाती है। अनन्य भक्ति से उसकी आराधना करने लगती है। उसकी भक्ति देखकर मुनिजन आश्चर्य करते हैं और उसे समझाते हैं —"उस परम पुरुष को पति रूप में पाना दुर्लभ है, इसीलिए तप छोड़ कर घर जाओ।"[87]

यह सच्ची बात है कि जब साधक अपने साधना मार्ग में आगे बढ़ने लगता है। तब कई तकलीफों का सामना करना पड़ता है। लेकिन

सच्चे साधक विचलित नहीं होते। उसे सामना करते हुए अपने साधना-मार्ग में आगे बढ़ते हैं, साध्य तक पहुँच जाते हैं।

मुनिजनों की बातें सुनकर "राधा" विचलित नहीं हुई, मुस्काती हुई कहती है कि आप अपने नीरस वचनों को सँभाल कर रखिए। मैं तो कृष्ण भगवान से प्रेम की भीख माँग रही हूँ। ब्रह्म अव्यक्त - निरंजन, निराकार है। गोलोक प्रभु [कृष्ण] सगुण रूपधारी है। समस्त विश्व उसी के प्रकाश में शोभायमान है। सच्चे प्रेम से उस भगवान की आराधना करें तो उसे पा सकते हैं। प्रेममार्ग में कितने ही कष्टों का सामना करना पड़े, फिर भी प्रेम पथिक विचलित नहीं होता। वह प्रभु जरूर मुझे अपनायेगा। मैं तो इसी भरोसे बैठी हूँ। ये प्राण उसी प्रभु का वरण करेंगे, न तो जब तक जीवित हूँ तबतक उसकेलिए तप करती रहूँगी।"[88]

इन बातों में राधा की अटल, निश्चल भक्ति हमें स्पष्ट होती है। वह उद्धव से कहती है -- मुझे वैकुण्ठ, स्वर्ग आदि से क्या नाता? मैं सिर्फ गोलोक में विराजमान वही श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को चाहती हूँ, अन्य को नहीं ---

"स्वर्ग ब्रह्म वैकुण्ठ सन, काह आपुना काज।
सो गोलोक महान तहँ, जहँ राजत ब्रज राज।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस-मथुराकाण्ड,पद-114]

गर्गाचार्य भी वृषभानु महाराज से कहते हैं --- "राधा के लिए कृष्ण ही जीवन व प्राण है, भगवान श्रीकृष्ण उसे अपनाते हैं"---

"कृष्ण ही इसके जीवन प्राण
वरेंगे इसे वही व्रजनाथ।।" [राधा, पृ-70]

राधा के लिए कृष्ण ही सर्वस्व है, उसके बिना सबकुछ शून्य सा लगता है। वह यही बात सखी से कहती है ---

"बिना श्याम सुन्दर के लगता
सूना यह सारा संसार।
पार लगाये कौन इसे, यह---
जीवन-नैया है मँझधार।" (राधा -पृ -193)

आखिर वह कहती है ---"हे मनमोहन नंदनंदन! यदि तुम शीघ्र नहीं आओगे तो इस राधा को भी जीवित नहीं पाओगे। तुम्हें राधा पर यदि कुछ भी प्रेम है तो आ जाना। (89) बिन घनश्याम के राधा का कोई आधार नहीं। (90)

भगवान भक्तवत्सल हैं। "भक्ति वश: पुरुष:" जब भक्त सच्चे हृदय से उसे पुकारता है, तत्क्षण ही वहाँ प्रकट होता है। इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं -- "मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद"।

राधा की निश्चल - निर्मल, अनन्य भक्ति से भगवान का साक्षात्कार होता है और उसे अपनाते हैं---

"प्रभु कर पकरि उठाइ लीन्हि, बोले - तजहु गिलानि।
पूजी तव अभिलाष अब। हरषहु अस जिय जानि।।"
(श्री कृष्णचरितमानस-अवतरण काण्ड,पद-21)

फिर कहते है ----

"याहि लखि कृष्ण प्रतिज्ञा भाखी। कहहुँ मैं जातवेद करि साखी
रहहु प्रिये ममवक्ष विहारिनि। सकल सिद्धि वैभव अधिकारिनि।।"
(श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद 21)

इस प्रकार स्वयं साक्षात्कार होकर भगवान ने उसे अपनाया है। अर दिये गये उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि राधा "भक्ति का प्रतीक" है।

<u>आदर्शनारीरत्न के रूप में राधा :---</u>

गुप्त जी की राधा एक ऐसी नारी है, जिसमें शील - मर्यादा और संयम का अद्भुत समन्वय हुआ है। गुप्त जी की राधा में भारतीय स्वकीया ललना के समस्त स्पृहणीय गुण उदात्त रूप में मिलते हैं। राधा की स्वीकृति को उदात्तता की उस उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित हुए देखते हैं, जिसमें समग्र जीवन ही प्रभु अर्चना का माध्यम बन जाता है, सर्वात्मना प्रभु को समर्पित हो जाती है।

भारतीय लौकिक पद्धति की भाँति ही राधा पुर कन्याओं के साथ उपवन में गणगौरी पूजने जाती है। वहाँ भगवती से कृष्ण को पति के रूप में प्रदान करने की याचना करती है। गुप्त जी के कृष्ण और राधा लोक लाज और मर्यादा के खंडन करनेवाले नहीं अपितु लोक में चली आती हुई पद्धति पर आचरण करनेवाले हैं।}91}   इन दोनों का विवाह उस लोकाचार पद्धति से ब्रह्मा ने भाण्डीर वन में किया।"}92}

राधा भारत की उस पतिव्रता नारी के समान है, जो अपनी पति की बुराई भी नहीं श्रवण करना चाहती। एक सखी के कहने पर कि कृष्ण चुरा - चुरा कर दधि माखन खाता और व्रज वन में धूर्त लुटेरा कहलाता है। राधा उससे कहती है ---

"हे सखी! नहीं है उचित अधिक कुछ कहना।
हेगा मेरा दुर्भाग्य बुराई सहना।।"   }राधा,पृ-144}

आदर्शनारी के लिए पति ही प्रत्यक्ष भगवान है। उसकी सेवा में ही उस नारी का सौभाग्य है। यही पतिव्रता का धर्म है। जब राधा को कुरुक्षेत्र में रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के साथ मुलाकात हुई तब उन लोगों के पूछे जाने पर वह एक आदर्श पत्नी का धर्म बताती है —

"करि यहि सदा तियन्ह पति सेवा। सोइ ईश्वर गुरुदेवा।
चित्त लगाइ करहु तेहिं पूजा। तेहिं समान कोउ पूज्य न दूजा।
जप तप नेम पुण्य व्रत जोई। पतिव्रत धर्म निहित सब सोई।
तीर्थ दान मख जोग विरागा। सबन्ह अधिक हुई है पतिरागा।
जैसे सुकृत सुधर्म कहावैं। पति सँग करि भामिनि फल पावै।
भोग मोच्छ साधन जग जे कोऊ। नारिहिं पृथक कर्म नहिं कोऊ।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-द्वारिका काण्ड,पद-197]

इस प्रकार हमें राधा में एक आदर्श भारतीय पतिव्रता नारी का रूप दिखाई देता है।

राधा एक धीर, वीर नारी ही नहीं बल्कि उनमें देशभक्ति भी कूट - कूट भरी हुई है। वह जानती है कि देश की रक्षा का भार वीरों पर है। देश का कल्याण वीरों पर ही है, वीर वही है, जो सभी के दुःख का हरण करता है। शरणागत या अल्पमतियों की रक्षा करता है, साथ ही साथ सत्यनिष्ठ, कर्तव्य निष्ठ, शुभ-कर्मनिष्ठ होता है।[93] देश कल्याण के लिए ऐसे वीरों की कामना करती हुई कहती है—

"राधा बोलीं - कायर से कल्याण न होगा।
वीर न होंगे भू पर तो उत्थान न होगा।" [राधा-पृ-52]

वह जनता से विनती करती है — "आज देश स्वतन्त्र है,सब लोग द्वेष, वैर भावनाओं को छोड़कर एक हो जाओ, देश प्रेम के रंग में

रंग लाओ। अपने मन में स्थित मल को इस होली के रंगों में धो डालो।" 94

इससे राधा की देशभक्ति हमें स्पष्ट हो जाती है। राधा एक धीर, वीर नारी है। इसीलिए ही कृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा जाते समय नंद को यह आश्वासन दिलाते है —"राधा शक्ति स्वरूपिणी है। वह शक्ति मुक्तिदायिनी है। मेरे लिए प्राण समान है। इसलिए ---

"तेहि निवसत दुख भय कछु नाहीं। सब ऐश्वर्य रहहिं ब्रजमाहीं।"
(श्री कृष्ण चरितमानस-मथुराकाण्ड, पद-59)

कृष्ण मथुरा में रह गये। इधर समस्त ब्रजवासी कृष्ण विरह में जलने लगे। राधा अपने हृदय में उभरनेवाले कृष्ण वियोग दुख को खुद सहते हुए, अपने मन की पीर किसी को न कहते हुए, यशोदा को धीरज बांधने की कोशिश करती है ---

"राधा कहत न मन की पीर।
दादुस देह जसोदहिं जेती
तेती होत अधीर।।
आमैं स्याम वेगि मधुपुरि सौं
राखहु अन्तर धीर
पोंछत से आँसू जसुमति के
कर गहि आपनु चीर।।"
(स्याम सतक, पद-85)

इसमें राधा का मनोधैर्य हमें दृष्टिगोचर होता है।

इन विवेचनों से स्पष्ट होता है कि गुप्त जी ने श्रीराधा के अलौकिक तथा लौकिक दोनों ही रूपों का सफल चित्रण किया है।

अलौकिक रूप में राधा परब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है, जो उनकी लीलाओं में सहयोग देने के लिए उन्हीं के साथ पृथ्वभूमि में अवतरित हुई है। वैदिक साहित्य और पुराण साहित्य दोनों में ही अलौकिक स्तर पर राधा के विविध रूपों की व्यंजना हुई है। गुप्त जी ने इन सभी रूपों का सरस तथा सजीव वर्णन किया है। लौकिक रूप में राधा, रसिक शिरोमणि कृष्ण की प्राणवल्लभा है, जो एक आदर्शमयी वल्लभा के लिए अपेक्षित है। संयोगावस्था में, वे अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का पूर्ण रूपेण उपयोग करती है और वियोगावस्था में अपनी पीड़ा को चुपचाप सहते हुए अपने कठोरतम धर्म का निर्वाह करती हैं।

इस प्रकार दाऊदयाल गुप्त ने अपने काव्य में महाशक्ति की विविध रूपों को वर्णन किया और उनके प्रति अपने भक्ति भाव को प्रकट किया।

वे कहते हैं - देवी उपासना करने से समस्त संकट दूर होते हैं, शत्रु मिट जाते हैं और समस्त कामनायें पूरी होती हैं---

"देवी उपासना से सब अघ मिट जाते।
जन भोग मोक्ष अथवा सब इच्छित पाते।।"
[महाशक्ति दुर्गा - पृ-250]

इस प्रकार गुप्त जी महाशक्ति की उपासना करके भव -बंधनों से मुक्त होने को कहते हैं।

3·2·3· <u>वैष्णव भक्ति</u> :---

शुद्ध चिन्तन के लिए निर्गुण ब्रह्म तथा हृदय प्रधान उपासकों के लिए उभयात्मक [सगुण या निर्गुण] स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ। कालक्रम में ब्रह्म के सगुण स्वरूपों में विष्णु की महत्ता बढ़ने लगी। ऋग्वेद में विष्णु का स्थान गौण था। वह त्रिदेवों में विभक्त हुआ। उनकी बढ़ती महत्ता का आभास ब्राह्मण ग्रन्थों से मिलने लगा। अनंतर शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।¶[95]

वैष्णवभक्ति सात्वत धर्म, पंचरात्र धर्म एवं एकायन मार्ग नामक विविध किरणों से अंधकारपूर्ण हृदयों को अवलोकित करती चली है। श्रीमद् रामायण काल में वैष्णव प्रधान भक्ति सिद्धांतों का यथेष्ट मात्रा में उत्कर्ष दिखाई देता है। वाल्मीकि के राम निर्गुण, सनातन, आकाश स्वरूप तथा सम्पूर्ण लोकों का आश्रय है। रामायण काल में अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। भक्ति का वास्तविक विकास महाभारत काल से माना जाता है। महाभारत के शान्ति पर्व के अनुसार वासुदेव ही परब्रह्म परमात्मा है। वैष्णवभक्ति का चरम विकास तथा परम्परा का उत्कृष्ट शिखर वैष्णव सम्प्रदाय के साहित्य में हुआ। कहा जाता है-- "हरि अनन्त। हरिकथा अनंता"।

दाऊदयाल गुप्त जी मुख्यतया एक वैष्णव भक्त कवि हैं। विष्णु के अनेक अवतारों में "कृष्ण रूप" उनका आराध्य है। गुप्त जी कहते हैं-- भगवान विष्णु साक्षात् परब्रह्म ही है। वह निर्गुण निराकार है। फिर भी दुष्ट शिक्षार्थ, शिष्ट रक्षार्थ सगुण रूप धारण करते हैं।"[96]
वे अखिलेश्वर, अगम, अगोचर, अज, अनत हैं। सर्वेश, दयामय, अति उदार, निरामय है। शरणागत रक्षक है ----

"सर्वज्ञ दयामय अति उदार
निरुपाधि निरामय निरंकार।
शरणागत - रक्षक कृपावन्त
दुर्दैव विनाशक रमाकान्त।।" {शंकर - पृ-113}

वही नारायण अखण्ड, अविनाशी परब्रह्म है----

"एकु अखंड ब्रह्म अविनाशी। नारायण वैकुण्ठनिवासी।।"
{हनुमच्चरित मानस-सुन्दरकाण्ड, पद-111}

वेदों में कहा गया है - वह रस स्वरूप है। "रसो वै स:।" विष्णु रूप अत्यंत मनमोहक है, सबको लुभानेवाला है। गुप्त जी ने विष्णु भगवान का तन्मयता पूर्वक गुणगान किया है ---

"सुकण्ठ माल्य- भव्य था
किरीट शीश सोहता।
सुश्याम वर्ण, कुंज दृक्
विलोक विश्व मोहता।।
सुहस्त चार -शंख चक्र
चक्र पद्म साजते।
कि कोटिश: सुरीशमन्त
श्री सरोज लाजते।।" {शंकर महाकाव्य, पृ-112}

साक्षात् भगवान शंकर भी अपनी पत्नी उमा से विष्णु भगवान के गुण गान करते हैं -"हरि समर्थ है, वह अन्तर्यामी, अज, अखिलेश्वर है। जगदाधार है। उनकी इंगित पर ही यह संसार नाच रहा है। वही भक्त रक्षक भगवान है, दीन दयालु है। उनकी प्रभुताई लोक विदित है"{97}

उनके समान और कोई नहीं है।(98) इसीलिए ही सागर मंथन में प्रकटित महालक्ष्मी ने विष्णु भगवान का वरण किया।"(99)

गुप्त जी कहते हैं - जो भगवान विष्णु का गुण गाते हैं। उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती है।(100) फिर वे कहते हैं ---

"श्रवन,मनन,कीर्तन हरि गाथा सुभ मूल।
भोग मोक्ष देनी सदा सब प्रानिन्ह अनुकूल।।"
(हनुमच्चरित मानस-उत्तरकाण्ड,पद-33)

प्रेम सहित हरिनाम उच्चारण करो, सरल हृदय से उन्हें पुकारो, केवल भक्ति भाव उर में धारण कीजिए। अपनी भूल सुधारिए।(101) वे समभाव से सबको अपनाते हैं। उनकेलिए न कोई मित्र है, न शत्रु।(102) जो भक्ति भाव से उसे पुकारते हैं, वे उन्हें तुरन्त उनका उद्धार करते है। प्रेम भाव से अपनाते हैं ---

"नहीं देर वे कर पायेंगे
टेर श्रवण करते धायेंगे।
प्रेमभाव से अपनायेंगे।
नयन-सुफल सब हो जायेंगे।" (शंकर महाकाव्य,पृ-190)

मुख्यतया कृष्ण भक्त कवि होते हुए भी गुप्त जी ने भगवान विष्णु के अन्य अवतारों का भी उल्लेख किया है। वे निम्नवत हैं---

<u>वराहावतार :--</u>

भगवान विष्णु ने वराह रूप को धारण किया। जल में डूबे हुए पृथ्वी को जल पर ठहराया और खल हिरण्याक्ष को उसी भगवान ने मारकर सुर, मुनियों जनों का भय को दूर किया---

"सोइ प्रभु सूकर रूप बनाई। प्रविसि जलधि धरनी प्रगटाई।
खल हिरनाच्छ मारि सोइ दीन्हा। सुर मुनिवृन्द जन निरभय कीन्हा।"
[हनुमच्चरित मानस-उत्तरकाण्ड,पद-33]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में वराह स्वामी का गुणगान किया।

नारसिंहावतार :---

"हिरनाकुस" की पीड़ा से जग भयभीत हो उठी। वह क्रूर बनकर सन्त, महात्माओं, मुनिजनों को सताने लगा। तब भगवान ने नारसिंह रूप धारण कर उन्हें मारा---

"रूप रखकर नृसिंह भगवन्त।
भक्त हित मारा खल बलवन्त।।" [जय ओंकार,पृ-75]

इस प्रकार गुप्त जी ने नृसिंह भगवान का वर्णन अपने काव्य में किया।

कच्छप अवतार :---

अमृत पान करने हेतु देवतागण, राक्षस गण दोनों ने मिलकर मेरु पर्वत के सहारे समुद्र मंथन करने का निश्चय किया। मेरु पर्वत समुद्र में डूब न जाए, इसीलिए देवताओं ने विष्णु भगवान से प्रार्थना की तब भगवान विष्णु ने प्रकट होकर अभयदान किया---

"प्रणव बल कच्छप रूप सँभार।
पृष्ठ पर राखा सब ही भार।
लगे मथने मिल सागर - सार।
सहायक विष्णु - स्वरूप उकार।।" [जय ओंकार,पृ-78]

इस प्रकार भगवान विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर सागर मंथन में देवताओं के लिए सहायता की।

मोहिनी अवतार :---

सागर मंथन से अमृत प्रकट हुआ। उसके लिए देवता और दैत्यों के बीच झगड़ा शुरू हो गया।}103} उस समय विष्णु भगवान मोहिनी रूप में प्रकट हुए। यहाँ गुप्त जी ने अत्यन्त तन्मयता पूर्वक मोहिनी का अनुपम अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन करने में अपने को असमर्थ समझते हैं--- "उसी क्षण में एक किशोरी प्रकट हुई। उनके नयन चंचल हैं। शरीर गौरवर्ण है। कंठ पर माला शोभायमान है। सर्वाभरणों से भूषित, रवि,शशि समान दोनों कानों पर कुण्डल धारण कर अधरों से मधुर हास प्रकट करने वाली उस मोहिनी रूप को देखकर तीनों लोक मोहित हो गए। उनकी भृकुटि विलास पर ही तीन अवस्थाएँ सृष्टि, स्थिति, लय निहित है। अत्यन्त लावण्यमयी उस मोहिनी रूप का वर्णन करने में कौन समर्थ है?"}104} मोहिनी ने सबको मोह में डालकर अमृत को देवताओं में बाँट दिया। उस संकट स्थिति से देवताओं को बचाया।}105} साक्षात् परमेश्वर भी मोहिनी रूप देखकर मोह में पड़ गए---

"मोहिनि छवि धरि सोइ जगदीसा। भरमाये एहि काल गिरीसा।।"

}हनुमच्चरित मानस-अवतरणकाण्ड,पद-77}

इस प्रकार भगवान विष्णु ने मोहिनी अवतार में समस्त जगत को मोहित करते हुए, असुरों को अमृत से वंचित करके, देवताओं में बाँट दिया।

<u>वामनावतार :--</u>

देवतागण राक्षस राजा बलि के हाथों में पराजित होकर भगवान विष्णु से इस संकट स्थिति से बचाने की प्रार्थना की।"[106] तब भगवान अदिति के गर्भ में प्रकट हुए--

"अदिति - गर्भ - अवतारी प्रकट, वामन देव कहाये।।"
[जयओंकार, पृ-91]

उस समय "बलि" अश्वमेध यज्ञ करने लगे। समय पाकर वामन "बलि" के पास गये, तब उस बालक [वामन] के सौन्दर्य एवं तेज को देखकर सब विस्मित हुए---"मुंज मेखला, कृष्णाजिन,उपवीत शरीर पर शोभायमान है, जटाजूट धारी,हाथ में कमण्डल भिक्षा पात्र है। कोटि सूर्य-शक्ति समान तेजवान उस बालक वामन को देखकर स्वागतार्थ समस्त लोग नतमस्तक खड़े हैं। उस बालक का स्वाभाव रूप अनोखा एवं अद्भुत है"[107]

उसने महाराजा बलि से तीन कदम स्थल मांगकर त्रिलोकों को नाप लिया ---

"शीश सुरन्ह पहँ कीर कृपा, नाथ त्रिविक्रम होइ।
धरि केवल निज तीन डग, नापि त्रिलोकी सोइ।।"

[हनुमच्चरित मानस-उत्तरकाण्ड, पद-34]

इस प्रकार इस अवतार में विष्णु भगवान ने महासुर बलि का दमन कर देवताओं को बचाया।

वेंकटेश्वर :---

वेंकटेश्वर स्वामी को हम विष्णु भगवान ही मानते हैं, जिसका आज इस कलियुग में विशेष महत्व रहा है। गुप्त जी की मौलिकता यह है कि वेंकटेश्वर स्वामी की कल्पना "त्रेतायुग" में की। आपने मातंग मुनि के मुंह से अंजनादेवी से यह कहलवाया।

"प्रथम जाइ वेंकट गिरि पाहीं, धरू वेंकटेश भगति उर माहीं।
करू दरसन पद पदम प्रनामा। भोग मोच्छ दायक सुखधामा।।"
[हनुमच्चरित मानस-अवतरण काण्ड,पद-29]

अंजना देवी ने मुनि वचनों को सुनकर वैसे ही प्रभु दर्शन करके वेंकटेश की स्तुति की ---"हे वेंकटेश प्रभु! सबके दुख दूर करनेवाले! हे जगदाधार, हे दीनदयाल! तुम्हारी महिमा अपार है। हे करुणासागर! रवि - शशि सम तेजोवान,सरस्वती सम ज्ञानवान पुत्र की अभिलाषा से तुम्हारी शरण में आयी हूँ। मेरी इच्छा पूर्ण होने का वर दीजिए[108] भगवान प्रकट होकर उन्हें अभय प्रदान किया।

रामावतार :---

दशावतार लोक प्रसिद्ध है। उनमें रामावतार का एक वैशिष्ट्य है। जिसमें भगवान ने एक सामान्य मानव के रूप में प्रकट होकर समाज के सामने, जनता के सामने एक आदर्श रखा है, इसीलिए वे मर्यादा - पुरुषोत्तम कहलाये जाते हैं। इस अवतार में उसने रावण जैसे खल को मार डाला।[109] दुष्ट शिक्षण, शिष्ट रक्षण करके शांति की स्थापना की।

जो दश अवतार प्रसिद्ध लोक ने माने
उनमें ऐसा मैं राम धनुर्धर जाने
निज महाशक्ति सिय सहित धरा-भरहारी
हो गये व्याप्त वे जन रक्षक खरारी।।" [रामओंकार-पृ-177]

३. सर्वेश्वर राम :--

दालदयाल गुप्त के राम निर्गुण ब्रह्म का अवतार है जो अविनाशी है। वही वैकुण्ठ निवासी नारायण ही है। वही परब्रह्म अवध पुर में राम बनकर प्रकट हुए। ब्रह्म, ईश्वर, यम, कुबेर सब उनके ही सेवक हैं। सृष्टि, स्थिति, लयकारक, सकल फलदायक वही है, आत्म रूप में सबमें वही विद्यमान है।[10] स्वयं गुप्त जी के राम अपना स्वरूप हनुमान से कहते हैं ---

"मैं व्यापक परमात्मा अनन्ता। अविनाशी शास्वत हनुमन्ता
सब जीवन्ह महँ आत्म स्वरूपा। सबहूँ भीतर दिव्य अनूपा।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-99]

राम के परब्रह्म एवं सर्वेश्वर होने की बात गुप्त जी के काव्य में विश्वामित्र, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण माल्यवान, मन्दोदरि आदि कहते हैं।

विश्वामित्र जानते हैं राम साक्षात् परब्रह्म ही है, सर्वेश्वर है। इसीलिए उन्होंने यज्ञ रक्षार्थ रामचन्द्र को अपने साथ भेजने की दशरथ से प्रार्थना की। दशरथ रामचन्द्र को बालक समझकर संकोच में पड़े तब विश्वामित्र उसे समझाते हैं --"हे अवधेश! तेरा बड़ा पुत्र अत्यन्त महिमा-वान है। समस्त प्रजा के मन रंजन करनेवाला, दुष्ट शिक्षण, शिष्ट रक्षण करनेवाला, धर्म संस्थापनार्थ, सृष्टि स्थिति करनेवाला वही सर्वेश्वर तेरे

पुत्र के रूप में अवतार लिया है।§।।1§ ऋष्य मूक पर्वत पर लक्ष्मण ने भी हनुमान को यही बात समझाते हैं।§।।2§ विभीषण ने भी राम से लड़ने हेतु उद्यत अपने भाई एवं राजा रावण को समझाते हैं ---

"सरग प्रलय थिति लिहुँ निहित, जिनके भृकुटि विलास।
सिव विरंचि सुरपति वरुन, जम कुबेर तेहिं दास।।"

जेहिं संकेत नचहि संसारा। लीला लगि नर तन सोइ धारा
चलि है काल पाइ संकेतू। धरम हेतु अवतरि सततेतू
बिन इच्छा तेहि कछु जग माहीं। पत्रहु एकु सकत हल नाहीं।
ब्रह्म अखण्ड सगुन रघुराया। नाथ जानकी है तेहि माया।।
पावत जगपति इंगित जोई। जग गति रीति मति कारन होई।।"
§हनुमच्चरित मानस-सेतुबन्ध काण्ड,पद-9§

माल्यवान भी अपने राजा को समझाने की कोशिश करते हैं --- "राम ही परमेश्वर है। भूभार हरने प्रकट हुआ है।"§।।3§ रावण की पत्नी मन्दोदरी भी अपने पतिदेव से यही बात कहती है।"§।।4§

इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दाऊदयाल गुप्त के राम कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। वे पूर्णब्रह्म का अवतार हैं। वे देवादि देव हैं। ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र तक उनकी उपासना करते हैं। वे संसार के कण कण में व्याप्त हैं।

आ॰ <u>लोक रक्षक, दुष्ट संहारक राम</u> :---

गीता में भगवान ने स्वयं यह उद्घोषणा की ---
"परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृतां
धर्म संस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे।।" गीता-4/8॰

जब रावण के अत्याचारों से पीड़ित मुनिजन, देवगण आदि ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की, तब वे यही बात कहे हैं कि "हे सुरगण, मुनि जन! सुनो! मैं ने प्रतिज्ञा की कि दुष्ट शिक्षा हेतु शिष्ट रक्षा हेतु अवतार लेता हूँ। वही प्रतिज्ञा निभाने हेतु मैं तुरंत ही नर वेश में अवतार लेकर दशानन का वध कर भूभार हरूँगा।"{15} वही भगवान कौसल्यातनय के रूप में प्रकट हुआ ---

"कौसल्य जाएउ भगवंता, रूप सील गुनरासि अनंता
लीन्हेउ ब्रह्म स्वयं अवतारा। खलन धरम हरन भूभारा।।"
{हनुमच्चरित मानस- अवतरणकाण्ड,पद-46}

वही भगवान राम ने कौशिक मुनि के मख रक्षार्थ उनके साथ जाकर ताटक, सुबाहु आदि असुरों को मार डाला।{16} पंचवटी में रहते समय खरदूषण राक्षसों को, कनकहिरन रूपधारी मारीच को मार डाला।{17} सुग्रीव को अभय प्रदान कर नीच बालि का वध किया।{18} फिर लंका पर जाकर रावणादि दैत्यों को विनाश कर धर्म की स्थापना की।{19} रिद्धि, सिद्धि, जय, शौर्य ये सब उसी की आश्रय में हैं। उनकी अनुपम वीरत्व, एवं रण कौशल्य के सामने कोई नहीं टिक सके।

"रिद्धि सिद्धि जय शौर्य सब, रहि जेहिं आश्रय माहिं।
वीर प्रबल अति रनकुशल, टिकि सन्मुख कोउ नाहिं।।"
{हनुमच्चरित मानस-ऋष्यमूक काण्ड,पद-33}

ऊपर बताये गये इन उद्धरणों से गुप्त जी के राम का लोक रक्षक रूप स्पष्ट विदित होता है।

उ• दीन जनोद्धारक श्रीराम :--

गुप्त जी के राम अपने शील स्वभाव के कारण ही पतितपावन है। इसीलिए वे भक्तों का उद्धार करते हैं। शबरी, एक ऐसी ओछी जाति की स्त्री को भक्ति का वर प्रदान किया और उससे दिया गया जूठा फल प्रेमपूर्वक स्वीकार किया ---

"प्रेम भगति रत सबरी चीन्ही। सोउ रघुपति अति उपकृत कीन्ही
चाखि चाखि फल दीन्हेउ सोई। खायेउ नाथ प्रेमरत होई
माँगन कहि वर दीनदयाला। भगति माँगि दीन्हेउ तत्काला।।"
{हनुमच्चरित मानस- बालकांड ,पद-64}

अपने इसी शील स्वभाव के कारण ही भगवान श्रीराम ने गृद्धराज जटायु को उत्तम सद्गति प्रदान की।{20} राम अलौकिक शक्ति से विभूषित हैं, जिसके प्रभाव से शिला रूपी अहिल्या को स्त्री रूप प्रदान दिया---

"सिला रूप पथ गौतम नारी। कर दाया रघुपति सो तारी।"
{हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड,पद-58}

इस प्रकार भगवान श्रीराम का दीनजनोद्धारक रूप हमारे सामने उभर कर आता है।

ई• शरणागत वत्सल श्रीराम:--

गुप्त जी के राम शरणागत वत्सल हैं। वे शरणागतों के पालक तथा भीत जनों के रक्षक हैं। इसी शरणागत वत्सलता के वश होकर उन्होंने, अपने भाई रावण के डर से भागकर शरण में आये विभीषण की रक्षा की।{21}

इतना ही नहीं उसे भय - मुक्त कर राजसिंहासन प्रदान किया।§।22§
शरण में आये हुए सुग्रीव को अभय देकर, उनके भाई बाली का वध कर उसे भी राजा बना दिया।§।23§

3· भक्तवत्सल भगवान श्रीराम:--

गुप्त जी के भगवान श्रीराम भक्तवत्सल है और सदैव भक्तों की सहायता करते हैं। गुप्त जी के राम स्वयं कहते हैं ---

"मो महँ जेहि अति ही अनुरागा। हुइ है भगत सोउ बड़ भागा।"
§हनुमच्चरित मानस- बालकाण्ड, पद-52§

फिर भगवान राम कहते हैं -- समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए एक सरल मार्ग है-- वह है नाम जप। जो मेरे नाम जप करेगा वह बड़ भागी बनेगा। भुग, मोक्ष पायेगा।§।24§ फिर वे कहते हैं---

"रहहिं नाम मम जेहि मन माही। नहिं कोउ विपति आवतेहि पाही
जैसे जोग तंत्र सर ज्ञाना। हुइ है कोउ नहिं नाम समाना।।"
§हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड,पद-54§

राम नाम जप करने से भाग्य खुल जायेगा। गुप्त जी हनुमान के मुख से राम नाम महात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं ---

"जरे ज्वाल नहिं जपत शुभ, राम नाम प्रहलाद।
सोई नाम प्रताप सन, ध्रुव गे विगत विषाद।।"

जपि सुग्रीव राम रघुराया। किष्किंधा नृप पद सो पाया।
जपत विभीषन राम गुसाँई। सब विधि धन्य राजपद पाई
राम-नाम मैं जपत सुपावन। हयेउँ अबाध जाइ अहिरावन।
राम नाम जपि हैं विधि जोई। रघत दृष्टि मैं कछु बाध न होई।।

राम नाम रटि एहु ओहिधुवन। करहिं संहार लगै नहि दूषन
एहि सब सकति राम जप केरी। राम नाम जपि चहिअ निवेरी।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-63]

ऊपर बताये गये उद्धरणों से राम का भक्तवत्सल रूप, नाम की महत्ता हमें स्पष्ट विदित होता है।

गुप्त जी कहते हैं -- राम अत्यन्त सौन्दर्यवान है। तीनों लोकों को भी मोहित करनेवाले हैं।[125] साधारणतया भगवद् कृपा पाना दुर्लभ है। लेकिन भगवान ने यह उद्घोषण की कि --"मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद।" गुप्त जी यही बात पर बल देते हुए कहते हैं ---

"राम कृपा दुरलभ महा, एहि सुमिरे मिल जाइ।"
[हनुमच्चरित मानस-अवधकाण्ड,पद-59]

रघुराम त्रिभुवन नायक हैं जो सकल जीव उसी पर आश्रित हैं, वेदों ने जिसे नेति नेति कहते हैं --

"सकल रूप जेहिं आश्रित रहहीं। नेति नेति जेहि सब श्रुति कहहीं।।"
[हनुमच्चरितमानस-ऋष्यमूक काण्ड,पद-28]

अकेले रघुराम ने तीनों लोकों को जीत लिया है। उनके समान और कोई नहीं है। [126] उनके लिए न कोई शत्रु है,न मित्र। सबको समभाव से आदर करते हैं।[127] जो रघुराम के प्रति भक्ति रखेगा उसे इस दुनिया में असंभव कुछ नहीं-----

"रघुपति भगति हीय जेहिं होई। ताहि असंभव काज न कोई।।"
[हनुमच्चरित मानस-युद्धकाण्ड,पद-29]

इसीलिए ही अंजनादेवी अपने पुत्र हनुमान को रामभक्त बनने का आशीर्वाद देती है।{28} गुप्त जी कहते हैं -- भगवान के अनेक नाम हैं, जैसे राम, मुकुंद, हरि, मधुसूदन, ऋषिकेश इत्यादि।{29} सारे नाम एक से हैं। गुप्त जी के राम हनुमान से कहते हैं—" अन्तर्मुखी होकर नाम जप करो। यही श्रेष्ठ है।"

"अन्तर्मुखी वृत्ति मन लाई। रसना रटहि नाम कपिराई।।"
{हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड, पद-55}

गुप्त जी मुख्यतया कृष्ण भक्त कवि होते हुए भी भगवान राम के गुणगान कर रामभक्ति प्राप्त करने को कहते हैं ---

"एकहि देव एक व्रत होई। एक उपास्य नेम इक सोई
राम मंत्र दृढ़ है जप जोगू। मिलि हैं भोग मोच्छमिटि सोगू
आधि व्याधि सब होई निवारन। ध्यान जोग रघुपति एहि कारन।।"
{हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड, पद-58}

इस प्रकार गुप्त जी ने कृष्ण भक्त होते हुए भी भगवान श्रीराम का गुणगान किया और उनके प्रति भक्ति भाव रखने का संदेश दिया।

<u>राम-सीता में अभेद</u> :---

सीता - राम अभेद रूप से एक ही स्वरूप एक ही आत्मा है। गुप्त जी कहते हैं सीता और कोई नहीं है। बल्कि राम की ही शक्ति है।{30} रघुराम अखण्ड परब्रह्म हैं तो जानकी उनकी माया---

"ब्रह्म अखण्ड सगुन रघुराया। नाथ जानकी हैं तेहि माया।।"
{हनुमच्चरित मानस-सेतुबन्ध काण्ड, पद-9}

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। गुप्त जी के श्रीराम का निर्गुण और सगुण दोनों ही रूपों में चित्रण मिलता है। इनके काव्य में राम का महान् लोक रक्षक, भक्तोद्धारक, कृपालु, दयालु रूप ही अधिक विस्तार के साथ निरूपित किया है। क्योंकि यही रूप भक्त के लिए सर्वाधिक उपयोगी है।

श्रीकृष्णावतार :---

दाऊदयाल गुप्त के आराध्य भगवान कृष्ण हैं। महाभारत, भागवत, गीता आदि में वर्णित कृष्ण के स्वरूप अ इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। कृष्णभक्ति सम्बन्धी इनकी प्रसिद्ध पुस्तक श्रीकृष्ण चरितमानस वेद वेदान्त, उपनिषद, पुराण, भागवत, देवी भागवत, महाभारत आदि समस्त निगमागम शास्त्रों का सार रूप है। श्रीकृष्ण चरितमानस तथा अन्य ग्रन्थों में गुप्त जी ने कृष्ण का जो स्वरूप निरूपित किया, वह प्राय: पुष्टिमार्ग के अनुसार ही है। इस परम्परा में ब्रह्म निर्गुण भी है, सगुण भी और वे समय - समय पर पृथ्वी पर अवतरित हो लीलाएँ भी करते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रह्म विराट रूप में भी प्रकट होते हैं। दाऊदयाल गुप्त ने परम्परा के अनुसार ब्रह्म के सभी रूपों का निरूपण किया है।

पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण :---

दाऊदयाल गुप्त के कृष्ण पुरुषोत्तम, घट - घट वासी, अन्तर्यामी, अज, अनल, अद्वैत ब्रह्म हैं। सम्प्रदाय की भावना के ही अनुकूल उन्होंने परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को ही वृन्दावन में नित्यलीला करनेवाले के रूप में देखा। गुप्त जी ने अपने साहित्य में भी कई स्थानों पर कृष्ण को परब्रह्म निरूपित किया है। "गोकुल, ब्रज, वृन्दावन में विचरण करते हुए

कृष्ण एक पार्थिव ऐतिहासिक व्यक्ति लगते हैं। किन्तु मूलत: वही परम-तत्व भगवान है।{13} गुप्त जी ने स्थान स्थान पर इस तथ्य का उद्घाटन किया है।

जो ब्रह्म अगोचर, अज, अविनाशी है, वही परब्रह्म अहित सगुण रूप धारण कर गोलोक में विराजमान हैं। वही कृष्ण नाम से जग में विख्यात हैं-----

"ब्रह्म अगोचर अज अविनाशी
परमानंद सकल सुखराशी।।
सगुण रूप सोई अगहित काजा
सहित प्रकृति गोलोक विराजा।।
तहँ परब्रह्म सगुण अविनाशा
कृष्ण नाम तेहि जगत प्रकाशा।।"

{श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-5}

जिस परब्रह्म का वेद ने गुणगान किया उसी परब्रह्म को अपना सुत मानकर यशोदा ने प्रेम से अपने अंक में बिठाया---

"उपजि मोह, जसुमति उर आवा
करि अति नेह अंक बैठावा।।
ऋग यजु साम करहिं जेहि गाना
जसुमति तेहि निज सुत करि माना।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-183}

कृष्ण के परब्रह्म होने की बात गुप्त जी के काव्य के ब्रह्मा, उद्धव, भीष्म, बलराम आदि कहते हैं। स्वयं गुप्त जी के कृष्ण जब कुरुक्षेत्र में राधा से मिले उस समय राधा को अपना स्वरूप याद दिलाते हैं कि

मैं वही परब्रह्म हूँ, जो अजर, अविनाशी, आत्मरूप में घट - घट वासी कहा गया। मैं अपनी इच्छा से इस संसार में विविध रूपों में प्रकट हो रहा हूँ। सृष्टि स्थिति,लय कारक मैं ही हूँ।(32) भीष्म जानते हैं कि कृष्ण पूर्ण भगवान हैं। इसीलिए राजसूय मख के सन्दर्भ में कृष्ण की अग्रपूजा करने की सलाह देते हुए धर्मराज से कहते हैं — "प्रथम पूजा यदुनंदन की होनी चाहिए। ज्ञान, उपासना, मंत्र,मख ये सब कृष्ण प्राप्ति के साधन हैं। देश, काल, सुख संपत्ति सब उसी का वैभव है। तीनों लोकों के शासक वही है। वही ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूपों में सृष्टि, स्थिति, लय कर रहा है। वही जगदात्मा है, उसके अनुग्रह बिना कोई सफलता न मिलेगी। कृष्ण साकार ब्रह्म स्वरूप है। समर्थ है। धर्म संस्थापनार्थ, दुष्ट विनाशार्थ अवतार लिया है।(33)

इन प्रचुर उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त के कृष्ण एक पार्थिव व्यक्तित्ववाले सामान्य पुरुष न होकर पूर्णब्रह्म हैं।

ब <u>अक्षर ब्रह्म श्री कृष्ण:</u>—

अक्षर ब्रह्म परब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप है, इसलिए यह परब्रह्म पुरुषोत्तम से भिन्न नहीं माना गया है। यह सच्चिदानंद रूप भी कहलाता है। यह ओंकार ज्योति रूप होने से परब्रह्म का धाम रूप भी है। इसीलिए यह परब्रह्म के समान आदि सनातन और अनुपम, अविगत है। यह काल, कर्म, स्वभाव और अक्षर रूप होता है तथा प्रकृति जीवन और अनेक देवादि रूप होकर सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता भी होता है।(34) जगत में जो कुछ भी विद्यमान है, दृष्टिगोचर है, नामरूपात्मक है वह सब उसी का अंश है।

इसीलिए गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं --"इन्द्रियों को वश करके, मन को हृदय में, प्राण को शिर में रखकर आत्मयोग अभ्यास करते हुए ब्रह्मा का प्रतिपादन करनेवाला, "ओंकार" का उच्चारण करते हुए शरीर छोड़नेवाला मोक्ष पाता है।"[35]

एक जगह कृष्ण उत्तंक मुनि को आध्यात्म तत्व समझाते हैं "गुणातीत, निर्गुण परब्रह्म मैं ही हूँ। सगुण रूप में मुझे कृष्ण कहते हैं। ब्रह्म - हर, रुद्र, मरुत, सुरगण सकल जीव कोटि मुझसे प्रकट हुए। अव्यक्त - अव्यक्त, क्षर-अक्षर परमेश्वर ये सब मेरे रूप ही हैं। शब्द ब्रह्म जो प्रणव कहा जाता है वह मैं ही हूँ। तीनों लोकों के भगवान मैं हूँ। मैं अनन्त, मम शक्ति अनन्त"।[36]

वेद, उपनिषद आदि में जो निर्गुण ब्रह्म अगम अगोचर कहलाता है, नेति नेति कहकर अपने असामर्थ्य को स्वीकार किया है, वही भक्तों की इच्छा पूर्ति के लिए सगुण रूप धारण करते हैं। वह सर्वज्ञ, ईश्वर, सर्वात्मा, अनन्त आदि आत्मरूप में अपनी माया से प्रवर्तित होकर अनन्त गति से गुणों की कल्पना कर गुण संगम से लिंग शरीर धारण करता रहता है।[37] इसीलिए गुप्त जी के कृष्ण स्वयं कहते हैं ---

"वधगंभीर कहि जगदाधारा।
सालग्राम प्रतीक हमारा।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-187]

इस प्रकार परब्रह्म लिंग रूप धारण करते हुए भी निर्गुण शुद्ध तत्व ही है। निर्गुण ब्रह्म होते हुए भी गुप्त जी के कृष्ण लोककल्याण के लिए सगुण रूप धारण करता है।

परब्रह्म के रोम - रोम में कोटि - कोटि ब्रह्माण्ड स्थित है। ब्रह्म ही जगत के पिता हैं, जगदीश है। वह ज्योति स्वरूप है। अण्ड-पिण्ड, ब्रह्माण्ड, तीनों लोक सकल जीव उसके उदर में विद्यमान हैं।38। गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं ---"दिखाई देनेवाला समग्र जगत् का मूलकारण मैं ही हूँ। यह रहस्य जो जानेगा वही ज्ञानी कहलायेगा।।39। मेरी माया शक्ति आठ प्रकार के हैं --"भू, जल, अग्नि, समीर, आकाश, मन, बुद्धि अहंकार। यह मेरी अपर प्रकृति है। जीव रूप में इस जगत को धारण करनेवाली मेरी दूसरी प्रकृति इससे श्रेष्ठ है। इन दोनों प्रकृतियों से समस्त भूतों का आविर्भाव हो रहा है। इसलिए सारा जगत के आविर्भूत और तिरोभूत होने का कारण मैं ही हूँ। इस समस्त जगत को धारण कर रहा हूँ।"।40। यही बात ब्रह्म ने कही---

"तेहि तन अगनित लोक समाये, सकल जीव जहाँ आश्रय पाये।
हरि हर विधि असंख्य तेहिमाँहि, विश्व प्रपंच शेष कुछ नाँही।।"
।श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-26।

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में आधिभौतिक जगत् कृष्ण के रूप में देखा गया है।

<u>योगेश्वर कृष्ण :---</u>

पतंजलि "योगसूत्र" के अनुसार योग से तात्पर्य चित्तवृत्तियों का निरोध करना है --"योग: चित्तवृत्ति निरोध:"। कर्मों को कुशलतापूर्वक आचरण करना योग है--"कर्म सु कौशलं योग:"।गीता।

भगवान श्री कृष्ण परम योगी, योग सिद्ध, योगेश्वर महापुरूष है। उनके अनेक प्रमाण हैं। वे वर्णाश्रम धर्मानुसार आचरण करनेवाले हैं तथा

नित्य नियमित रूप से विहित कर्मानुष्ठान करते थे। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर आत्मध्यान, स्नान, संध्योपासन तथा गुरुजनों को प्रणाम आदि करते थे। स्वयं आप्तकाम पूर्णकाम होने पर भी लोक संग्रह के लिए आदर्श शुभ-कार्य किया करते थे। वे सदा निष्काम थे। उन्होंने अत्याचारी राजाओं को ध्वंस किया। पर स्वयं कहीं भी राज्य ग्रहण नहीं किया। वे ममता शून्य थे, गान्धारी द्वारा अपने विशाल परिवार के विनाश का शाप सुनकर प्रसन्न हुए थे। वे लोक सेवक तथा दीन दुर्बलों के बन्धु थे।[41]

गुप्त जी के कृष्ण भी वर्णाश्रम धर्मानुसार आचरण करनेवाले तथा नित्य नियमित रूप से विहित कर्मानुष्ठान करनेवाले हैं। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर आत्मध्यान, संध्योपासना आदि स्वयं करते हुए दूसरों को भी करने का आदेश देते हैं---"गायत्री वेद माता है, जो जन युगल स्वरूप के दर्शन करना चाहते हैं या निर्गुण ब्रह्मपद को पाना चाहते हैं। उनकेलिए " "गायत्री जप" महोत्कृष्ट साधन है।"[42]

वे सदा निष्काम थे। जब कंस का वध हुआ तब उग्रसेन ने कृष्ण को राज्य सम्भालने की विनती की। तब कृष्ण उसे नहीं मानकर उग्रसेन को राजा बनाकर स्वयं उनके सहायक बने।"[43]

मानव जाति के उद्धार के लिए गुप्त जी के कृष्ण ने "गीता" के माध्यम से योगोपदेश दिया। तद्द्वारा ब्रह्मानंद प्राप्ति का मार्ग बताया और जनता को यही संदेश दिया---"तेरा अधिकार कर्म करने मात्र में हो, फल में कभी न हो। तू कर्म -फल की वासनायुक्त भी न हो और न कर्म करने में ही तेरी प्राप्ति हो। आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योगस्थ हो कर्म कर। यह समत्व ही योग कहलाता है।[44]

कृष्ण के योगेश्वर होने की बात गुप्त जी के काव्य में अर्जुन, संजय, देवगण, गोपियाँ आदि कहते हैं।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं--"हे उद्धव! ब्रजभूमि योगभूमि है। सारे ब्रज जन योगी ही है। सब के सबने स्यामजोग" धारण किया है। हमारेलिए योगेश्वर श्री कृष्ण है। ॥45॥ और योग के बारे में कुछ में कहने की आवश्यकता ह नहीं---

"हम जोग नयो अब धारे कहा
जब पैलेई स्याम को जोग धरायो।।"

॥स्याम सँदेसो - पृ-51॥

संजय भी धृतराष्ट्र से कहते हैं - महाराज! जहाँ योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ होते हैं। वहाँ श्री, विजय, विभूति अविचल निश्चय रहती है।॥46॥

अर्जुन भी कृष्ण को योगेश्वर रूप में देखना चाहता है। इसीलिए वह कृष्ण से कहता है --"हे योगेश्वर! तुम्हें कैसे जान लूँ। तुम्हें किस प्रकार किन - किन भावों से चिन्तन करूँ?"॥47॥ तब कृष्ण कहते हैं --- "समस्त जीवों में स्थित आत्मा मैं हूँ, समस्त भूतों के सृष्टि, स्थिति, लय कारक मैं ही हूँ।"॥48॥

इस प्रकार गुप्त जी के कृष्ण का योगेश्वर रूप हमें दिखाई देता है।

बालक कृष्ण:--

दाऊदयाल गुप्त ने संयोग वात्सल्य एवं वियोग वात्सल्य के अन्तर्गत कृष्ण के विविध रूपों का बड़ा ही आकर्षक वर्णन किया है। बालक कृष्ण

वात्सल्यभाव के आलंबन है और उनकी लीलाएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं। ये लीलाएँ स्वाभाविक होने के कारण आश्रय भाव को स्वत: दृढ़ता प्रदान करती जाती है। कवि ने यशोदा को वात्सल्य के संयोग – वियोग दोनों पक्षों में रखकर देखा है। माँ के वात्सल्यपूर्ण चित्रों के साथ – साथ बालक की सूक्ष्माति सूक्ष्म क्रियाओं का वर्णन गुप्त जी ने किया।

संयोग वात्सल्य :---

संयोग वात्सल्य के वर्णन को हम दो भागों में बाँट सकते हैं -- सौन्दर्य वर्णन, चेष्टाएँ एवं कार्यकलाप।

सौन्दर्य वर्णन :---

श्रावण की कृष्णाष्टमी को जब घनघोर अन्धकार छाया हुआ था। आँधी व्योम में घहरानक्ष उमड़ घुमड़ रही। तब कृष्ण का जन्म हुआ। मणिमय शोभित किरीट धारण कर चार भुजाओं में शंख, चक्र, पंकज, गदा धारण कर मन को लुभानेवाले वह मुग्ध मोहन तेजस्वी बालक को देखकर वसुदेव विस्मित हुआ। [149] उसी बालक को वसुदेव गोकुल में स्थित यशोदा के पास लिटाकर उनकी कन्या को ले आये। कृष्ण ने जन्म लिया मथुरा में, कंस के काले कारागार में, लेकिन साँस ली उन्होंने ब्रज गोकुल की स्वच्छन्द वायु में"।[50] इस प्रकार प्रात: होते ही यशोदा ने नयनाभिराम पुत्र के दर्शन किये।

कृष्ण के सौन्दर्य पर माँ तो मुग्ध है ही, ब्रज की समस्त माताएँ भी मुग्ध हुई हैं। अति सुन्दर सुत को पाकर नंद भी आनन्दमग्न हुआ---

"भयेउ नन्द आनन्द उर, अति सुन्दर सुत पाइ।"

[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड, पद-139]

सारा ब्रज ही आनन्द मग्न हुआ। सारे काम काज छोड़कर यशोदा के आँगन में पहुँचे। उस मनोहर बालक को देखकर भाव विभोर हो गये। यशोदा - नंद के भाग्य को सराहने लगे।

यशोदा के उस मुग्ध मोहन शिशु के दर्शन करने देवता गण भी छद्म वेष धारण कर नंद गृह आने लगे। साक्षात् महेश्वर एक योगी रूप धारण कर यशोदा के आंगन में खड़े होकर, यशोदा से प्रार्थना करते हैं है ---

"चाहिअ कुछ नाँही। तव सुत लगि आया यहि ठाँही।
एक झलक मोहि देउ दिखाई। सोच विचार करहु जनिमाई।।"
§श्रीकृष्ण चरितमानस - अवतरण काण्ड, पद-143§

लेकिन माँ यशोदा उस योगी का रूप देखकर भयभीत होती है और उसे कोई निशाचर समझकर कहती है ----

"मोकहुँ अति प्रानन प्रिय छौना। लागहि सुन्दर स्याम सुलौना।
सुनि तव ध्वनि रोवत सो जागै। संका यहि कहुँ दीठिन लागै।।"
§श्रीकृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड, पद-146§

अत्यन्त प्रेम से यशोदा कृष्ण को सँभालती है। कृष्ण धीरे - धीरे घुटनों पर चलने लगा। "घुटरिचन" चलना देखकर सभी बलिहारी जाते हैं। चलते समय उसके पैरों में बँधे नूपुरों की ध्वनि सुनकर सारे ब्रजवासी आनंदमग्न हो जाते हैं। घुटनों पर चलकर कृष्ण बछड़ों की पूँछ खींच लेता तो वे भय के मारे भाग जाते थे। उस कौतुक दृश्य को देखकर सबलोग आनन्दमग्न हो जाते।"§151§

गुप्त जी ने कृष्ण के इस बालरूप का तन्मयता पूर्वक वर्णन किया-

"सुन्दर श्यामल रूप सुहावा। भक्त जनन के मन अति भावा।
मनिमय मोर मुकुट सिर सोहै। रत्न जटित कुण्डल मन मोहै।
चन्दन तिलक भाल पहँ राजै। मृदु पीताम्बर कटि महँ साजै।।
वैजयन्ति माला गल माँही। रूप निरखि शत काम लजाहीं।।
लाल रंग जमा सुखदाई। लाल रूप सुन्दर छवि भाई।।
श्याम केश लगत अति नीके। भ्रमर पुंज तेहिं सम्मुख फीके।।
मेचकौ भक्तन्ह मन भावन। सुन्दर चितवन लगहि सुहावना।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-3}

चेष्टाएँ एवं कार्यकलाप :---

गुप्त जी ने कृष्ण के द्वारा बालक की सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेष्टाओं एवं कार्यों का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है। धीरे - धीरे कृष्ण की आयु के साथ उसके कार्यकलाप भी बढ़ने लगे। गुप्त जी ने कृष्ण की बढ़ती क्रियाओं का भी सुन्दर वर्णन किया है।

अब कृष्ण ने घुटनों पर चलना छोड़कर अपने पैरों पर चलना शुरू किया। माँ यशोदा उसका चलना देखकर मुदित हो जाती थी---

"ठुमकि ठुमकि पग धरिहि मुरारी। होइ मुदित देखि जाहि महतारी।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-177}

कृष्ण दिन रात ग्वाल बालकों से खेलता है। माँ मन में यह सोचती है---"कृष्ण को दीठि कुदीठि न लगे। शंका मिटाने के लिए कृष्ण के माथे पर काजल का टीका लगाकर भगवान से प्रार्थना करती है ---

"अति चंचल या बाल की तेहि विधि इच्छा होई।
कीजिए सोइ प्रभु आप यहुँ सतत भरोसा मोई।।"
(श्री कृष्णचरितमानस–लीलाकाण्ड, पद–8)

यशोदा उसे घर में रोकना चाहती लेकिन वह भाग जाता था।

समवयस्कों द्वारा चिढ़ाये जाने पर बालकों में एक प्रकार के आत्म-गौरव की भावना जागृत होती है, जो उन्हें शिकायत करने के लिए भी उत्तेजित करती है। साथ ही वे अपने सुख दुःख की बातें ऐसे व्यक्तियों से करते हैं, जो उसके बिल्कुल निकट के हों। माँ के सिवाय बालक को अपना हितैषी और कोई नहीं दिखाई देता। कृष्ण काले, बलराम गोरे हैं। इसी बात को लेकर बलराम कृष्ण को चिढ़ाते हैं। कृष्ण यशोदा के पास शिकायत लेकर आते हैं ---

"मैया, मैं तो चराइ रह्यौ गैया।
बलदाऊ नैं मोहि खिजायौ।।"
तोउ परयौ मैं पैया।।"
(स्याम सतक, पद–35)

एक दिन बलराम माँ से शिकायत करते हैं कि कृष्ण ने मिट्टी खायी। माँ के पूछने पर कृष्ण अपनी गलती को छिपाते हुए कहते हैं ---

"मैया मैं कब माटी खाई।
मोसौं बैर मानि सब मन मैं
बिरथा करत बुराई
मोई पिटायवे हेतु अबइ तौ
दउआ सैन चलाई।।" (स्याम सतक, पद–34)

बालक कृष्ण की धृष्टता माखन चोरी के समय तो अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। कृष्ण के यहाँ माखन की कमी नहीं, पर वह सुस्वाद नहीं लगता। दूसरों के घर में घुसकर माखन चोरी करके खाता रहा, दूसरों को खिलाता रहा, आपने ऐसे बालाओं का गिरोह बनाया, जो खाते कम और बिखेरते अधिक, आखिर जब गोपियों के सिर तक पानी पहुँच गया, तब उन्होंने यशोदा से शिकायत की -- "तुम्हारे पुत्र की करतूत देखो। दधि, माखन चोरी करके खुद खाते तो ठीक, है लेकिन सब ग्वालों को खिलाता रहा, हमारे घर में छींके पर चढ़कर मटकी फोड़ डाली। फिर हँसता रहा।"॥52॥ किन्तु यशोदा का मातृ हृदय कृष्ण के विरुद्ध लगाये गये अभियोग को एकाएक कैसे मान लेता। प्रतिवाद उठता है कि छोटा सा बालक छींके पर चढ़कर माखन किस प्रकार निकाल सकता है? इसलिए वह कहती है ---- "मेरे लाला लाल निरा भोला है। आप लोग व्यर्थ क्यों शिकायत करते हो? उस अबोध पर दोष लगाने में लाज नहीं आती?"॥53॥ माता की शह पाकर कृष्ण और अधिक चंचल उद्दंड होते गये। प्रतिदिन उलाहने सुनते-सुनते यशोदा के कान पक गये। एक दिन कृष्ण को ऊखल से बाँध दिया। कृष्ण ने ऊखल को यमलार्जुन के वृक्षों में अड़ाकर जोर से धक्का दिया। वे टूट गये। ध्वनि सुन सभी आये और देखा कृष्ण आनंद से खेल रहा है। नंद ने स्वयं ऊखल से कृष्ण को छुड़ाकर गले लगाया।॥54॥

बच्चों का यह स्वाभाविक तत्व है कि खेल-कूद में भूख - प्यास भी भूल जाते हैं। कृष्ण भी ग्वाल बालकों के साथ यमुना तट पर खेलने गये। खेल कूद में भूख प्यास भी भूल गये। यशोदा कुछ देर उनके लिए प्रतीक्षा कर उसे ढूँढते हुए यमुना तट पर पहुँची और कृष्ण को समझाती है और कहती है— "अरे लाल! भूख प्यास न लगती तुमको? चलो घर। कई प्रकार के व्यंजन बनाकर तुम्हारे लिए प्रतीक्षा करती रही। भोजन करके फिर खेलो।"॥55॥ फिर उसे घर ले जाकर स्नान करा के वस्त्राभरणों से सजाती है।

इस प्रकार कृष्ण के अधगरी हमारे आसपास दिखाई देनेवाले बालकों के स्वभाव से परे नहीं है। कृष्ण के क्रिया कलापों की ओर दृष्टिपात करते ही हमारे नेत्रों के आगे एक शरारती बालक खड़ा हो जाता है, जो महत्व-आकांक्षी है, व चंचल और शरारती है।

वियोग - वात्सल्य :---

संयोग की भाँति गुप्त जी के वियोग वर्णन के भी दो भाग किये जा सकते हैं ।

1• भावी वियोग की कल्पना से प्रसूत भावों का चित्रण
2• वियोग अवस्था का चित्रण

भावी वियोग की कल्पना से प्रसूत भावों का चित्रण :--

गुप्त जी ने संयोग के समान वियोग वर्णन भी वात्सल्य भाव से आरम्भ किया। कृष्ण की रस भरी लीला से व्रजभूमि सराबोर थी। ऐसे समय अक्रूर, कंस का निमंत्रण लेकर पहुँचे और कृष्ण - बलराम को ले जाने का प्रस्ताव रखा। यशोदा तो पुत्र वियोग की आशंका से सिहर उठी। इससे उनका कल्पनामय वियोग तीव्र हो उठा। जब नंद ने अक्रूर की बात मान ली तब यशोदा नंद से कहती है --"हे नाथ! आप क्या कह रहे हैं? उन दुष्टों के पास स्वयं अपने सुतों को भेज रहे हैं। आपकी बुद्धि कहाँ गयी, जो अक्रूर की बात मान बैठे। वह तो क्रूर कंस का सेवक है।{156}

नंद भी पुरुषोचित गरिमा के कारण ऊपर से शांत है, किन्तु उनका हृदय भी दु:ख से फटा जाता है। नंद अपने हृदय पर पत्थर रखकर उसे समझाता है। आखिर वह विवश होकर बलराम - कृष्ण को मथुरा भेजती

हुई पति से विनती करती है --"राजा क्रूर है, प्रजा के लिए "काल" बन बैठा है, उसके दूत वही हैं, कई बच्चों को उसने मार डाला। मेरे बच्चों को मारने के पीछे पड़ा हुआ है। इनको आँखों से दूर न जाने दो, सदा इनका ख्याल रखिए।﴾57﴿

दुख के आधिक्य में एक दशा पहुंची है जब मुख से वचन नहीं निकलते, वाणी मूक हो उठती है, वाणी का कार्य आँखों को करना पड़ता है। विरह की इस परम अनुभूति का वर्णन श्री गुप्त जी ने मार्मिकता पूर्ण किया है----

"जसुमति दसा लखहु निज आँखी। खुलत न तउ किन्तु अन्तर पाँखी।।
रोहिन दृग ढारत मुख फेरी। भइ गति शिशु विहीन गऊकेरी।।
गोपी गोप विकल मन माँही। रोवत धीर धरत कोउ नाँही।।
व्रज पति बाहिर अचल दिखाने। पै चित न सोउ ठिकाने।।
रुका न जल रोकत विजनैना। गद गद कंठ न निकसै बैना।।"
﴾श्री कृष्ण चरितमानस- लीलाकाण्ड,पद-215﴿

किन्तु कृष्ण निष्ठुर हो चले ही गये।

वियोगावस्था का चित्र :---

निष्ठुर कृष्ण तो चले गये। किन्तु माता को दे गये विरह व्यथा। यशोदा को आशा थी कि कृष्ण नंद के साथ लौट आयेंगे, परन्तु कृष्ण ने मथुरा से नन्द को यह कहकर विदा कर दिया--"मथुरा की रक्षा का भार हमारे कंधों पर है, हमने राजा को वचन दिया। उसे निभाना ही पड़ेगा। राज-काज हित हमें मथुरा में कुछ देर रहना पड़ेगा। फिर समय पाकर व्रज आयेंगे। माँ हमारी प्रतीक्षा में द्वार पर खड़े होकर बाट "देखती रहती, आप तुरन्त व्रज जाकर माँ के साथ सबको समझाइए और धीरज दिलाइए।﴾58﴿

यहाँ नन्द की दशा का भी बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन है। कृष्ण उनको न जाने कितनेक उपदेश देते हैं। पर नन्द के मन में एक ही बात बार-बार आती है कि वे बिना कृष्ण के यशोदा के आगे कैसे जा पायेंगे---

"सुनि हरि वच विह्वल ब्रज नाहा। बोले - सुवन कहेउ एहि काहा।
बिनु तव कहहु धीर धरि कस रहही। किमि जननी वियोग उर सहही।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-मथुरा काण्ड,पद-53]

कृष्ण फिर से नन्द को समझाते हैं, मीठी - मीठी बातों से भुलावा देकर लौटा देते हैं। उधर यशोदा पुलकित हो होकर कृष्ण की बाट जोहती है। नन्द को गोपों सहित आते देख, कृष्ण-बलराम को उनके नयन खोजते हैं। किन्तु जब कृष्ण के न लौटने का रहस्य मालूम होता है तो उनकी अवस्था विह्वलता की सीमा को लांघने लगती है। वे नन्द से कहने लगती है---

"महर! तुम लालन क्यूँ नहिं लाये।
असुरन बीच छोड़ घों दीन्हे, इकलेइ कैसे आये।
वेउ इकैले मधुपुरि रह गये, निज जन सब बिसराये।
मोहन बिन मम मन नहिं लागै, होत भौत पछिताये।
भूले नेह गेह महतारी, जीय कठोर बनाये।।"
[स्याम सतक-पद,77]

नंद उसे समझाता है और कहता है --"कृष्ण हमारे पुत्र नहीं बल्कि देवकी का पुत्र है। रक्षा हेतु ब्रज भेजा गया। वही आज कंस को मार कर माता-पिता, नाना को जेल से छुड़ाया। राज-काज में भी भाग लेते हुए आज असुरों का "काल" बना।[159]

"कृष्ण अपना पुत्र नहीं" यह बात सुनकर यशोदा बहुत दुखी होती और कहती है ---

"महर! तुम कैसी बात सुनाई।
जानी नाँहि गैर नहिं अपनो, यहि लागी धधकाई।।
पाल्यौ पूत मूत मल धोय। आस रही अधिकाई।।
दिन भर बैठि बाट देखत ही, भूख प्यास बिसराई।।
रोवत जसुमति रुकति न आँसू, घोर बिथा उर लाई।।
"दाऊदयाल" लाल नहिं अपनो, मैं कैसी भरमाई।।
[स्याम सतक-पद-79]

कृष्ण काम-काज में व्यस्त रहने के कारण लौट नहीं पाते, किन्तु अपनी माता के लिए कम दुखी नहीं। राज महलों में सुखपूर्वक रहकर भी उनको सबकुछ सूना-सूना लगता है। उनका मन पंख बाँधकर ब्रज की ओर उड़ जाना चाहता है। जहाँ यशोदानंद की अनुरागमयी गोद उनकी राह देखती रही है। वे विह्वल हो कह उठते हैं ----

"ऊधौ मातु - पिता पहँ जाई। धीरज देउ कहहु समुझाई।।
राजसि ठाठ तनिक न भावै, ब्रज की निसिदिन याद सतावै।।
मिलहिं न मीठी रोटी बेरी। बिसरि न पलना गाय महेरी।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-मथुराकाण्ड, पद-73]

फिर वह कहता है---

"आवै सुधि - लाड़कर अंक लिपटायी मातु
नंद -नेह, गैयन को बन में चरावनौ
भूले न हिंडोरा कला कलित कालिंदी कूल
झूले था कदम्ब - डारि बेनी को छवावनौ
कौंधि - कौंधि बीजुरी हुलकि हुलसत होय
जीया ना बिसारै ब्रज रासउ रचावनौ।।"
[स्याम संदेसौ, पृ-25]

गुप्त जी ने वियोग वात्सल्य में विरह की ग्यारह अवस्थाओं का वर्णन मार्मिक ढंग से किया। इस प्रकार बालक कृष्ण के विविध रूप हमें गुप्त जी के संयोग एवं वियोग वात्सल्य के वर्णनों में मिलते हैं।

रसिकेश्वर कृष्ण :---

यह विदित है कि कृष्ण ने गोकुल छोड़ वृन्दावन को अपनी लीला भूमि बनायी। इसमें भगवान अपनी आनन्द प्रसारिणी शक्तियों सहित नित्य-व्यापक लीलाएँ करते हैं। इसमें उनके नंद यशोदा, गोपबालकों, गोपियों तथा राधा के प्रति सम्बन्धों का वर्णन है, उनके परिपूर्ण आनन्द के उच्छलन से पूर्ण लीलाओं का वर्णन हुआ है। कृष्ण का यह रूप। "रसेश" कहा जा सकता है।[160] गुप्त जी ने बताया है कि एक दिन---

तत्पश्चात विलोकि ससंकित गोप
    कहैं अनहोनी के बाढ ठिकाने।
अब छाँडि के गोकुल अन्त चलौ
    बहु सोचत वृद्ध भिर्ई निहचाते।
बलहीन चढ़ी सब नारि सबी
    धन भाजन गाडन माहिं लदाने।
करि धेनु अगारि चले सब ग्वार
    सो विन्दा-अरण्य में जाइ बसाने।।"
        [ब्रज-दाऊदयाल गुप्त, पद-100]

सभी ग्वालों ने शकट सजा लिये और यमुना तट पर वृन्दावन की रम्यभूमि पर डेरा डाल दिया।

कृष्ण का गोचारण :---

गोचारण प्रसंग में गुप्त जी की सख्य भक्ति का अधिक प्रगाढ़ रूप प्रस्तुत हुआ है। सख्य प्रेम के वशीभूत हो गुप्त जी के कृष्ण सखा- भक्तों के साथ गायें चराते हैं और उनके सुख के लिए अनेक प्रमोद भरे खेल खेलते हैं। इस प्रसंग में गुप्त जी ने अनेकानेक रम्य चित्र उपस्थित किये हैं। कृष्ण गोचारण के लिए जाने की जिद्द करने लगते हैं ----

"चलने लगे जब एक दिन धेनु चरावन नंद
आज चलहूँ तव संग मैं बोले आनन्दकन्द।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस - लीलाखण्ड, पद-14]

उनके अन्दर वृन्दावन देखने की उत्सुकता है। नंद उसे समझाता है कि वन का मार्ग ठीक नहीं है और आसमान पर बादल छाये हुए हैं। तुम यहाँ अपने मित्रों से खेलो। पर कृष्ण स्वभाव से ही जिद्दी है। आखिर नन्द को उन्हें अपने साथ ले जाना ही पड़ा।

धीरे - धीरे कृष्ण ग्वाल बच्चों के साथ गायों को चराने वन जाना शुरू किया। वन में कृष्ण गायों को चराते हुए ग्वाल बच्चों के साथ खेल कूद में दिन गुजारता रहा। गुप्त जी ने इस दृश्य का वर्णन करते हुए कहा----

"खेलत दृगमिच गिल्ली डंडा। यहि विधि अनेहु वय पैगंडा।
वत्स छाँडि अब धेनु चरावहिं। दौनुहि बन्धु प्रात वन जावहिं।
होइ संग सोई सकल संगाती। चलहिं अगार धेनु कर पाँती।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-लीलाखण्ड,पद-47]

शाम को घर आकर सबेरे होते ही बलराम सहित ग्वाल बालकों को लेकर वन जाता रहा। सभी सखा सहित वह किनारा पर वहाँ की

छाँह में बैठकर मौज से तालफल खाया करता था।।61। इस प्रकार गोचारण का समय बड़े ही सुन्दर ढंग से कृष्ण बिताते रहे।

चीर हरण लीला:---

चीर हरण लीला का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय "22" में और ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण जन्म खण्ड के अध्याय "21" में प्राप्त होता है। इसी कथा का गुप्त जी ने सुन्दर ढंग से चित्रण किया।

हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में व्रज की कुमारियों ने व्रत के हविष्यान्न को खाकर भगवती कात्यायनी देवी के पूजनार्थ व्रत धारण किया। उनके व्रत का उद्देश्य था पति रूप में भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति। भगवती से वे इसकी प्रार्थना करती हैं।।62।

बाद में एक दिवस गोपियाँ वस्त्र उतार कर, नग्न होकर यमुना में स्नान करने लगीं। उसी समय कृष्ण वहाँ प्रकट होकर, स्नान के समय उनके वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर जा बैठे। जब गोपियाँ स्नान के पश्चात् जल से बाहर निकलीं तो उन्हें वस्त्र न मिले। चारों ओर देखने पर उनकी दृष्टि उस कदम्ब पर गई, जिसकी एक शाखा पर भगवान कृष्ण विराजमान थे और उनके निकट ही सब वस्त्र रखे हुए थे। यह देखकर वे अत्यन्त लज्जित हुई और कातर स्वर में प्रार्थना करती हुई अपने वस्त्र माँगने लगी। तब कृष्ण ने कहा —

तुमने बस्तर सकल उतारे।
ऐसेइ नहात निरत देखत हो
सुन्दर देह उघारे।।

यही भारी अपराध वस्न कौ
कीन्हौ बिना विचारे
बाहिर निकसि हाथ जोर औ
सनमुख आउ हमारे।।"   [श्याम सतक,पद-48]

गोपियाँ कृष्ण से बार-बार अनुनय विनय करती हैं कि वे उन्हें व वस्त्र लौटा दें क्योंकि बिना वस्त्रों के जल से बाहर आने में लाज लगती है। पर कृष्ण नहीं मानते। तब गोपियों ने भगवान से क्षमा माँगकर उनसे वस्त्र प्राप्त कर लिये। तब कृष्ण ने उनकी इच्छा जान ली और गोपियों के कुछ न कहने पर भी, उन्होंने कहा --- "तुम्हारा यह मनोरथ सफल होगा, जिसकेलिए तुमने देवी का पूजन किया है।[63]

यद्यपि उक्त प्रसंग से कुछ लोग भ्रमित होकर भगवान के चरित पर दोषारोपण करते हैं, किन्तु वे यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि वस्तुत: इस चरित्र का तात्पर्य क्या है? गुप्त जी कहते हैं --"समस्त विश्व में आत्मरूप में भगवान ही व्याप्त है और सभी प्राणी उन्हीं की इच्छा के अनुसार चलते हैं। योगियों की मान्यता है कि आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। गोपियाँ भगवान को पति के रूप में चाहती थीं। वे जान गई थी कि भगवान तो शरीर धारियों के पति ही नहीं बल्कि परमपति है। इसलिए उसी का आश्रय लेना चाहिए। उसके आश्रय में सभी का आश्रय सिद्ध हो जाता है। परमात्मा से दूर तभी तक का है, जबतक देह भावना का अज्ञान विद्यमान है। इसके दूर होने पर स्पष्ट हो जाता है अभेद और तब न लज्जा रहती न भय। किन्तु अभेदज्ञान और उसका अनुभव परिपक्वावस्था होने पर ही हो पाता है। भगवान ने गोपियों की यही परीक्षा ली थी कि उन्हें इस परिपक्वावस्था की प्राप्ति हो सकी है या नहीं। भगवान जानते थे कि वर्ष पर्यन्त व्रत का आचरण करने पर भी उन्हें नित्यानित्य वस्तु का विवेक नहीं हुआ था। इसलिए इस परीक्षा

के मिस वे उन्हें योग्य अधिकारिणी बना देना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि परम भक्ति के योग्य गोपियाँ किसी प्रकार के भय एवं लज्जा युक्त देहाध्यान में पड़ी रहें। इसी उद्देश्य से उन्होंने चीरहरण की यह लीला रची थी।{164}

इस तरह कृष्ण चीरहरण द्वारा गोपियों को अपनी ओर और अधिक आकृष्ट करते हैं।

मुरली माधुरी :—

कृष्ण साहित्य की समस्त वर्ण्यवस्तुओं में "रास" सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा है। गुप्त जी ने सूर की तरह मर्यादित ढंग से ही रास का वर्णन किया है। श्रृंगारिक वर्णन के बीच-बीच उन्होंने अलौकिक तत्वों का समावेश कर रास को अश्लीलत्व के दोष से मुक्त कर दिया है।

कृष्ण के रूप ने तो सब पर मोहिनी डाल रखी थी। कृष्ण की नितनयी शरारतों ने ब्रजांगनाओं को भी अपने वश में कर लिया था। जब कृष्ण ने शरारतें गढ़ने से ज्यादा मुरली बजाने में निपुणता प्राप्त कर ली तो सोने में सुगन्ध ही हो गया। पहले ही गोपियों को कृष्ण के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। परन्तु अब तो मुरली ने ऐसा जादू कर दिया था कि अपने गृहकार्य में भी रुचि न रही। {165}

गुप्त जी ने शरद्-रासलीला का आरम्भ मुरली सम्मोहन के वर्णन से किया है। मुरली द्वारा कवि ने शरद् रास की भूमिका बाँधी है। कृष्ण की मुरली की सुमधुर धुन के प्रभाव द्वारा कवि ने गोपियों का स्वाभाविक एवं अर्थपूर्ण चित्रण किया है।

मुरली की धुन सुन गोपियाँ प्रेम विह्वल होकर वन की ओर दौड़ी। इस दृश्य का चित्र गुप्त जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से खींचा है ----

"कोउ चौका करि डारहि गेहा। कोउ न्हावति माँजति निज देहा।
धोवहि बसन कोउ अलबेली। देखहि कोउ पति बाट अकेली।।"
§श्रीकृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-146§

कोई गाय दुह रही थी, कोई दूध औंटा रही थी, कोई भोजन पका रही थी। कोई परोस रही थी, कोई बालक को दूध पिला रही थी। कोई पति सेवा में लगी थी और कोई आँखों में अंजन लगा रही थी। इसी स्थिति में उन्होंने वह वंशीनाद को सुना। जो जिस अवस्था में थी उसी में उठकर श्याम की ओर भाग निकली। गुप्त जी मुरली की महिमा को सराहते हुए कहते हैं ---

"मुरलिया, तेरी तान महान।
गूँजि रहे सुर तिरलोक में,भो मदमत्त जहान।।
सोवत गोपी जाग उठीं, उर लग्यौ पँचरंग बान।
उलटे-सीधे बसन धरि तन, भूल गई निज मान।।
आधीरात अलात चलीं तो, जुरि मिलि गावत गान।।
"दाऊदयाल" हाल का कहिये, मारग कोउ नहिं भान।।"
§स्याम सतक,पद-6।§

कृष्ण की बंसी सुन गोपियाँ ही नहीं प्रकृति भी स्थिर हो जाती है। जब प्रकृति ही बेसुध हो तब साधारण, प्रेम की भूखी ग्वालिनों की क्या बिसात?

रास का आयोजन:----

गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँची, जैसे बीन-विमोहित सर्प। कृष्ण ने सबको बुला तो लिया, पर वे ठहरे एक नम्बर के रसिया। उन्होंने गोपियों के प्रेम की, उनके अनन्य माधुर्य भाव की परीक्षा लेने की ठानी। ऐसे अनजान बन गये जैसे वे कुछ जानते ही नहीं। वे बड़े भोलेपन से व्रजांगनाओं से प्रश्न करते हैं कि ----

"कहो तो चली हो किमि गोपिकाओ?
तज्यो गेह क्यूँ काह काजे बताओ?
घनी घोर राका बनी है भयानी
फिरैं जीव न तोऊ डरानी।।"
{महारास-दाऊदयाल गुप्त,पृ-44}

इतना कहकर कृष्ण चुप नहीं रहे, कहने लगे कि सबको अपने पति को परमेश्वर मान उसकी पूजा करनी चाहिए। तुम्हारे पति, माता-पिता तुम सबके बिना दुखी हो उठे होंगे। इसीसे तुम अपने घर चली जाओ।"{166}

कृष्ण की बनावटी और निष्ठुर बातें सुन, गोपियों का मुख कुम्हला गया। हृदय टूट गया। विकल होकर गोपियों ने कहा-"तुम क्या कह रहे हो? समझ में नहीं आ रहा है। हम तुम्हारे सिवा किसी को नहीं जानतीं। सारे भव बन्धनों को तोड़कर तुम्हारे पास दौड़ आयी है। फिर वे अपने मंतव्य को स्पष्ट बताती है कि ----

"जानहि नाहिं होहि का नीति। हिरदय सतत प्रीति की रीति।
देउ सीख अस यहि नहिं जाना। हम तुम कहँ पतियन्ह पति माना।।"
{श्री कृष्ण चरितमानस-लीलाखण्ड,पद-152}

गोपियों के निश्छल, निर्मल प्रेम के आगे कृष्ण झुक गया और कहा---

"पावहु अब सब इच्छित जी का। होइ रास शुभ अद्भुत नीका।।"

[श्रीकृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-155]

कृष्ण और गोपियों का यह संवाद मनोवैज्ञानिकता से पूर्ण और नाटकीय है। जहाँ कृष्ण के चरित्र में गौरव, स्नेहशीलता और मर्यादा का मिश्रण है, वहाँ गोपियों में तर्क, प्रेम, कातरता, आग्रह एवं दयनीयता का अनुपम संयोग हुआ है।

<u>रासलीला</u> :---

गुप्त जी ने अपने काव्य में कई सन्दर्भों में रासलीला का मार्मिक ढंग से वर्णन किया। अपने प्रसिद्ध काव्य "श्रीकृष्ण चरितमानस" के प्रथमकांड में ही अलौकिक गोलोक में विराजमान हुए युगल स्वरूप और वहाँ नित्य मनाये जानेवाले महारास का वर्णन किया---

"नारद शारद सिद्ध मुनि, गावहिं महिमा गान।।
दिव्य सभा सस्वर मनहु श्रुति सब मूरतिमान।।
तहाँ इक और लसत थल पावन। विशद रास मण्डल मन भावन।।
महारास रस बरसहि नीका। परमानन्द प्रदायक जी का।
किंकिन क्वणित शब्द सुखकारी। तता थेई की धुनि न्यारी।।
सखी सखा सम रूप सुहाने। महारास रत सकल सयाने।
तेहिं थल हरि रासेश्वरी दोऊ, सखा सखिन संग थिर कोहं सोऊ।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-67]

वही अलौकिक हरि, रासेश्वरी दुष्ट शिक्षा शिष्ट रक्षा हेतु अवनि पर कृष्ण और राधा के नाम से अवतरित हुए।

एक दिन ब्रज वासियों ने कृष्ण से यह अनुरोध किया कि हमें उस अलौकिक गोलोक दिखाओ। तब कृष्ण उन्हें अलौकिक गोलोक के दर्शन करवाये। वहाँ वे अद्भुत रास को देखते हैं ----

"दिव्यरास मण्डल लखेउ तहँ अति अद्भुत रास
नन्द सहित सब गोप उर अचरज युत उल्लास।।"

[श्रीकृष्णचरित मानस-लीलाकाण्ड,पद-144]

लौकिक जगत में कृष्ण की रासलीला का आरम्भ ब्रज की कुमारियों के हविष्यान्न खाकर भगवती कात्यायनी व्रत धारण करने से हो जाता है। बाद में मुरली सम्मोहन, रास का आयोजन आदि घटनाएँ होती हैं। कृष्ण गोपियों को अद्भुत रास चलाने का वादा करता है। फिर रासलीला शुरू होती, उस अद्भुत रास का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं ---

"व्यूह बनाइ हरी ब्रज बाला, वृत्त व्यास विस्तार विसाला
नरतति नारि मुदित मन भारी। रास विलास सरस सुखकारी।
जेति गोपी जहाँ रही तेते रूप बनाइ
बिच बिच हरि नाचि सो सकल नरतहिं तिय हरषाइ।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-156]

रास लीला करते - करते कृष्ण अदृश्य होजाता है। कृष्ण को न पाकर वे एक दूसरे से पूछने लगीं कि श्याम कहाँ गये? वे विरह में इतनी व्याकुल हो जाती हैं कि वृक्षों एवं लताओं से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं---

"ऐरे, खिजूर पहरी बन की बन्यो है,
तुई बताइ अब पीय किते हमारे?" [श्याम संदेसो]

कृष्ण के अदृश्य होने का कारण यह है कि गोपियों के मन में अपने अपने परम सौभाग्य पर गर्व होने लगा। भगवान कभी किसी का गर्व रहने

ही नहीं देते। इसलिए वे वहीं अन्तर्धान हो गये। बाद में गोपियों की अपने प्रति अधिक अनन्यता देखकर भगवान पुन: प्रकट हुए। भगवान को सहसा प्रकट होते ही मृतवत् हुई गोपियों के शरीर में पुन: चेतना आ गई। उनके नेत्र अपलक दृष्टि से भगवान के अद्वितीय रूप रसामृत का पान करने लगे। उस समय जो महारास चली, उसका अपने काव्य में गुप्त जी ने महत्व-पूर्ण स्थान देकर मनोहर ढंग से वर्णन किया--"जब गोपी मण्डल युक्त रासोत्सव का आरम्भ हुआ, तब भगवान श्रीकृष्ण अपनी अचिन्त्य योग-शक्ति के द्वारा दो-दो गोपियों के मध्य में उपस्थित हो गये और उन्होंने इधर-उधर की दोनों गोपियों के गले में हाथ डाल दिये, जिससे प्रत्येक गोपी भगवान को अपने ही पास समझने लगी। महारास का आरम्भ हुआ, दुन्दुभि बज उठीं, कंकण, नूपुर और किंकिणियों का तुमुल घोष होने लगा। पुष्प वृष्टि के साथ जय जयकार हुआ---

"महारास शोभा अवलोकी, मुग्ध चकित सो पुनि गति रोकी।
रासहिं पिय संग पग पिक बैना। इन अभ्यास करहि जुनुबैना।।
सकल जीव मृदु भ्रमहिं भुलाने, थिरकहिं अंग प्रान हरषाने।।
अग जग सब अति नरतन लीला। सुरगन आइ लखहिं यहि लीला।।
मोहित सब निजचेत बिसारी। गोपी रूप नाचहिं त्रिपुरारी।।"
(श्रीकृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-180)

रासलीला का यह क्रम उस समय तक चलता रहा, जबतक गोपियाँ थक न गयीं। तदुपरांत उन्होंने यमुना में उतरकर जल विहार किया और वहीं उपवन में विचरण के पश्चात् उन गोपियों को घर जाने की आज्ञा दी। भगवान की यह समस्त लीला निष्काम भाव से ही थी।

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में वर्णित रसिकेश्वर कृष्ण का स्वरूप स्पष्ट होता है।

गोपीवल्लभ, राधावल्लभ – श्रीकृष्ण :—

गुप्त जी ने वात्सल्य एवं सख्य से भी अधिक माधुर्यभाव का विस्तार से वर्णन किया है। इस माधुर्य भाव के आराध्य है परमसुन्दर, परम आनंदमय श्रीकृष्ण और आराधिका है। गोपीकिशोरियाँ, किन्तु उनके परम आनन्द रूप की सम्पूर्णता उनके युगल राधा-कृष्ण रूप में ही होती है।

कृष्ण के गोपीवल्लभ रूप के क्रमिक विकास गोपकन्याओं के कात्यायनी देवी का व्रत धारण प्रसंग से आरम्भ होकर क्रमश: चीरहरण, यमुना विहार, मुरलीवादन, रास,जल,क्रीडा,वसंत आदि लीलाओं से हुआ है। गुप्त जी ने कृष्ण के इस रूप को बड़ी तन्मयता से चित्रित किया। कृष्ण का राधावल्लभ रूप क्रमश: अलौकिक गोलोक प्रसंग से आरम्भ होकर राधा-कृष्ण के लौकिक जगत में आविर्भाव, गर्गाचार्य प्रसंग, राधा-कृष्ण विवाह और मान लीलाओं में विकसित होता हुआ अवतार समाप्ति के समय श्रीकृष्ण व्रज गमन प्रसंग में दोनों के परम मिलन में परमावस्था को प्राप्त हुआ है।

गोपियों के मधुर अनुराग के आलम्बन तो कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए कात्यायनी देवी का व्रत धारण प्रसंग से होता है—

"नीराजन करि टीक लगावै, माँगहिं सो माधव वर पावै।
जय जय जय कात्यायनि माता, विधु वदनी अति उज्वल गाता।।
मातु हरहु सब बाधा हमारी। मिलहिं नन्द सुत वर सुखकारी।।"
(श्रीकृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-9।)

राधावल्लभ रूप हमें अलौकिक गोलोक प्रसंग से आरंभ होता दिखाई पड़ता है। कृष्ण से ही राधा प्रकट हुई फिर कृष्ण को पाने तप करने लगी। मुनिजन उसे समझाते हैं—"यह आसान बात नहीं। ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी दुर्लभ है कृष्ण दर्शन।" तब राधा कहती है —"अपनी बातें अपने

पास रहिए। मुनिजन। मैं तो श्यामघन कृष्ण भगवान से प्रेम की भक्ति भीख माँगरही हूँ। उसी कृपालु पर मेरा मन लग गया। ये प्राण उसी प्रभु को वरण करेंगे।]।67]

बाद में कृष्ण प्रसन्न होकर प्रकट हुए। ब्रह्मा उसी समय वहाँ प्रकट हुए। उस गोलोक में दोनों का विवाह हुआ। राधा और कृष्ण भूलोक में अवतरित हुए। जब गर्गाचार्य "रावल" ग्राम पहुँचे। तब उन्होंने वृषभानु महाराज से यही बात कही ---- "तुम्हारी पुत्री प्रभु की शक्ति ही है, कृष्ण ही इसके योग्य वर हैं। इन दोनों का विवाह भाण्डीर वन में होगा।"

एक दिन यशोदानंदन वन जाने की जिद्द करके नंद के साथ वन देखने चलता है। वन में आँधी आने लगती है। उसी समय नीलवसन धारण किए विशाल नेत्रवाली गौर वर्णा राधा वहाँ प्रकट होती है। उसे देखकर नंद आनंद विभोर हो जाते हैं। बाद में राधा अपना परिचय देती है। कृष्ण को नंदग्राम तक ले जाने की राधा से नंद प्रार्थना करता है।]।68]

राधा, कृष्ण को भाण्डीर वन ले जाती है। वहाँ चतुरानन प्रकट होकर शास्त्रोक्त रीति में दोनों का विवाह कराता है। अपने चंचल स्वभाव के कारण वे तरह तरह की केलियाँ करते हैं --"कभी राधा कृष्ण पर धूल फेंक कर वेणु छीन लेती है तो कभी कृष्ण राधा के हाथ में शोभायमान पद्म को। कृष्ण कहते हैं ----

"कहा - तब दूँगा मैं यह पद्म
रखोगी वंशी मेरे हाथ।
कहा राधा ने - यह अन्याय
एक अबला पर करते नाथ।"]राधा - पृ-90]

कृष्ण कहते हैं ---"वे अबलाएँ नहीं कहलाती जो पुरुषों के नयनों में धूल झोंककर वेणु छीन लेती है, वे सबलाएँ हैं।§169§ फिर कभी कृष्ण राधा के साथ जल विहार करते हैं। फिर कभी राधा का श्रृंगार स्वयं अपने हाथों से करते हैं।§170§ फिर कभी होली खेलते हैं।§171§

कृष्ण का सुन्दर रूप ही गोपियों के मन में प्रेमभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था, किन्तु उनकी मुरली ने उसे और भी तीव्र कर दिया। जब कृष्ण मुरलीवादन करते हैं तो गोपियाँ बावली सी हो, सामाजिक औचित्य व मर्यादा को भूल कर कृष्ण से मिलने दौड़ पड़ी है----

"बंसी की धुनि पहँ धाई हरि सन लगा नेह।
कंटक कांकर पग धरति हाँफति कांपति देह।।"
पाहन बंक पंक कहुँ पानी। गिरति उठति तउ पीर न जानी।
टीले खन्दक औरि कुल पारा। आई वहाँ जहाँ नन्दकुमारा।।"
§श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-150§

चीरहरण लीला के द्वारा कृष्ण गोपियों की कठोर व्रत साधना को सफल बनाते हैं।§172§

रास लीला में कृष्ण परमानन्दमय होकर गोपियों को स्वर्गीय सुख का अनुभव कराते हैं। रास प्रारम्भ होने से पूर्व मोहन की मुरली बजती है। ध्वनि सुनते ही गोपियाँ "कुलकानि","सुतपति नेह" छोड़कर भागती हैं। शरदकालीन रात्रि में रासलीला प्रारम्भ होती है। तब भगवान श्री कृष्ण अपने अचिन्त्य योग की शक्ति के द्वारा दो - दो गोपियों के मध्य में प्रविष्ट हो गये, प्रत्येक गोपी भगवान को अपने ही पास समझने लगी, महारास आरम्भ हुआ। देवता भी रास दृश्य देखने आए हैं और पुष्पों की वर्षा करते हैं। शारदा, नारद, गंधर्व, मुनिजन रास दृश्य के द्रष्टा बने हुए हैं। शिव गोपी रूप धारण कर नृत्य करने लगे।§173§

इनके पश्चात् कृष्ण चरितमानस के उत्तरकाण्ड के उत्तरार्ध में भगवान के स्वधाम गमन संदर्भ में कृष्ण-राधा का परम मिलन होता है। राधा तथा अन्य गोपियों के साथ कृष्ण की ये लीलाएँ उनके माधुर्यभाव को उत्तरोत्तर परिनिष्ठित करती है और इनमें आनन्द एवं रस के स्रोत कृष्ण, गोपियों को भी आनन्द और रस से आप्लावित करनेवाले, माधुर्य भक्ति के श्रेष्ठतम आलंबन रूप में चित्रित हुए हैं।

इस प्रकार हमें गुप्त जी के गोपीवल्लभ, राधावल्लभ कृष्ण के रसिकेश्वर रूप प्रस्तुत होता है।

लोकरक्षक-दुष्टसंहारक कृष्ण:---

कृष्ण के इस रूप का वर्णन अधिकतर गुप्त जी की दास्य भक्ति के आलंबन के रूप में हुआ। इस भाव के आलंबन रूप में कृष्ण पतितपावन, करुणामय, भक्तवत्सल और भक्तों की रक्षा हेतु दुष्टों का दमन करते हैं। गुप्त जी के कृष्ण स्वयं कहते हैं-----

"सन्तन्ह के दुख सोक निवारन। पापिन्ह दुष्कर्मिन्ह संहारन
अधर्म नासि धरम पुनि थापन। जुग जुग प्रगटहुँ कुन्तीनंदन।।"
[श्रीकृष्ण चरितमानस- गीताकाण्ड, 4/8]

कृष्ण के इस रूप की स्तुति करते हुए गुप्त जी कहते हैं -- भगवान शरणागत वत्सल है। "मगर" के मुँह से गज को बचाया, चीर हरण समय द्रौपदी को वस्त्र देकर उसकी लाज बचायी, नरसिंह रूप में हिरण्यकश्यप को मारकर प्रह्लाद को बचाया। अम्बरीष के हित के लिए दुर्वासा पर चक्र चलाने में भी कृष्ण के इस रूप के दर्शन होते हैं।[74]

भक्तों के आर्त स्वर सुनते ही भगवान तुरन्त उनकी रक्षा करने जाते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें वहाँ मिलता है। जहाँ हंस मुनि की रक्षा करने भगवान महारास करते बीच में गायब हो जाते हैं। फिर प्रकट होकर अदृश्य होने का कारण गोपियों को बताते हैं - समुंदर के बीच में हंसमुनि को एक मछली ने पकड़ा, उसका आर्तस्वर सुनते ही मुझे वहाँ जाना पड़ा। सुदर्शन से उस मत्स्य को मारकर महर्षि को उस विपत्ति से बचाया। फिर कृष्ण कहते हैं ----

"पुकारता भक्त आर्त स्वर में
तुरन्त जाता - कहा उन्होंने।" [राधा, पृ-144]

अपने बाल्यकाल की लीलाओं में भी कृष्ण बीच बीच में कुछ ऐसे कार्य करते जाते हैं, जिनमें वे असुरों के संहारक और भक्तों के रक्षक रूप में दृष्टि-गोचर होते हैं।

पूतना वध, [175] शकटासुर वध [176], तृणावर्त वध[177], बकासुर वध [178], वत्सासुर वध [179], अघासुर वध [180], शंखचूड़ वध [181], धेनुकासुर वध [182] , व्योमकासुर वध [183] आदि ऐसी ही लीलाएँ हैं, जिनमें उनके इस रूप का प्राकट्य हुआ है।

राक्षसों के इन वधों के अतिरिक्त कालीय - दमन लीला में भी श्रीकृष्ण का यही रूप उपस्थित होता है। वे गोवर्धन धारण कर, इन्द्र के कोप से ब्रज वासियों को बचाकर रक्षा करते हैं।[184]

मथुरा जाकर कृष्ण अत्याचारी अधर्मी कंस का वध कर मथुरावासियों को दु:ख से परित्राण करते हैं। [185]

द्वारिका में कृष्ण के प्रभुता पूर्ण रूप के दर्शन होते हैं। वह अपनी दण्ड शक्ति के द्वारा धर्म की और समाज व्यवस्था की रक्षा करते हैं। शिशुपाल {186}, शाल्व{187}, दंतवक्र {188} आदि का दमन करते हैं।

भौमकासुर का वध करके कृष्ण देवताओं की रक्षा करते हैं और उनके कैद से सोलह सहस्र सुन्दरियों को एक साथ मुक्त कराते हैं।{189}

ऊपर बताये गये उन उद्धरणों से गुप्त जी के कृष्ण का लोक रक्षक रूप स्पष्ट विदित होता है। सामान्यतः हिन्दी के प्राचीन और अर्वाचीन कृष्ण काव्यों में श्री कृष्ण का रसिकेश्वर का रूप ही मिलता है। गुप्त जी ने विशेष रूप से श्री कृष्ण के लोकरंजन रूप के साथ लोकरक्षक रूप का वर्णन कर हिन्दी काव्य को महिमा - मण्डित कर दिया।

चरित नायक के रूप में श्री कृष्ण :---

गुप्त जी के कृष्ण की विलक्षणता यह है कि वे ईश्वर होते हुए भी पूर्ण मानव हैं। बल्कि उनमें मानवीयता का आरोप इतना प्रबल है कि अति प्राकृत रूप ढक सा जाता है। वे ब्रह्म हैं, किन्तु गुप्त जी ने उनके स्वाभाविक रूप का चित्रण किया। यशोदा, नंद और ब्रज के अन्य वृद्ध, नर-नारी उन्हें निरन्तर अपने पुत्र और भोले भाले बाल रूप में ही देखते हैं ---

"जसुमति मानत बालक अपनो
पूरन ब्रह्म पूत सम परस्यो
ताके छिन नहिं सपने ।।" {स्याम सतक,पद-36}

गोप बालकों के लिए वे सदैव एक प्रिय सखा हैं तथा किशोरी गोपियाँ उन्हें अपने प्रिय के रूप में ही देखती हैं। इस रूप में कृष्ण की दूसरी विशेषता है उनका समाज-सुधारक रूप। कृष्ण जानते हैं --- समाज का भविष्य

हृष्ट-पुष्ट जनता पर ही निर्भर है। इसलिए पहले जनता को स्वस्थ बनाना चाहिए ताकि वे अत्याचारों के विरोध में लड़ने समर्थ हो जाए। इसलिए दूध - दही की आवश्यकता है। लेकिन गोपीजन दूध दही को मथुरा लेकर बेचा करती थीं। कृष्ण इस प्रथा का विरोध करते हैं और उनको सचेत करते हैं----

"बोले - दूध दही नवनीता। बेचहुकरि निज जन पद रीता।
धनपति अल्प मूल्य पहँ लहहीं। हम स्वादहुँ सन वंचित रहहीं।।
इत अभाव रहि जनपद माहीं। श्रम करि लाभउ पावहिं नाहीं।
जो नहिं बेचहु मथुरा जाइ। तौ रहिं सुखी समृद्धि पाई।।
हुइ है किंचि नहीं दुख - भाना। हित अभाव इत संपति नाना।।
बहु बाढ़ि हहि पुनि शक्ति हमारी। प्रबल होइ नहिं अत्याचारी।।"

(श्री कृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-135)

इस रूप में कृष्ण की तीसरी विशेषता है - उनका देशभक्त रूप। मथुरा कृष्ण की जन्म भूमि है। उस पुण्य भूमि को कंस जैसे दुष्ट राजा के चंगुल से छुड़ाने हेतु कंस वध करता है और उग्रसेन को राजा बनाकर उनसे देश रक्षा हेतु धर्मराज्य की स्थापना होने तक वहाँ रहने का वादा करता है---

"बैठिअ आपु राज सिंहासन। हम सब भाँति चलावहिं शासन
रहहिं सहाइ करहिं तव काजू। सब विधि होइ धर्म का राजू।।"

(श्री कृष्णचरितमानस-मथुराकाण्ड,पद-51)

जब उद्धव के द्वारा कृष्ण ब्रजवासियों को संदेश भेजता है। तब जन्मभूमि हित रण करनेवालों को यह संदेश भेजता है----

"सुई नोक परिमान भूमि हू
प्रान रहे न गमाइयो।।" (स्याम सतक,पद-84)

एक जगह पर वे पार्थ से भी कहते हैं।----

"दीजौ रिन है-देश जाति को, सोउ होइ चुकानौ।।
मारि रहे तोइ सत्रु बावरे, तू धौं नहि जानौ।।"
[श्याम सतक, पद-98]

इससे कृष्ण काव्य में राष्ट्रीयता की भावना प्रस्फुटित होती है।

गुप्त जी के कृष्ण की और एक विशेषता है -- उनकी अनासक्ति। स्वयं आप्त काम, पूर्णकाम होने पर भी लोक संग्रह के लिए आदर्श शुभकार्य किया करते थे। वे सदा निष्काम थे। श्री कृष्ण के वीतरागत्व की व्यंजना उनके अनासक्त कर्मों में विशेष रूप से प्रकट होती है। जैसे कंस वध के बाद उग्रसेन को राजा बनाकर, स्वयं राज्यपद को ठुकराता है और हस्तिनापुर में दुर्योधन के वैभवपूर्ण आतिथ्य को ठुकराकर विदुर के यहाँ भोजन करता है और कहता है ----

"मैं केवल भावन का भूखा। नाहि अरुचिकर रूखा सूखा।"
[श्री कृष्णचरितमानस-इन्द्रप्रस्थकाण्ड,पद-124]

गुप्त जी के कृष्ण की और एक विशेषता है---"दीनजनोद्धारक रूप। यह रूप हमें हंसमुनि प्रसंग [190], कुब्जा प्रसंग [191], सुदामा प्रसंग[192], आदि में स्पष्ट होता है।

कृष्ण प्रतापी योद्धा क्यों न हो, उनके लिए "राजा कृष्ण" का संबोधन सुनना कर्णमधुर नहीं लगता। कृष्ण सम्राटों के अधिपति थे, किन्तु वे थे जनता के ही प्यारे। बालपन उनका ग्वालों में बीता। बड़े होकर वे अर्जुन के सारथी बने। उन्होंने एक ओर इन्द्र के गर्व का हरण किया तो दूसरी ओर ब्रह्मा के ज्ञान गर्व का शमन किया। परन्तु वे अन्त तक गोपबंधु ही बने रहे। गोपीवल्लभ नाम पाया। सुदामा के तन्दुल, विदुर के घर की

भाभी के पत्ते और द्रौपदी के साधारण आतिथ्य से ही उनका हृदय तृप्त हुआ। आज की परिस्थिति में कौन ऐसा लोकनायक है, जो ऐसा काम करता है और संतुष्ट होता है।

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में कृष्ण के लोकनायक रूप स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता है।

<u>विराट रूप में श्रीकृष्ण</u> :---

निर्गुण ब्रह्म तत्त्व, सगुण ब्रह्म तत्त्व और अवतार रूप के अतिरिक्त गुप्त जी ने कृष्ण के विराट रूप का भी वर्णन किया है। गुप्त जी ने चार प्रसंगों में कृष्ण के इस विराट रूप का वर्णन किया है।

पहला प्रसंग है -- बालक कृष्ण को एक दिन माता यशोदा अपने अंक में बिठाकर दूध पिलाती रही, उस समय कृष्ण ने जैंभाई ली तो उनके मुँह में - आकाश, नक्षत्र, पृथ्वी, वन, उपवन, सागर, रवि, चन्द्र, स्वर्ग, नरक, मानव, दानव, यक्ष, राक्षस, गंधर्व व समस्त सृष्टि दिखाई पड़ी। यशोदा इस दृश्य को देखकर भयभीत हो जाती है।

फिर एक बार कृष्ण माटी खाता तो यशोदा उसके मुँह खुलवाकर देखती है तो समस्त ब्रह्माण्ड के दर्शन होते हैं।§193§

तीसरा प्रसंग है -- कुरुक्षेत्र संग्राम के आरम्भ में कृष्ण अर्जुन को अपना विराट रूप दिखाता है।§194§

चौथा प्रसंग है --"मार्कण्डेय चरित्र" प्रसंग। एक दिन कृष्ण ने प्रसन्न होकर मार्कण्डेय से वर माँगने को कहा, तो उसने प्रभु की माया को देखना चाहा। प्रभु "तथास्तु" कहकर अदृश्य हुए। एक दिन मुनि ध्यान में था,

आँखें खोलकर देखा तो सारी सृष्टि नष्ट हुई। प्रलय ही हुआ। चारों ओर अंधेरा छा गया। उस समय---

"तहँ वट पर्णपुटक इक देखा। दमकहि सो जिमि विद्युल्लेखा।
ठहरि न दीठि मीडि पुनि लोचन। लोचत लखि सिसु अद्भुत रोचन।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-213]

और उस बालक में

"देखउ शिशु उदर मँझारी। नभ महि दिसा द्वीप गिरि सारी।
नगर ग्राम वन आश्रम जेते, सर सरितादि लखे सब तेते।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-214]

इस प्रकार कृष्ण का विराट स्वरूप हमें इन प्रसंगों में दिखाई देता है।

<u>चतुर्भुज स्वरूप में श्री कृष्ण</u> :-----

वैष्णव आस्था के अनुसार गुप्त जी अपने आराध्य के चतुर्भुज स्वरूप का भी प्रतिपादन करते हैं।

भगवान जन्म लेते हैं इसी रूप में। इस रूप को देखकर वसुदेव देवकी चकित होते हैं ---

"कीन्ही कुसुम वृष्टि सुरवृन्दा। प्रगटे तब प्रभु परमानंदा।।
सरसिरुज सम लोचन अभिरामा। चार भुजा सुन्दर तनु श्यामा।।
प्रति भुज सोहहिं जन मन हारी। संख चक्र पंकज गदधारी।।
भृगु पद चिन्ह रहा उर माँही। अजहुँ सो नाथ बिसारेउ नाँही।।
कौस्तुभ मनिमय माल सुहाई। पीताम्बर कोमल सुखदाई।।
[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरण काण्ड, पद-118]

फिर कुरुक्षेत्र में जब अर्जुन कृष्ण के विराट रूप में संदर्शन करने के उपरांत चतुर्भुज रूप धारण करने की प्रार्थना करता है तो कृष्ण अपना चतुर्भुज रूप दिखाते हैं।।95।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि किसी की काव्य प्रतिभा ने कभी भी जिन उदात्त गुणों की कल्पना की होगी, कदाचित् उनका एक आदरणीय रूप हमें कृष्ण के चरित्र में समाहित मिलता है। उनका भव्य शारीरिक गठन, अप्रतिम सौन्दर्य, इससे भी प्रभावोत्पादक उनकी दृढ़ता, कुशलता, पावन हृदय, उनका दृढ़ विश्वास, गम्भीरता, धीरता, वीरता और दानशीलता भी अपने उदात्त रूप में प्रकट हुए।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि गुप्त जी के आराध्य कृष्ण परब्रह्म हैं। उन्हें सैद्धांतिक रूप से अपने आराध्य के निर्गुण तथा अन्य रूपों का ज्ञान है, किन्तु भक्त होने के कारण उनके उपास्य सगुण, साकार, भगवान हैं। गुप्त जी को भगवान के मर्यादा पुरुषोत्तम और पुष्टि पुरुषोत्तम दोनों रूप स्वीकार्य हैं। किन्तु उनके संसेव्य केवल -"रसेश पुरुषोत्तम" है।

इस प्रकार दाऊदयाल गुप्त जी के कृष्ण न केवल निर्गुण ब्रह्म है अपितु सगुण भगवान अथवा रसेश पुष्टि पुरुषोत्तम हैं। उनमें तीनों कोटियों का पूर्ण सामंजस्य प्राप्त होता है। वे एक साथ ही पूर्ण आराध्य, लोक रक्षक, लोक रंजक तथा उदात्तम नायक हैं।

राधा-कृष्ण में अभेद :---

श्रीराधा- कृष्ण अभेद रूप से एक ही स्वरूप, एक ही आत्मा है। केवल लीलारस के आस्वादन के लिए दो रूप धारण करते हैं। रमण के लिए दो की अपेक्षा रहती है। इसलिए भगवान ने ये दो रूप धारण कर लिए---

श्रीकृष्ण तथा राधा। राधा पूर्णशक्ति है और कृष्ण पूर्ण शक्तिमान है। दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। राधोपनिषद के अनुसार-- "येयं राधायश्च कृष्णे रसाब्धि देहैनेक: क्रीडनार्थ द्विधाभूत।" अर्थात् रस सागर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही क्रीडा के लिए एक से दो रूपों में विभक्त हो गये हैं। ‖96‖

गुप्त जी भी इसी धारणा को अपनाते हुए कहते हैं -----

"रस सागर श्रीकृष्ण ने, लीला हेतु ललाम।
धरे रूप दो नारि-नर,राधा सुन्दर स्याम।।
राधा-सुन्दर-स्याम अर्ध नारीस्वर रूपा
एक ब्रह्म दो देह, द्वैत - अद्वैत अनूपा।।
जानि नन्दसुत लाल, लली वृषभानुकुमारी।
भास्यौ रँग सहस, समाधि जिन सन्तन धारी।।"

‖स्याम संदेसौ ;पृ-17‖

श्री दाऊदयाल जी की राधा कृष्ण से पृथक नहीं। गुप्त जी कहते हैं--"हे प्रभु! गोलोक स्वामी यदि आप हैं तो राधा आदि माया है। यदि आप पूर्णभगवान नारायण के रूप है तो राधा साक्षात् लक्ष्मी ही है। जब आप रघुकुल के तिलक राम थे। तब राधा आपकी गुणखान सीता थी। आप जगत का सृजन कर रहे हैं तो राधा जगत के बन्धनों से मुक्त करनेवाली होती है।‖97‖ गुप्त जी के कृष्ण भी स्वधाम-गमन सन्दर्भ में यही विषय राधा को याद दिलाते हैं।‖98‖

राधा और कृष्ण के दो देह होते हुए भी प्राण एक है।‖99‖ वे अमर, अज,व्यापक, अनल, सगुण तथा निर्गुण हैं।

"अजर अज व्यापक और अनीह
सगुण-निर्गुण दोनों गुणधाम
कृष्ण - राधा जब होते एक
पूर्ण बन जाते राधे श्याम।।" {राधा-पृ:79}

राधा आदिशक्ति है और अवतार के रूप में उनका जन्म वृन्दावन में रावल ग्राम में हुआ है।{200} राधा को जब यह ज्ञात होता है कि प्रभु पृथ्वी का भार हरने के लिए जा रहे हैं वह तब उनसे कहती है कि मैं अकेली कैसे रहूँगी। कृष्ण कहते हैं कि तुम मेरे साथ ही अवतार लेकर पृथ्वी पर राधिका के रूप में साकार होगी।{201} भादों मास की अष्टमी की रात्रि के ढलने पर वृषभानु के घर सबको सुखदायक राधा का जन्म हुआ।{202} एक दिन गर्गाचार्य वृषभानु के मंदिर आते हैं तब वह वृषभानु को राधा-कृष्ण का अभेद तत्व को समझाते हैं ---

"सुता साक्षात् प्रकृति का रूप
रही जो परम पुरुष के साथ।
कृष्ण ही इसके जीवन-प्राण।
वरेंगे इसे वही व्रजनाथ।।{राधा,पृ-70}

श्रीकृष्ण चरितमानस के प्रथमकाण्ड में ही शुकमहामुनि परीक्षित को "कृष्ण चरित" सुनाते समय पहले पहल राधा-कृष्ण के अभेद स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं।{203}

राधा-कृष्ण की तद् रूपता एवं अभिन्नता स्कंदपुराण एवं देवी भागवत जैसे ग्रन्थ भी मानते हैं-----

"आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम तथा प्राज्ञ: प्रोच्यते गूढ वेदिभि:।।"
{स्कन्दपुराण,भागवत माहात्म्य श्लो:1/22}

देवी भागवत् में कहा गया है कि ----

"राधा-रूप - धरं कृष्णं, कृष्ण-रूपं कलत्रकम्।
किं स्त्री-रूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुम क्षमत्।।"
(देवीभागवत्-नवमस्कन्ध, श्लो:13/105)

राधा कृष्ण को अनन्य भाव से प्रेम करती है। कृष्ण का संयोग - सुख उनको संयोग श्रृंगार की ओर उन्मुख करता है और कृष्ण का वियोग, वियोग श्रृंगार की ओर। राधा, कृष्ण के वियोग को अपने अंगों का आभूषण बना लेती है। वह पलभर के लिए कृष्ण से पृथक नहीं रहना चाहती। किन्तु जहाँ राधा के मन में गर्व की भावना जागृत हो जाती, उनको वियोग दु:ख सहना पड़ता है। रसिक शिरोमणि कृष्ण उनको तड़पाकर चले जाते हैं, इससे उनके चेतन मन में विरह जन्य दु:ख का संचार हो जाता है।(204) मानसिक क्षुब्धावस्था में विकल राधा का मन स्थिर नहीं रहता। उनकी मनश्चेतना भ्रमित होकर नंद-नंदन को ढूंढती है। कृष्ण को कातर स्वर में पुकारती हुई प्रार्थना करती है।

"मुझे बताओ न। श्याम सुन्दर
विसार कर क्यों चले गये हो?
हता प्रभो! आज दोष क्या है
न साथ लो नाथ! ले गये हो?" (राधा- पृ:137)

वह उन्मादिनी, आत्मग्लानि से द्रवित होकर सखियों से अपनी मानसिक वेदना को सुनाती है----

"बिना श्याम सुन्दर के लगता
सूना यह सारा संसार।।
पार लगाये कौन इसे, यह--
जीवन-नैया है मझ धार।।" (राधा-पृ:193)

वह शोक विह्वल होकर अवनी पर गिर पड़ती है और नयनों से अश्रुधारा बहने लगती है। वह आशा-निराशा के मध्य भटकती हुई कृष्ण से याचना करती है--मुझे शरण में ले लो। आखिर भगवान श्यामसुन्दर प्रकट होकर उससे मिलते हैं। राधा- कृष्ण के मिलन से अपूर्व आनंद की वर्षा होती है। रास नृत्य, जल क्रीडा और केलि विहार कर कृष्ण, राधा के वेदना- श्रम को शांत करते हैं। राधा कृष्ण का मिलन उनकी अभिन्नता का द्योतक है।

राधा को बिना पूछे कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। प्रेम की उत्कृष्टता के कारण राधा का विरह जन्य दुख असहनीय हो जाता है। वह कृष्ण की स्मृति में घुली जाती है। विरह में इतनी व्याकुल हो जाती है कि वृक्षों एवं लताओं से कृष्ण का पता पूछती फिरती है-----

"ऐरे निठुर! यहरी बन को बन्यौ है
तुई बताइ अब पीय किधौ हमारे?" [महारास,पृ-57]

कृष्ण संदेश लेकर उद्धव ब्रज पहुँचता है। उद्धव ने राधा को निरंतर "माधव-माधव" रटते देखा है। निठुर, नीरस एवं तार्किक उद्धव भी ब्रज में सबसे राधा के विरह से प्रभावित होते हैं। राधा की अनन्य भक्ति पर मुग्ध हो जाते है और उससे राधा कृष्ण के अभेद तत्व का बोध होता है। तब राधा का गुण गान करते हुए आप कहते है ----

"सदा संग गोलोक - स्वामिनी हरि की प्यारी।
सोई राधा आइ भई वृषभानु दुलारी।।
प्रान एक-नहिं भेद तऊ दो देह दिखावै।।"
नित्य निकुंज विहार"नेति" ज्ञानी मुनि गावै।
राधा भव व्याधा हरनि तरनि ,रूप ललाम।।
शरनी जननी जगत की, करनी पूरन काम।,नमन सौ बार है।।"
[स्याम संदेसौ,पृ-72]

जब उद्धव मथुरा में कृष्ण से मिला, तब कृष्ण भी उद्धव को समझाते हुए कहते हैं ----

"कहहुँ रहस्य चित्त एहि धरहू। स्यामा-स्याम भेद जनि करहू।।
एहि प्रकार गोपीजन जेतीं। स्यामा अंशभूत सो तेती।।
सकल अभेद न अन्तर कोऊ। जानहु मीत रूप मम सोऊ।।"
§श्रीकृष्णचरितमानस-मथुराकाण्ड,पद-141§

आखिर भगवान "स्वधाम गमन" के समय राधा के पास आकर अपनी अभिन्नता की याद दिलाकर अपने साथ गोलोक ले जाते हैं।§205§

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राधा-कृष्ण का प्रेम अनन्य, एक निष्ठ आत्मप्रेम है, यह भगवान की दिव्य लीला है, जो भूतल पर भी अवतरित हो जाती है। लौकिक शृंगार भाव की दृष्टि से इसे समझा नहीं जा सकता, क्योंकि श्रीराधा न स्वकीया है, न परकीया। वे तो भगवान श्रीकृष्ण की ही अभिन्न स्वरूपा है।

इसीलिए "सम्मोहन तंत्र" में कहा गया है कि राधा के बिना कृष्ण का, कृष्ण के बिना राधा का जप करना पाप है ----

"जपेद्राधा, ध्यायतेवा पातकी शिवे।
तस्माज्ज्योतिर श्रुते राधा माधव स्वकम्।।"

"नारद पांचरात्र" में स्वयं भगवान कृष्ण कहते है ----

"सत्यं सत्यं पुन: सत्यं सत्यमेव पुन: पुन:।
राधा नाम्ना विनालोके मत्प्रसादो न विद्यते।।"

इसका अर्थ है -- यही सच्ची बात बार-बार कह रहा हूँ कि राधा नाम के उच्चारण के बिना मेरा अनुग्रह पाना असंभव है।

गुप्त जी के कृष्ण भी अर्जुन से राधा का ध्यान करने का उपदेश देते हैं ---"जिस शक्ति को शारदा,उमा, रमा, ब्रह्मानी, दुर्गा आदि नामों से पुकारते हैं, वही शक्ति स्वरूपा है राधा। वह सदा मेरे हृदय में विद्यमान है। [206]

इस प्रकार ऊपर बताये गये उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राधा कृष्णांग संभूता, कृष्ण प्राणाधिका देवी, कृष्ण प्रेममयी शक्ति ही नहीं बल्कि कृष्ण से अभिन्न है।

इस प्रकार दाऊदयाल गुप्त जी ने अपने काव्यों में शैव, शाक्त, वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत विविध देवी-देवताओं को दर्शाया। इनके अलावा गुप्त जी ने अन्य देवताओं के प्रति भी श्रद्धा एवं भक्ति प्रकट की जो इस प्रकार है ----

<u>सूर्यभगवान</u> :----

गुप्त जी काव्य में भगवान सूर्य का भी स्तोत्र किया है। "आदित्य हृदय" में भगवान सूर्य की स्तुति भुवनेश्वर के रूप में की गयी है-----

> "रश्मिमन्तम् समुद्यन्तम् देवासुर नमस्कृतम्।
> पूजयस्व विवस्वन्तम् भास्करम् भुवनेश्वरम्।।"
> [आदित्यहृदयम् - श्लो॰6]

एक जगह पर कपीस अपनी पत्नी अंजना देवी को सूर्य भगवान के बारे में कहते हैं --

> "कहि कपीस सुनु नारी सुजाना। रवि सम नहिं कोउ ज्ञान निधान
> विद्या क्वन होइ जग माहीं। रविमर्म जेहिं जानहिं नाहीं।
> "निगमागम" जेते विद्ध जाने। सो सबही दिननाथ बखाने।।"
> [हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड,पद-29]

भगवान सूर्य सदा लोकहित में लगे रहते हैं। एक जगह पर गुप्त जी के सूर्य स्वयं कहते हैं ----

"भूख प्यास निद्रा सब त्यागी। रहहुँ सतर्क लोकहित लागी।।"
[हनुमच्चरितमानस-बालकाण्ड,पद-33]

गणेश :---

गुप्त जी के काव्य में गणेश की विधिवत् पूजा का उल्लेख नहीं है। लेकिन उनकी स्तुति की गयी है। गुप्त जी कहते हैं - गिरिजा सुत गणेश सिद्धि-बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। समस्त विघ्नों को नाश करनेवाला, दु:ख त्राता है वेद-ज्ञाता हैं।[207] अपार बुद्धिशाली, सर्वसार, चारु, जगदाधार वही है। गुप्त जी बड़ी तन्मयता से गणेश जी की प्रार्थना करते हैं---

"भूरि शुण्ड सुतुण्ड काय,प्रचण्ड बुद्धि अपार है,
सर्वसार विहार मोदक,चारु जगदाधार है!
मूषकारोहक सुबोधक सर्वगति रति सूक्ष्मतर।।
जय गणेश्वर! ब्रह्म अक्षर,श्रेष्ठ सुन्दर सुर प्रवर।
नाथ! इस उर में उभरते वन्दना के दिव्य स्वर।।"
[महाशक्ति दुर्गा-पृ:9]

हनुमान :---

तुलसी की दृष्टि में राम से अधिक उनके भक्तों का आदर सत्कार व भक्ति करनी चाहिए क्योंकि भक्त अधिक शक्तिशाली होता है।

"तुलसी रामहुँ ते अधिक राम भक्त जिय जानि।।"
[तुलसी ग्रन्थावली-द्वितीय खण्ड[दोहावली]पृ-94]

शायद इसीलिए दाऊदयाल गुप्त जी अपने काव्य में राम से बढ़कर हनुमान को प्रधानता देते हैं। वे भगवान रामचन्द्र पर कोई पुस्तक नहीं लिखी। लेकिन उन्होंने हनुमान को नायक बनाकर हनुमच्चरितमानस का सृजन किया।

तुलसीदास ने भी भगवान राम से बढ़कर हनुमान जी की महत्ता को प्रतिपादन करते हैं --- श्रीराम ने तो दूसरी तरफ जाने के लिए समुद्र पर पुल बांधा था, जबकि हनुमान लाँघकर ही पार कर गये ----

"साहब से सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान।।"
[तुलसी ग्रन्थावली, द्वितीयखण्ड [दोहावली], पृ.-124]

ईश्वर रूपा हनुमंता :-------

वायु पुराण में स्पष्ट कहा गया है--पवन पिता के द्वारा अंजनी माता के गर्भ से भगवान शंकर ही सत्य विक्रम हनुमान जी के रूप में उत्पन्न हुए---

"अंजनी गर्भ सम्भूतो हनुमान् पवनात्मज:
यदा जातो महादेवो हनुमान् सत्य विक्रम:" [वायुपुराण]

गुप्त जी ने भी अपने काव्य में हनुमान को ईश्वर रूप में ही वर्णन किया।

जब दुष्ट शिक्षा, शिष्ट रक्षणार्थ भगवान विष्णु ने राम रूप में प्रकट होने की बात कहकर ब्रह्म, शिव, देवादि गणों को अपने - अपने अंश से कपि रूप में प्रकट होने की आज्ञा दी। [208] तब भगवान शंकर हनुमान के रूप में प्रकट होने की बात पार्वती से कहते हैं ---

"मोर अंस प्रभु संग जग रहही। प्रनिन्ह पाप ताप सब दहही।
राम दूत कपि रूप उदारा। दास्य भाव उर भगति अपारा।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवतरण काण्ड,पद-15]

जब अंजनादेवी ने पुत्र प्राप्ति के लिए भगवान शंकर से प्रार्थना की, तब शंकर ने उन्हें अभय प्रदान किया---

"ग्यारह इन्द्र अंस मम जोई। अंतिम प्रगटि पूत तव होई।
सुन्दरी मो सम सर्व प्रकारा। रहहि अमर सोइ सुवन तुम्हारा।।"
[हनुमच्चरित मानस-अवतरण काण्ड,पद-4]

एक जगह पर सीता हनुमान में शंकर का दर्शन करती है और शंकर और हनुमान में इस अभेद तत्व को जानती है ---

"चकित भई कपि रूप निहारी। भोजन करत स्वयं त्रिपुरारी।
कहउ कीस कहु संकर रूपा। जानी सीय रहस्य अनूपा।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-29]

मंदोदरि भी अपने पति रावण को समझाती है कि --"राम सामान्य मानव नहीं है। तीनों लोकों के पति परब्रह्म ही है, लक्ष्मण शेष का अवतार का है, पवनकुमार साक्षात् परमेश्वर ही है।"[209]

ऊपर बताये गये उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हनुमान शिवांश सम्भूत है और शिव रूप है।

<u>शक्ति रूप हनुमंत :---</u>

दाऊदयाल गुप्त जी ने हनुमान को जगदम्बा के रूप में, महानशक्ति के रूप में भी दर्शाया। जगदंबा रूप में हनुमान का वर्णन हमें अहिरावन प्रसंग में दिखाई देता है।

अहिरावन राम और लक्ष्मण का अपहरण कर पाताल लोक ले जाता है। तब हनुमान उनकी [राम-लक्ष्मण] रक्षा हेतु वहाँ जगदम्बा रूप में प्रकट होते हैं। अहिरावण उसे जगदंबा ही समझकर पूजा करते हैं।[210] लक्ष्मण उस रूप को देखकर चकित होते हैं। तब राम उसे समझाते हैं ---
हनुमान जगदंबा ही है। वही सर्वत्र है। सर्व रूप उन्हीं के हैं ---

कहे राम सोचु मन माहीं। कवन थान जहँ हनुमत नाहीं
तरु गिरिवर सर मंदिर जोऊ। हनुमत रूप कुंड एहि सोऊ
हमरे रक्षण हेतु तुरंता। जगदम्बा हुइ है हनुमंता
हे भ्राता एहि देवी जोई। देखु अंजनी नन्दन सोई।।"

[हनुमच्चरित मानस-युद्धकाण्ड,पद-50]

<u>दुष्टसंहारक हनुमान</u> :---

दाऊदयाल गुप्त जी ने हनुमान के इस रूप का मनोहरता पूर्वक वर्णन किया है।

लंकेश्वरी वध [211], जम्बुमालि वध [212], अक्षयकुमार वध[213], कालनेमी वध [214], अहिरावण वध [215] आदि प्रसंगों में हमें हनुमान का यही रूप स्पष्ट दिखाई देता है।

युद्ध भूमि में भयंकर पंचमुख रूप में प्रकट होकर शत्रुओं को भयकंपित करनेवाले हनुमान को देखकर रावण भी चकित होते हैं----

"एहि पंचमुख दस हाथ सुन्दर वीर वर कीहन्ह प्रखर
खटवांग खग त्रिसूल अंकुस पास धरि पर्वत सिखर
पाषान क भल्लसंभ द्रुम मुष्टिक गदा आयुध सुकर
एहि रूप रिपुन्ह भयावना सन्तन्ह वरद आनंदकर

सोचत भय विह्वल हिलत, धीका कंपित दससीसा।
धारन स्तम्भ सुदृढ़ अस, को दृढ़ है रहि बीस।।"
[हनुमच्चरित मानस-युद्धकाण्ड, पद-12]

<u>विराट रूप :---</u>

गुप्त जी के काव्य में हनुमान जी का विराट रूप हमें मुख्यतया तीन जगहों में दिखाई देता है ---

प्रथमतया जब हनुमान लंका में जाकर सीता से मिलते हैं, सीता हनुमत्शक्ति पर शंका प्रकट करती है तो तब वह अपना विराट स्वरूप दिखाता है।[216]

फिर युद्धभूमि पर शत्रुओं को नाश करने हेतु पंचमुख रूप धारण कर रावण जैसे महावीर को भी भय विह्वल बना देता है। यहाँ हमें हनुमान जी का यही रूप स्पष्ट गोचर होता है।[217]

फिर एक जगह पर भीमसेन को अपना विराट रूप दिखाते हैं। गुप्त जी ने हनुमान जी का इस भव्य दिव्य रूप को तन्मयता पूर्वक वर्णन किया----

"जैस साम सेनी गहन, ता पहुँ रहि सिरभानु।
कानन कुण्डल माल गल, शैव सुदिव्य महान।।
दाढ़ कराल भौंह दोउ बंका। अद्भुत हनु मुख भाव असंका
कान वृहद अनुपातित नासा। मुख मंडल अति तेज प्रकासा
दच्छिन कर वर गदा सँभारी। जिमि गिरि धारि कुपित असुरारी।
कंचन दमकि सुमेरु समाना। रवि सम छवि प्रकास महाना।
उस विराट कपि रूप निहारी। भीम विसमित बहु भारी।।"
[हनुमच्चरित मानस-उत्तरकाण्ड, पद-39]

भक्ति का प्रतीक :---

स्वामि भक्तिपरक पात्रों में आत्मसमर्पण के साथ - साथ सर्वस्वार्पण की भावना निहित रहती है। ऐसे पात्र जो भी कार्य करते हैं, वे सब स्व स्वामी के हितार्थ ही करते हैं।{216} उसका प्रमुख उदाहरण हनुमान ही है।

उन्होंने जो भी कार्य किये हैं अपने स्वामी भगवान रामचन्द्र के हितार्थ में किया है। लंका जाने में, जलाने में, वहाँ के असुरों को मारने में, संजीविनी लाकर लक्ष्मण को बचाने में यही भावना हमें दिखाई देती है।

हनुमान भगवान रामचन्द्र के एक निष्ठ भक्त है। उनके लिए माता, पिता, भ्राता सबकुछ वही राम है ---

"माता पिता भ्राता सहृद, नाथ न कोउ आन।
केवल प्रभु सेवा निरत, धन्य धन्य हनुमान।।"
{हनुमच्चरित मानस-उत्तरकाण्ड,पद-63}

इसकी पराकाष्ठा हमें वहाँ दिखाई देती है, जहाँ रामराज्याभिषेक के बाद सीता हनुमान के लिए मोतियों का हार भेंट में देती है। तब हनुमान उसे टुकड़े - टुकड़े करते हैं। विभीषण से कारण पूछे जाने पर वे उत्तर देते हैं ----

"रघुपति बिना वस्तु रहि जोई, तुच्छ है तात निरर्थक सोई।।"
{हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-20}

विभीषण से व्यंग्य किये जाने पर वह अपना वक्षस्थल फाडकर अपने हृदय में विराजमान सीता-राम को प्रकट करते हैं ---

"बिनु विलंब निज वच्छ धरि, दोउ कर पवन कुमार।
चीरि परम नद खोलि हिय, जिमि कपाट दुलि द्वार।।
राज सिंहासन राजि जहँ, सीया सियानिवास।
निकसि राम धुनि अनवरत, रोम रोम प्रतिस्वास।।"
[हनुमच्चरित मानस-अवधकाण्ड, पद-22]

अग्निगर्व भंग [219], चक्र गर्व भंग [220], गरुड़ गर्वभंग [221] आदि प्रसंगों में हमें हनुमान का यही रूप दिखाई देता है।"

इसीलिए गुप्त जी के राम यह उद्घोषणा करते हैं कि हनुमान मेरे परमभक्त हैं, उनके समान और कोई नहीं है, जो साधक उनकी उपासना करते हैं, वह मेरी आराधना ही होती है ---

"हनुमत परम भगत मम होई। एहि समता नहिं करि सक कोई।
जो साधक एहि करहि उपासन। मानु सो होइ मोर आराधन।।"
[हनुमच्चरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-64]

हनुमान का स्मरण करनेमात्र से बुद्धि, बल, यश, धैर्य प्राप्त होकर जीव निर्भय रहते हैं ---

बुद्धिर्बलं यशोधैर्यं, निर्भयत्व मरोगता,
अजाड्यं वाक्पटुत्वं च, हनुमत् स्मरणाद् भवेत।।

गुप्त जी इस प्रकार अपने काव्य में हनुमान के प्रति भक्ति भाव प्रकट कर विनती करते हैं ---

"पवन तनय संकर-सुवन, केसरि अंजनि नन्द।
जय दुख नासन सुखकरन, हरन सदा भव फन्द।।"
[हनुमच्चरित मानस, पृ-339]

इस प्रकार गुप्त जी अपने काव्य के विविध देवी देवताओं के स्वरूप,

इस प्रकार गुप्त जी अपने काव्य में विविध देवी - देवताओं के स्वरूप, तत्वों का वर्णन कर उनके प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट किया है। स्पष्ट होता है कि देवी देवताओं में उनके लिए परम आराध्य भगवान कृष्ण हैं तो आराधिका श्रीराधा हैं।

सन्दर्भ सूची

1.	तुलसी कृत दोहावली में भक्ति तत्व	श्री तारानी शर्मा	पृ-18.
2.	शंकर महाकाव्य	- दाऊदयाल गुप्त	पृ-24.
3.	जय ओंकार	- वही	पृ-11.
4.	वही	- वही	पृ-14.
5.	वही	- वही	पृ-35.
6.	वही	- वही	पृ-84.
7.	वही	- वही	पृ-167.
8.	वही	- वही	पृ-119.
9.	शंकर महाकाव्य	- वही	पृ-20.
10.	वही	- वही	पृ-24.
11.	वही	- वही	पृ-178.
12.	वही	- वही	पृ-85.
13.	जय ओंकार	- वही	पृ-59.
14.	शंकर महाकाव्य	- वही	पृ-227.
15.	शिवपुराण	9/-55-56; 10/6; 10/8.	
16.	श्री कृष्ण चरितमानस	- दाऊदयाल गुप्त " कुरुक्षेत्र काण्ड	पद-160.
17.	शंकर महाकाव्य	- वही	पृ-91,92.
18.	वही	- वही	पृ-23.
19.	वही	- वही	पृ-48.
20.	वही	- वही	पृ-23.
21.	वही	- वही	पृ-103.
22.	वही	- वही	पृ-178.
23.	वही	- वही	पृ-92.
24.	वही	- वही	पृ-85.
25.	वही	- वही	पृ-263.
26.	वही	- वही	पृ-259.

27•	सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्व-डॉ•सीएच•रामुलु			पृ-22•
28•	महाशक्ति दुर्गा	- दाऊदयाल गुप्त		पृ-257•
29•	वही	- वही		पृ-32,92•
30•	वही	- वही		पृ-33,34•
31•	वही	- वही		पृ-16•
32•	वही	- वही		पृ-152•
33•	वही	- वही		पृ-52•
34•	"जय ओंकार"	- वही		पृ-241,242•
35•	वही	- वही		पृ-68•
36•	महाशक्ति दुर्गा	- वही		पृ-38•
37•	देवी महात्म्य	- देवी कवचम्		
38•	श्रीकृष्ण चरितमानस	- दाऊदयाल गुप्त	गीताकाण्ड	पद-33•
39•	वही	- वही	वही	पद-34•
40•	महाशक्ति दुर्गा	- वही		पृ-152•
41•	वही	- वही		पृ-184•
42•	वही	- वही		पृ-250•
43•	श्रीकृष्णचरितमानस	- वही	उत्तरकाण्ड	पृष्ठ-76•
44•	महाशक्ति दुर्गा	- वही		पृ-148•
45•	वही	- वही		पृ-149•
46•	वही	- वही		पृ-164•
47•	वही	- वही		पृ-157•
48•	वही	- वही		पृ-38•
49•	वही	- वही		पृ-164•
50•	वही	- वही		पृ-10•
51•	वही	- वही		पृ-242•

52.	"जयओंकार	- दाऊदयाल गुप्त		पृ-78
53.	महाशक्ति दुर्गा	- वही		पृ-157.
54.	वही	- वही		पृ-236.
55.	वही	- वही		पृ-235.
56.	वही	- वही		पृ-236.
57.	वही	- वही		पृ-33.
58.	शंकर महाकाव्य	- वही		पृ-125.
59.	वही	- वही		पृ-259.
60.	वही	- वही		पृ-242.
61.	वही	- वही		पृ-263.
62.	महाशक्ति दुर्गा	- वही		पृ-192.
63.	जयओंकार	- वही		पृ-177.
64.	हनुमच्चरितमानस	-- वही	सुन्दरकाण्ड	पद-112.
65.	वही	- वही	सेतुबन्धकाण्ड	पद-9.
66.	वही	- वही	अवधकाण्ड	पद-46,47,48.
67.	हिन्दी साहित्य में राधा	- द्वारिकाप्रसाद मीतल		पृ-42.
68.	वही	- वही		पृ-101.
69.	आधुनिक मनोविज्ञान और सूर काव्य-डॉ.कमला आत्रेय			पृ-257.
70.	हिन्दी साहित्य में राधा	- द्वारिका प्रसाद मीतल		पृ-514.
71.	राधा	- दाऊदयाल गुप्त		पृ-3.
72.	श्रीकृष्ण चरितमानस	- वही	अवतरणकाण्ड	पद-6.
73.	राधा	- वही		पृ-34.
74.	श्रीकृष्ण चरितमानस	- वही	मथुराकाण्ड	पद-59.
75.	श्रीराधा माधव चिन्तन	- हनुमानदास पोद्दार		पृ-116.
76.	हिन्दी साहित्य में राधा	- द्वारिकाप्रसाद मीतल		पृ-119.
77.	राधा	- दाऊदयाल गुप्त		पृ-91.

78• राधा - दाऊदयाल गुप्त पृ-92•

79• वही - वही पृ-92•

80• स्याम सतक - वही पृ-52•

81• हिन्दी साहित्य में राधा - द्वारिका प्रसाद मीतल पृ-101•

82• श्रीकृष्ण चरितमानस - दाऊदयाल गुप्त, अवतरणकाण्ड ,पद-66•

83• वही - वही वही पद-69•

84• वही - वही द्वारिका काण्ड,पद-195•

85• वही - वही वही पद-196•

86• सूर काव्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन-डॉ•लालबहादुर श्रीवास्तव,पृ-160•

87• श्रीकृष्ण चरित मानस - दाऊदयाल गुप्त,अवतरणकांड पद-17•

88• वही - वही वही पद-18•

89• राधा - वही पृ-234•

90• वही - वही पृ-237•

91• वही - वही पृ-84•

92• वही - वही पृ-86•

93• वही - वही पृ-52•

94• स्याम सतक - वही पृ-53•

95• सूर और कोतना के काव्य में भक्ति तत्व-डॉ•सीएच•रामुलु, पृ-11•

96• शंकर - दाऊदयाल गुप्त पृ-115•

97• वही - वही पृ-187•

98• वही - वही पृ-188•

99• हनुमच्चरितमानस - वही अवतरण काण्ड पद-61•

100• शंकर - वही पृ-188•

101• वही - वही पृ-189•

102• जयओंकार - वही पृ-107•

103• हनुमच्चरित मानस - वही अवतरणकाण्ड पद-65•

104. हनुमच्चरित मानस	- दाऊदयाल गुप्त,	अवतरणकाण्ड,	पद-66.
105. वही	- वही	वही	पद-69.
106. जयओंकार	- वही		पृ-89.
107. वही	- वही		पृ-93.
108. हनुमच्चरित मानस	- वही	अवतरणकाण्ड	पृष्ठ-31.
109. जयओंकार	- वही		पृ-180.
110. हनुमच्चरित मानस	- वही	,सुन्दर काण्ड	पृष्ठ-111.
111. वही	- वही	बालकाण्ड	पद-49.
112. वही	- वही	ऋष्यमूक काण्ड	पद-32.
113. वही	- वही	सेतुबन्ध काण्ड	पद-11.
114. वही	- वही	युद्धकाण्ड	पद-59.
115. वही	- वही	अवतरणकाण्ड	पद-12.
116. वही	- वही	बालकाण्ड	पद-58.
117. वही	- वही	वही	पद-60,61.
118. वही	- वही	ऋष्यमूक काण्ड	पद-34.
119. वही	- वही	युद्धकाण्ड	पद-63.
120. वही	- वही	बालकाण्ड	पद-63.
121. वही	- वही	सेतुबन्धकाण्ड	पद-19.
122. वही	- वही	युद्धकाण्ड	पद-64.
123. वही	- वही	ऋष्यमूक काण्ड	पद-842.
124. वही	- वही	बालकाण्ड	पद-54.
125. वही	- वही	ऋष्यमूक काण्ड	पद-26.
126. वही	- वही	सुन्दरकाण्ड	पद-122.
127. वही	- वही	वही	पद-123.
128. वही	- वही	बालकाण्ड	पद-28.
129. वही	- वही	वही	पद-55.

130• जयओंकार - दाऊदयाल गुप्त पृ-177•

131• मध्यकालीन भक्त कवियों की ब्रह्म परिकल्पना-प्रेमसागर पृ-85•

132• श्री कृष्ण चरितमानस - दाऊदयाल गुप्त, द्वारिकाकांड, पद-194•

133• वही - वही इन्द्रप्रस्थकाण्ड, पद-26•

134• सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्त्व-डॉ•सी•एच•रामुलु पृ-397•

135• श्री कृष्ण चरितमानस - दाऊदयालगुप्त गीताकाण्ड 8/13•

136• वही - वही कुरुक्षेत्रकाण्ड पद-193•

137• सूर और पोतना के काव्य में भक्ति तत्त्व-डॉ•सी•एच•रामुलु पृ-398;

138• श्री कृष्ण चरित मानस - दाऊदयाल गुप्त, अवतरणकाण्ड पद-26•

139• वही - वही गीताकाण्ड 10/8

140• वही - वही 7/4,8,6,7•

141• श्रीराधामाधवचिंतन - हनुमानदास पोद्दार पृ-456•

142• श्री कृष्ण चरितमानस - दाऊदयाल गुप्त, उत्तरकाण्ड पद-76•

143• वही - वही मथुराकाण्ड पद-51•

144• वही - वही गीताकाण्ड 2/47,48•

145• वही - वही मथुराकाण्ड पद-93•

146• श्याम संदेश - वही पृ-51•

147• श्री कृष्ण चरितमानस - वही गीताकाण्ड 10/17

148• वही - वही गीताकाण्ड 10/20•

149• वही - वही अवतरण काण्ड पद-119•

150• सूर के कृष्ण एक अनुशीलन - श्रीशितवारी पृ-45•

151• श्री कृष्ण चरितमानस - दाऊदयाल गुप्त, अवतरणकाण्ड पद-176•

152• राधा - वही पद-66•

153• वही - वही पद-67

154• श्री कृष्णचरितमानस - वही अवतरणकाण्ड पद-194•

155• वही - वही वही पद-196•

156• श्री कृष्ण चरितमानस	– दाऊदयाल गुप्त	लीलाकाण्ड	पद–211
157• श्याम सतक	– वही		पद–70
158• श्री कृष्ण चरितमानस	– वही	लीलाकाण्ड	पद–53•
159• श्याम सतक	– वही		पद–78•
160• मध्यकालीन भक्त कवियों की प्रेम परिकल्पना– प्रेमसागर			पृ–94•
161• श्री कृष्ण चरितमानस	– दाऊदयाल गुप्त	–लीलाकाण्ड	पद–53•
162• वही	– वही	वही	पद–91•
163• वही	– वही	वही	पद–92•
164• महारास	– वही		पृ–10•
165• सूर के कृष्ण: एक अनुशीलन	– शशितिवारी		पृ–85•
166• महारास	– दाऊदयाल गुप्त		पृ–45•
167• श्री कृष्ण चरितमानस	– वही	अवतरणकाण्ड	पद–18•
168• वही	– वही	लीलाकाण्ड	पद–20•
169• राधा	– वही		पृ–91•
170• वही	– वही		पृ–92•
171• श्याम सतक	– वही		पद–52•
172• श्री कृष्ण चरितमानस	– वही	लीलाकाण्ड	पद–92•
173• वही	– वही	वही	पद–180•
174• श्याम सतक	– वही		पद–22•
175• केशव	– वही		पद–89•
176• श्री कृष्ण चरितमानस	– वही	अवतरणकाण्ड	पद–163•
177• केशव	– वही		पद–93•
178• केशव	– वही		पद–101•
179• श्री कृष्ण चरितमानस	– वही	लीलाकाण्ड	पद–28•
180• वही	– वही	वही	पद–37•

181.	श्री कृष्ण चरितमानस	-	दाऊदयाल गुप्त	,लीलाकाण्ड	पद-187.
182.	वही	-	वही	वही	पद-188.
183.	वही	-	वही	वही	पद-194.
184.	वही	-	वही	वही	पद-124.
185.	श्याम सतक	-	वही		पद-75.
186.	श्री कृष्ण चरितमानस	-	वही	द्वारिका काण्ड,	पद-31.
187.	वही	-	वही	वही	पद-41.
188.	वही	-	वही	वही	पद-41.
189.	श्री कृष्णचरितमानस	-	वही	वही	पद-10.
190.	राधा	-	वही		पृ-144.
191.	केशव	-	वही		पद-154, 155
192.	श्री कृष्ण चरितमानस	-	वही	द्वारिकाकाण्ड	पद-237.
193.	वही	-	वही	अवतरणकाण्ड	पद-181.
194.	वही	-	वही	गीताकाण्ड	11/5.
195.	वही	-	वही	गीताकाण्ड	11/80.
196.	महारास	-	वही		पृ-32.
197.	राधा	-	वही		पृ-85.
198.	श्री कृष्ण चरितमानस	-	वही	उत्तरकाण्ड	पद-132,133.
199.	राधा	-	वही		पृ-79,36.
200.	वही	-	वही		पृ-53.
201.	वही	-	वही		पृ-35.
202.	वही	-	वही		पृ-43,44.
203.	श्री कृष्णचरितमानस	-	वही	अवतरणकाण्ड	पद-13.
204.	राधा	-	वही		पृ-192.
205.	श्री कृष्ण चरितमानस	-	वही	उत्तरकाण्ड	पद-132,133.

206.	श्रीकृष्ण चरितमानस	– दाऊदयाल गुप्त	उत्तरकाण्ड	पद-144
207.	शंकर	– वही		पृ-15.
208.	हनुमच्चरित मानस	– वही	अवतरणकाण्ड	पद-12.
209.	वही	– वही	युद्धकाण्ड	पद-59.
210.	वही	– वही	युद्धकाण्ड	पद-47.
211.	वही	– वही	सुन्दरकाण्ड	पद-46.
212.	वही	– वही	वही	पद-100.
213.	वही	– वही	वही	पद-103.
214.	वही	– वही	युद्धकाण्ड	पद-23.
215.	वही	– वही	वही	पद-55.
216.	वही	– वही	सुन्दरकाण्ड	पद-85.
217.	वही	– वही	युद्धकाण्ड	पद-12.
218.	सूर काव्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	– डॉ०लालबहादुर श्रीवास्तव,		पृ-160.
219.	हनुमच्चरित मानस	– दाऊदयाल गुप्त	उत्तरकाण्ड,	पद-631.
220.	वही	– वही	वही	पद-319.
221.	वही	– वही	वही	पद-318.

****

चतुर्थ अध्याय

दाऊदयाल गुप्त की भक्ति-साधना

चतुर्थ अध्याय

दाऊदयालगुप्त की भक्ति साधना

4.1. इष्टदेव:---

श्री दाऊदयाल गुप्त जी आधुनिक काल के ब्रजभाषा के कृष्णभक्त कवियों में अग्रगण्य हैं। उनका आराध्य भगवान श्री कृष्ण है। भगवान के प्रेम में विह्वल होकर सच्चिदानन्द मूर्ति कृष्ण के द दर्शन का प्यासा होना तथा उसी को साध्य मुक्ति समझना गुप्त जी की भक्ति का मूलाधार है।

सांसारिक विषय वासनाओं की निवृत्ति और परब्रह्म की उपलब्धि के चार मार्ग हुए-- योग मार्ग, ज्ञान मार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग। इन मार्गों में अपनी सुलभता के कारण भक्तिमार्ग को सर्वाधिक श्रेष्ठ तथा ग्राह्य माना गया है। गुप्त जी इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं ----

"जैसे जोग विराग तप, सब महँ भगति प्रधान।।"

[श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-20।]

गुप्त जी कहते हैं -- "इस कलियुग में जप,तप,मख आदि का फल "भक्ति" द्वारा मिलेगा। इस भवसागर पार होने का एक मात्र उपाय भक्ति ही है।[1।]

गुप्त जी ने कृष्ण के अतिरिक्त अनेक देवी-देवताओं का भी वर्णन किया है। वे स्पष्ट शब्दों में अपने मंतव्य को बताते हैं --- "इस दुनिया में सब लोग एक तरह नहीं रहते। इनमें कुछ लोग भगवान शिव का आराधन करते हैं, कुछ विष्णु का, कुछ भगवान रामचन्द्र का, कुछ कृष्ण का, कुछ लोग

देवी का गुण गाते रहते हैं, भक्ति करते हैं। चाहे जो भी हो जिसे पूजते करें। सब उसी का ही गुण गाते हैं। जिसे हम परब्रह्म कहते हैं।"[2] इसीलिए ही गुप्त जी समस्त देवी देवताओं के प्रति भक्ति विश्वास प्रकट करते हैं। किन्तु यह इतना संक्षिप्त और इस बात का परिचायक है कि कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों के वर्णन में गुप्त जी का हृदय योग नहीं देता। गुप्त जी उद्धव के द्वारा कहलाते हैं ---

"सेवत निर्गुण ब्रह्म, सदा सतयुग में ग्यानी।।
त्रेता में भगवान राम की महिमा मानी।।
द्वापर अन्त जसोमति सुत जदुवर भगवन्ता।।
भजन जोग सो सक्ति रूप गुन कर्म अनंता।।
अब आगे द्वापर बिगत, कलियुग आवत जोइ।।
ता महँ अवसर पाए नर, कृष्णभक्ति सो होइ।।
यही साधन सुलभा।।"

[स्याम संदेसौ, पृ-3।]

जो भक्ति सहित अपने आराध्य का गुणगान करते हैं। उसे परमगति प्राप्त होगी। उनके हृदय में भगवान विराजमान रहेगा।[3] गुप्त जी मुख्यतया कृष्ण भक्तकवि होने के कारण कृष्ण को ही परब्रह्म मानते हैं, और कहते हैं यह सम्पत्ति, विभूति, यह विश्व समस्त उसी का है। ज्ञान, मंत्र, उपासना, मत ये सब यही परम पुरुषोत्तम कृष्णप्राप्ति के साधन हैं।[4] अहंकार, काम, क्रोध आदि को छोड़कर जो भगवान कृष्ण का गुणगान करेगा उसे भगवान स्वयं अपनायेगा-----

"सम्मान पाइ महान ते प्रभु ध्यान मँह रति लावहीं।
तजि कोह लोह विमोह निसिदिन कृष्ण के गुन गावहीं।।

संसार भार अपार ताहि बिसारि मगेम जा पहीं।
अति धन्य धन्य सुभक्त सो तेहिं स्वयं प्रभु अपना पहीं।।"
[श्रीकृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-20]

गुप्त जी ने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि इस नश्वर संसार में लिप्त होना ठीक नहीं है। सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाकर भगवान में लीन होना ही उनकी भक्ति का लक्ष्य है।

भक्ति के विविध रूप :---

भक्ति सम्बन्धी विचारों के अतिरिक्त द्वितीय अध्याय में तद्विषयक अनेक अन्य बातों पर विवेचन किया गया है, जिनका निर्वाह गुप्त जी के काव्य साहित्य में हुआ है।

भक्ति के नाना रूपों में नवधा भक्ति प्रसिद्ध है, जिनको गुप्त जी ने स्वीकार किया है और सुन्दर रूप में प्रतिपादन किया है।

गुप्त जी एक भक्त कवि होने के नाते, इनके साहित्य में भक्ति के विविध रूपों का आजाना स्वाभाविक ही है। इनकी भक्ति साधना का सम्यक् विवेचन करने के लिए विवेच्य विषय को इन शीर्षकों में विभक्त करना उपयुक्त प्रतीत होता है --1. वैराग्यपूर्ण भक्ति 2. वैधी भक्ति 3. प्रेम रूपाभक्ति 4. पुष्टिमार्गीय भक्ति 5. अद्वैत मूलक भक्ति।।

वैराग्य पूर्ण भक्ति :---

भक्त के परिपूर्ण हृदय से आत्म समर्पण करने से सांसारिता का दूर होना सम्भव हो जाता है। भक्त के विचारों में वैराग्य अनिवार्य तत्व है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए वैराग्य-भावना आवश्यक है। जब मनुष्य के

मन में यह भाव जाग जाता है तो वह सांसारिक विषयवासनाओं से उदासीन हो जाता है। तभी उसके मन में ईश्वर के प्रति स्नेह उत्पन्न होता है। गुप्त जी कहते हैं कि पुत्र-कलत्र, स्वजन-परजन आदि को परम स्वार्थी, उनसे मिलनेवाले सुख को क्षणभंगुर और गृहस्थ जीवन को कष्ट-दायी बताया गया है ----

"मनवा, झूठी जग की नाती।
माता पिता सुत नारि सजीली
कोऊ काम न आती,
बल वैभव धन भवन सुजस सब
यहीं पड़ी रह जाती।
चित क्यों फिर यादव तेरी भुलाती। "मनवा"

कुटुम कबीले के कारण हित
जो तू पाप कमाती,
"दाऊदयाल" ख्याल रख सो सब
तेरेइ सिर मढ़ जाते।।
रे सुई कंठ में फँदा पाती।। "मनवा"
[स्याम सतक, पृ-13]

प्रभु कृपा बिना मन भटकता रहेगा। मन भटकता रहेगा तो उसे वैराग्य कैसे मिलेगा? इसलिए समस्त विषयों को त्याग करना चाहिए। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि को छोड़कर उस प्रभु का स्मरण करना चाहिए---

"बिन प्रभु - किरपा मन भटका है
उपजै नाँहि विराग।
"दाऊदयाल" करो हरि सुमिरन
तो ही जागैं भाग।।
करो रे मन सब विसयन को त्याग।।" [स्याम सतक, पृष्ठ 16]

संसार के प्रति वैराग्य-भावना को साथ लेकर मनुष्य जिस भक्तिभाव को अपना सकता है, उसमें दो तत्वों की प्रधानता रहती है - निर्वेद और दैन्य। तथा इसी नाते भक्त भगवान के चरणों में प्रीति प्रकट करता है। गुप्त जी के विनय के पदों में एक ओर संसार की असारता, मनुष्य की पतनोन्मुखता और तज्जन्य उसकी दीनता का वर्णन है वहाँ दूसरी ओर भगवान की शरणागत वत्सलता और कारण रहित कृपा के सहारे उनके चरणों के प्रति उत्कट अनुराग भी व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार गुप्त जी के इन पदों में हमें वैराग्यपूर्ण भक्ति का परिचय प्राप्त होता है। भव बन्धन से मुक्त होने के लिए वैराग्य की नितांत आवश्यकता है। वैरागी ही भगवान के सम्मुख आत्मसमर्पण कर सकता है। भक्ति की प्रथम सीढ़ी वैराग्य है। अस्तु गुप्त जी की भक्ति के मूल में वैराग्य भावना है।

शान्ता भक्ति :---

वैराग्यपूर्ण भक्ति के लिए शान्त मन की आवश्यकता होती है। वैराग्य भाव तथा शान्तभाव एक ही कोटि के समझे जाते हैं। शान्त रस का स्थायीभाव निर्वेद है, जो तत्वज्ञान से उत्पन्न होता है। वैराग्य, दैन्य, विनय आदि भावों से प्रेरित होकर गुप्त जी ने जो पद लिखे हैं, उन्हें शान्ता-भक्ति विषयक पद कहा जा सकता है। दास्य और शान्त दोनों के भाव समन्वित होकर आत्मग्लानि पाकर प्रभु से रक्षा के लिए पुकारता है ----

"बिहारी जी मैं आयो हूँ सरन तिहारी।
वृन्दाविपिन सुरम्य सुहायो, सो सब विधि सुखकारी।
प्रभु पूरन साकार सुशोभित, सेवत सब नर नारी।। "बिहारी"

छूटत नाँहि जगत कौ फंदा, मोह जाल अति भारी।।
"दाऊदयाल" भगति तव माँगू, सुन लेउ नाथ हमारी।।"बिहारी"
[स्याम सतक, पद-3]

वैराग्य तथा निर्वेद भावना से प्रेरित होकर गुप्त जी ने अनेक पदों में भगवान की दयालुता, भक्त वत्सलता का वर्णन करते हुए अपनी दीनता, हीनता का परिचय दिया है। दार्शनिक चिन्तन के साथ आप विनती भी प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने भगवान के सर्वव्यापकता के दर्शन किये हैं ----- "हे प्रभु! तुमने "मगर" के मुँह से गज के प्राण बचाये। जब साधुओं ने तुम्हें पुकारा तुरन्त वहाँ जाकर उनका उद्धार किया। नरसिंह रूप धारण कर हिरण्यकश्यप को मारकर प्रह्लाद को बचाया। दुर्वास महामुनि पर "चक्र" प्रयोग कर अम्बरीष को बचाया। हे प्रभु! मेरे कई बार बुलाने पर भी तुम सुनते नहीं।"[5]

संसार के अशाश्वत रूप - रस गंध आदि पर लोगों के लुब्ध मन को गुप्त जी ने फटकारा, भगवान की शरण जाने की चेतावनी दी---

"बिखर जाओगे इक दिन बन्दे, जीवन की रहि लाज।
"दाऊदयाल" जाल जग झूँटो, साँचो राजाधि राज।।"
[स्याम सतक,पद-2]

स्पष्ट है कि गुप्त जी संसार तथा भोगों के प्रति गहरा भाव रखने-वाले हैं। उन्होंने शान्त मन से दत्तचित्त होकर भगवान की शरण ली। इस प्रकार शान्त व वैराग्य भावना से सम्बन्धित पदों में उनकी "शान्त भक्ति" का परिचय प्राप्त होता है।

<u>नवधाभक्ति</u> :---

श्रीमद्भागवत में नवधा भक्ति का विवेचन हुआ है ---

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्।।"
(श्रीमद्भागवत् 7-5-23)

भक्ति के नौ प्रकारों में प्रथम छः कृत्य है और अन्तिम तीन भाव। जिनके साथ वात्सल्य और मधुर भाव वल्लभ सम्प्रदाय में महत्त्वपूर्ण है। इसी को सम्प्रदाय में "प्रेम रूपा" या " प्रेम लक्षणा" भक्ति कहा गया है। गुप्त जी ने विशेषकर प्रेम रूपा भक्ति का विस्तृत वर्णन किया है। वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति में है और रागात्मिका भक्ति की पूर्णता आत्मसमर्पण में। अतः एक दूसरे की सहायिका है।

गुप्त जी के अनुसार इन नौ प्रकार के भावों में भक्ति विकसित हुई। भक्त भगवान की उपासना करता हुआ नित्य प्रति समीप होता जाता है। इन नौ भावनाओं को जब उस परम भाव में सम्मिलित कर लेता है, भवसागर को पार कर सकता है। गुप्त जी स्वयं "शुकमुनि" के मुँह से इस "नवधा भक्ति" का प्रतिपादन करते हैं ---

"सुनु नृप कृष्ण भगति जो होई। नवधा नाम धरावहि सोई।।
प्रथम श्रवन प्रभु चरित सुहाना। दूजी भगति नाम गुन गाना।।
सुमिरन दिवस रैन जदुराई। सो जग तीजी भगति कहाई।।
चौथी हरि चरनन्ह की सेवा। दृढ़ है सोइ भाव नैया खेवा।।
पंचम भगति होइ पदवन्दन। गुन गन जुत प्रभु का अभिनन्दन।।

सताई दास्य भाव कहँ ज्ञानी। उठईं सख्य भावना मानी।।
नवम जो आत्मनिवेदन करहीं। सो निहिचै भवसागर तरहीं।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरण काण्ड,पद-202]

स्पष्ट है कि गुप्त जी के अनुसार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन,दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन वे साधन हैं, जिनको साध कर भक्त इस भवसागर पार कर सकता है और उस परम पुरुष को पा सकता है। यही भक्त का साध्य है।

1. श्रवण :-----

श्रवण भक्ति से तात्पर्य है कि परमाराध्य के गुण,नाम चरित्र आदि का सुनना-सुनाना। गुण श्रवण के पश्चात् ही श्रद्धा का उदय होता है। अत: भगवदभिमुख गुप्त जी ने भी इसे भक्ति और ज्ञान दायिका के रुप में स्वीकार किया है। गुप्त जी ने जब भी भगवान के अपार गुणों का, विविध लीलाओं का और असीम यश का वर्णन किया है तभी प्राय: यह भी बता दिया है कि जो व्यक्ति कृष्णचरित्र को सुनेगा उसे मोक्ष मिलेगा, उसका सारा व्यामोह दूर हो जायेगा---

"कृष्ण चरित पावन करन, सुभ कल्यान प्रदाइ
सुनहु बिहाइ जो मोह मद, अवस मोच्छ मिल जाइ।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस- उत्तरकाण्ड,पद-210]

भगवान कृष्ण के गुण भी तो अपार हैं, उनका वर्णन करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। अपने भक्तों पर सहज कृपा करके वे तुरंत उनका उद्धार करके उन्हें अपनी शरण में ले लेते हैं। गजेन्द्र, द्रौपदी, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि न जाने कितने ही भक्तों का अपने उद्धार करके अपनी सहज भक्त - वत्सलता का परिचय दिया है।[6]

कृष्ण चरित्र को जो पढ़ेगा, सुनेगा उसका जीवन सर्व सुखमय होगा तथा उसका जीवन धन्य होगा -----

"पढ़हिं सुनहिं जो ध्यान लगाई। हुइहैं धन्य सर्व सुख पाई।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-210]

गुप्त जी ने जिस प्रकार भगवान के कृष्ण के प्रति भक्ति - विश्वास प्रकट किये हैं। उसी प्रकार अन्य देवी - देवताओं के प्रति भी।

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने भक्ति पद्धति में श्रवण भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

2• <u>कीर्तन</u> :---

भगवान के नाम, गुण, लीला आदि का प्रेम तथा श्रद्धा के साथ पाठ करना और गाना कीर्तन कहलाता है। श्री भक्ति रसामृत सिंधु में कहा गया है -----

"नाम लीला गुण दानामुच्चै र्भाषा तु कीर्तनम्"।।
[श्री हरिभक्ति रसामृतसिंधु,पूर्वविभाग लहरी-2;श्लो29]

श्रवण भक्ति के समान कीर्तन भगवद् प्राप्ति का सरल साधन है। श्रीमद् भागवत में इस प्रकार की भक्ति का माहात्म्य वर्णित है --"तपस्या, योग एवं समाधि से जो फल प्राप्त नहीं होता, वही सरल केवल कीर्तन से कलियुग में प्राप्त होता है।"[7] गुप्त जी भी इस बात का समर्थन करते हुए कहते हैं ----

"जप तप जइ जोग फल जोई। कृष्णचरित गावत मिलि सोई।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-210]

भगवान के नाम की महिमा का प्रतिपादन करनेवाले अनेक पद गुप्त जी ने लिखे हैं। भगवान का यशोगान करने से भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है और महान पापी तर जाता है। उसे महाफल मिलेगा, अंत में हरिधाम प्राप्त होगा-----

"हरि नाम जपै गुन-गान करै, मन जीत सदा थिर ध्यान लगावै।।
फल एक अनन्त सुनाम लिये, फल दूजो मिले तो महाफल लावै।।
विश्वास लगाइ मनावत है, वह धाम सदा हरि-धाम में पावै।।"
[कैलाश - दाऊदयाल गुप्त, पद-219]

गुप्त जी कहते हैं -- दुर्गा महाशक्ति है। उस शक्ति का आराधन करनेवाले धन्य हैं। वे कहते हैं -----

"प्रतिदिन जो जन इन देवी का गुण गाता
ध्याता, वह जग में हठात सिद्ध हो जाता।।"
[महाशक्ति दुर्गा - पृ-248]

गुप्त जी महेश्वरोपासना का भी समर्थन करते हैं। "योग, जप, शिव - भक्ति ही कर्तव्य है[8] कहकर उनके प्रति भक्ति भाव प्रकट करते हैं। फिर भी शिव के गुणगान करने में अपनी असमर्थता को व्यक्त करते हैं---

"उस भूतेश को क्या प्रशंसा की जाए। शब्द भी नहीं।"
[शंकर ,पृ-103]

गुप्त जी कहते हैं -- "सतयुग में ध्यान किया करते थे, त्रेता में मख, द्वापर में पूजन किया करते थे। इस कलियुग में वह फल संकीर्तन करने मात्र से प्राप्त होगा।"[9] नारद, शारद, सिद्ध मुनिजन भी उस प्रभु के गुणगान करते रहते हैं ----

"नारद शारद सिद्ध मुनि। गावहिं महिमा गान।
दिव्य कथा सत्वर मनहु, श्रुति सब मूरतिमान।।"
[श्रीकृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-67]

इसीलिए गुप्त जी यह संदेश देते हैं ---

"मन छोड़ समस्त विषादन कूं
अराधन कूं प्रभु के गुन गाइयो।।" [कैवप-पद-222]

और कहते हैं -----

"क्षणभंगुर नर देह, केवउ होइ विशिष्ट कोउ।
तासों विरथा नेहं, भजो हीय भगवान कूं।।"
[स्याम संदेसों - पृ-56]

इस प्रकार गुप्त जी ने संकीर्तन के महत्व का वर्णन किया।

3• स्मरण :---

भगवान के नाम, गुण आदि का बार-बार ध्यान करना स्मरण कहलाता है। श्रवण और कीर्तन की अपेक्षा यह भक्ति सोपान अधिक उत्कृष्ट है। क्योंकि इसमें भक्त का भगवदनुराग अपेक्षाकृत अधिक तीव्र हो जाता है। भक्तों ने स्मरणासक्ति को अधिक महत्व दिया है।

गुप्त जी ने स्मरण भक्ति की आवश्यकता बताते हुए उसकी महिमा का वर्णन किया है। विविध प्रसंगों में गुप्त जी ने स्मरण भक्ति का व्याख्यान किया है -----

"दाऊदयाल" करौ हरि सुमिरन, तौ ही जागै भाग।।"
[स्याम सतक, पद-16]

2• "सब रूप अनित,जो नित सदा,ब्रज राज के रूप कौ ध्यान लगाइयो।।"
[केशव- पद-222]

3• "प्रभु रूप सुमिरन हर्ष हिय दुःख शोक निकट न आवहीं।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-4]

गुप्त जी कहते हैं कि "हरि नाम प्रभाव से मानव भवसिंधु पार कर रहे हैं तो निशिदिन हरि चिन्तन करे तो उसे जरूर मुक्ति मिलेगी। भगवान समदर्शी है। उसके लिए कोई मित्र, कोई शत्रु नहीं है। कोई भी हो उसका निरन्तर चिन्तन करेगा तो जरूर उद्धार करेगा। भवसागर पार करने के लिए इसके अलावा और कोई उपाय नहीं।"[10]

"उर नेह के रूप में मोह भरूयौ
बिरथा जिय मानि बिछोह, भ्रमाऔ,
नहिं काउ कौ कोउ सुसंगी भयौ
जग आई अकेली, दुकेली न जाओ।
फिर मोह उराहने ताहने का
तुम कौन हू अपनौं रोस दिखाओ।
मन मानव - मूरत काह धरी,
घन स्याम के ब्रह्म स्वरूप हू ध्याऔ।।"
[स्याम संदेसौ ,पृ-56]

गुप्त जी ने भगवान रामचन्द्र के प्रति भी भक्ति प्रकट किया है। वे कहते हैं कि राम कृपा पाना दुर्लभ है, फिर भी स्मरण करने मात्र से वह प्राप्त होता है।[11] वे कहते हैं जो राम के प्रति विश्वास हृदय में रखेगा, उन्हें इस दुनिया में असंभव कार्य न होगा।[12] वे रघुराम नाम का महात्म्य का गुणगान करते हैं और कहते हैं----

"जरे ज्वाल नहिं जपहल सुभ, राम नाम प्रह्लाद।
सोई नाम प्रताप सन, ध्रुव गे विगत विषाद।
जपि सुग्रीव राम रघुराया। किष्किंधा नृप पद सो पाया।
जपत विभीषन राम गुसाँई। सब विधि धन्य राजपद पाई।
राम नाम में जपत सुपावन। बंधेउ अधाध जाइ अहिरावन।
राम नाम जपि हैं विधि जोई। रचत सृष्टि कछु बाध नहोई।
राम नाम रटि एहु अहिभूषन। करहिं संहार लगै नहिं दूषन।
एहि सब सकति राम जपकेरी। राम नाम जपि धहिअ निवेरी।"

(श्री हनुमच्चरित मानस-अयोध्याकाण्ड,पद-63)

इस प्रकार गुप्त जी कहते हैं कि जो भगवानरामचन्द्र का गुण गाते हैं, स्मरण करते हैं, वे धन्य होते हैं ---

"सुमिरि सदा रघवंशमनि,धन्य धन्य सौ जीव।
ता पहुँ करहिं दयालु प्रभु, सब विधि दया अतीव।।"

(हनुमच्चरित मानस-सुन्दरकाण्ड,पद-6।)

इससे हमें स्पष्ट होता है कि गुप्त जी ने नाम स्मरण को संसार-सागर को पार करने का एक मात्र नौका माना है।

4• पाद-सेवा :---

पाद सेवा में भगवान के चरणों का महत्व बताया जाता है। श्रद्धा विश्वास से समर्पित पत्र-पुष्प - फल सेवादि पादसेवा के अन्तर्गत आते हैं। मूर्तिपूजा से मुक्त हो मानसिक पाद सेवन की कोटि तक पहुँचता है और भगवान के चरणों की सेवा करता है।

इस कलियुग में चारों ओर पाप ही पाप है। यह पाप नष्ट होने के लिए सबके सुखी रहने के लिए एक ही उपाय है, वह है प्रभु पद सेवा। इसीलिए गुप्त जी कहते हैं ---

"जो कलिमाँहि पाप फल त्यागा। हरि है हरि सैहिं सब संतापा।
प्रभु पद पदमन्ह सीस नवाई। होइ सुखी सब पाप नसाई।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-198]

गुप्त जी कहते हैं --"भगवान श्री कृष्ण ने दुष्ट विनाश-शिष्ट रक्षा हेतु अवतार लिया है। इसलिए अपने अहंकार को छोड़कर गिरिधर के चरणों के यहाँ आश्रय पाओ ---

"सो जन लागि लीन्ह अवतारा। खल गंजहिं भंजहिं भू भारा।
उस जिय जानि मन तजि दीजै। गिरिधर चरन सरन गहि लीजै।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-126]

जब भगवान का दर्शन - स्पर्शन जीव करें तब सारी तकलीफ दूर हो जायेगा। इसलिए उस भगवान के पाद पद्मों को चिंतन करना चाहिए।[13]

आखिर गुप्त जी प्रभु के चरणों के यहाँ आत्म समर्पण करते हुए प्रार्थना करते हैं ---

"विनवत अति कर जोरि कै, करयौ अनुग्रह नाथ।
मैं सनाथ अब हवै गयौ, चरनन नाऊँ माथ।।"
[स्याम संदेसौ, पृ-95]

भगवान शंकर के प्रति भक्ति रखकर उनकी कृपा प्राप्तकर इस भवसागर से विमुक्त होने की बात कहते हुए गुप्त जी बताते हैं ---

"इसलिए तुम भी वहाँ चल, हृदय अन्तर्भावना से
पद चरण, उनकी कृपा ही, प्राप्त कर लो याचना से।।"

{शंकर, पृ-85}

भगवान रामचन्द्र के चरणों के प्रति अनुराग रखने की बात कहते हुए धन्य हो जाने को कहते हैं ---

1. चाहुँ तन दउहाँ सब त्यागी। रहहुँ रामचरनन अनुरागी।।"

{हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड, पद-27}

2. कीन्हो रघुवर पद सेवकाई। धन्य होउ तुम इच्छित पाई।।"

{हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड, पद-39}

गुप्त जी ने महाशक्ति के गुण गाते हुए उनके चरण कमलों के प्रति भक्ति भाव प्रकट किया---

"हे जननी! तव बल पर ही विश्व टिकाया।
तुमने ही सबको धर्म कर्म सिखलाया।।
तुम ही चण्डी हो दुष्टों में भय करनी।।
तुम ही लक्ष्मी भक्तों के घर धन भरनी।।
हम सब ने अब तो आश्रय लिया तुम्हारा।
है तव चरणों में सदा सदा नमन हमारा।।"

{महाशक्ति दुर्गा, पृ-88}

इस प्रकार गुप्त जी ने अपनी भक्ति पद्धति में "पादसेवन" को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

5. अर्चना:---

श्रद्धा सहित विविध सेवा-उपकरणों से भगवान की उपासना या

पूजा करना अर्चना कहलाती है। इष्टदेव के विग्रह के स्नानादि के पश्चात् चंदन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समर्पण आदि पूजा के अन्तर्गत आते हैं, जो षोडशोपचार कहलाते हैं। नाम स्मरण तथा आत्मसमर्पण मानसी पूजा कही जाती है।

गुप्त जी ने अपने पदों में जहाँ भगवान के लिए चन्दन, पुष्प, दीप, धूप, नैवेद्य आदि का समर्पण किया। वे सारे पद इस "अर्चना भक्ति" के अन्तर्गत ही आते हैं।

गुप्त जी कहते हैं —"हे प्रभु! तुम्हारे लिए फूल अर्पण कर रहा हूँ। ये फूल बहुत दूर से कठिन श्रम कर लाया हूँ-----

"प्रभु जी यह अरपन है कछु फूल
तो कठिनता सों मैं पायो।।
फाट्यो चारु दुकूल।।"¹ श्याम सतक, पद-7

फिर एक जगह पर गुप्त जी कहते है -----

"मन में पवित्र भावना लेकर भगवान की पूजा कर, यही "योग" है। जब भगवान का दर्शन, स्पर्शन जीव करेगा तब उसका सारा कष्ट दूर हो जायेगा।"4 फिर एक जगह पर आरती देते हुए भगवान का गुण गान करते हैं -----

"रे मन! तू ऊ सुमिर लै, अब तो स्यामा- स्यामा।।
भक्ति मुक्ति दायक सतत, वे ही पूरन काम।।
री बानी। मुखरित जब, कर प्रभु को गुन गान।।
आरति कर छवि जुगल की, तौ निहिश्चै कल्यान।।"
(स्याम संदेसो, पृ-96)

फिर गुप्त जी सतत भगवान की पूजा करने का दृढ़ संकल्प लेकर भगवान से प्रार्थना करते हैं ---

"दीजिए नाथ भगति कर मोंही, मोहादिक पुनि प्रगटि न होंही।
पद पाँवरि निज करहु प्रदाना, पूजत रहहुँ सतत भगवाना।
सुदृढ़ प्रीति तेहिं लखि जदुराया, दीन्हि पद पाँवरि कर दाया।।"
(श्री कृष्ण चरितमानस–उत्तरकाण्ड,पद–119)

गुप्त जी के राम कहते हैं कि श्रद्धा युत मेरी पूजा करनेवाला भक्त मुझे प्रिय है---

"मोरेउ भगत सोइ प्रिय मोहीं। जो श्रद्धा करि पूजहिं तोही।।"

(हनुमच्चरित मानस – अवध काण्ड,पद–99)

गुप्त जी ने महाशक्ति का तन, मन से पूजा किया है। वे कहते हैं भक्त होकर भी जो देवी की पूजा न करे तो उसके सब पुण्य भस्म हो जाते हैं।(15) इसीलिए वे उस महाशक्ति का पूजा करते हैं---

"जय दुर्गा माता शर्वाणी। जय जगज्जननि। जय कल्याणी।।
अब कृपा करो हे रुद्राणी।। #
भावों के दीप जलाये हैं, कुंकुम – अक्षत भी लाये हैं।
मन के यह पुष्प सजाये हैं, हम शरण आपकी आये हैं।
नैवेद्य सु–संयतता का है, आचमन हृदय – सरिता का है।
ताम्बूल सु–रंजकता का है, सब साज अकिंचनता का है।"
(महाशक्ति दुर्गा – पृ–303)

फिर वे कहते हैं ---

यों विविध भाँति सब अर्चन करें तुम्हारा।
स्वीकारो माता। शत शत नमन तुम्हारा।।"

[महाशक्ति दुर्गा - पृ-89]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में अर्चन भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।।

6. वन्दना :---

इष्टदेव की सविनय स्तुति करके प्रणाम करना-"वन्दन-भक्ति" कहा जाता है। भगवान की वंदना साष्टांग प्रणति भक्त के आत्म समर्पण और दास्य की परिचायिक तथा पूज्य की महत्व का प्रतिपादिका है। अतः गुप्त जी ने भी "वन्दन भक्ति" का गान किया है ---

"प्रभु पद पदमन्ह सीस नवाई। होइ सुखी सब पाप नसाई।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस- पद-198]

गुप्त जी कहते हैं —"यह जीवन झूठा है, जग का जाल झूठा है। माया के कारण मनुष्य यह नहीं जान पा रहा है। सच तो यह राजाधिराज ब्रज राज श्रीकृष्ण हैं ---

"बिखर जाइगो इक दिन बन्दे जीवन को यहि साज।
"दाऊदयाल" जाल जग झूठो साँचो राजाधिराज।।"
वन्दन,अभिनन्दन ब्रजराज।।"

[श्याम शतक, पद-2]

इसीलिए गुप्त जी हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना करते हैं ---
हे प्रभु! इस भवसागर से मेरे जीवन रूपी जीर्ण नौका को उस पार ले चलो।"[6]

इस वन्दन भक्ति के अन्तर्गत गुप्त जी ने समस्त देवी देवताओं को नमन किया---

1· अमित प्रभाउ सुभाउ वर, साहस शक्ति अपार।
वन्दे वरदायक अतत आसुतोष अवतार।।
[हनुमच्चरित मानस-अवतरण काण्ड, पद-2]

2· "महिषासुर मर्दिनि। अब प्रसन्न ही रहना।
हम सबके प्रति शुभ भाव्य सदा ही कहना।।
ब्रह्माणी, रमा, उमा भी रूप तुम्हारा।
हे महाशक्ति है शत शत नमन हमारा।।" [महाशक्ति दुर्गा,पृ-90]

इस प्रकार दाऊदयाल गुप्त के काव्य में हमें "वन्दन भक्ति" का दर्शन होता है।

7· <u>दास्य</u> :---

भक्त के लिए भगवान स्वामी है, प्रभु है, नाथ है तो भक्त प्रभु का सेवक, अनुचर दास है। वास्तव में भक्त का जीवन ही सेवामय है अर्थात् दासभाव से की जानेवाली भगवद् अर्चना "दास्य भक्ति" कही जाती है। दास्य भक्ति में भक्त की दो मनोदशाएँ प्रमुख होती हैं। एक तो यह कि वह समूचे संसार को मायाग्रस्त जानकर भी स्वयं को उससे बचने में असमर्थ पाता है और दूसरी यह है कि वह अपने आराध्य के उन गुणों पर और उन शक्तियों पर पूर्ण विश्वास रखता है जो उसे सांसारिक विकारों से मुक्त कर सकते हैं। गुप्त जी ने विनय पदों के अतिरिक्त चीरहरण, कालियदमन, गोवर्धनलीला आदि प्रसंगों में भगवान की भक्त वत्सलता और भक्त के दैन्य भाव का साथ - साथ वर्णन कर "दास्य भक्ति" का महत्व प्रतिपादन किया है।

गुप्त जी के काव्य में "दास्य भक्ति" प्रचुर मात्रा में मिलती है। गोलोक में "राधा-कृष्ण विवाह" प्रसंग में गुप्त जी ने राधा के मुँह से अपने हृदय की दास्य भावना प्रकट की ----

"जनम जनम दासी रहहुँ, यहि बर माँगहुँ नाथा।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड, पद-22]

फिर "ब्रह्मा जी के गर्व भंग प्रसंग में सेव्य-सेवक भावना के उद्गार द्रष्टव्य है-----

"सिधि सक रचि रचिउ न समझहि रहस यहि अद्भुत महा।
मति मूढ़ मैं अति तुच्छ मोहित भयेहुँ तौ अचरज कहा।।
मम खोट जदपि न छोट तउ मोह दास आपुन जानि कै।
करि छमा। "दाऊदयाल" अब ममताव्य मों कहँ मानि कै।।
[श्री कृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-45]

फिर "कालीयदमन" प्रसंग में [17], अक्रूर के दिव्य - दर्शन के व प्रसंग में [18], हनुमान गर्वभंग प्रसंग में [19], हमें गुप्त जी की यही भक्ति भावना दिखाई देती है।

गुप्त जी अपने को दास मानकर प्रभु के अनन्त गुणों का स्मरण करते हुए पुकारते हैं ----

"तुम ही प्रभु हौ सब जीवन के, तुम ही धन हौ तन मन के
तुम ही सब चाहत पूरत हौ, पुन पालत हौ तुम ही जन कै।।"
[महारास-दाऊदयाल गुप्त, पृ-87]

फिर कहते हैं ----

"माधव, कृष्ण कृपाल नाथ मैं चरनन चेरौ।।" [स्याम संदेसौ, पृ-27]

गुप्त जी ने भगवान शंकर के प्रति भी उर में इसी भक्ति भावना को अपनाया है। वे शंकर को स्वामी मानते हैं और कहते हैं ---

"मेरे तो शंकर ही स्वामी। और नहीं कोई है जग में।।"

{शंकर-पृ-169}

फिर कहते हैं -- हे प्रभु! आप मुझे न भूलिए। इस अनुचर पर अनुग्रह कीजिए।{20} तेरे शरण में आया हूँ। अब तो मेरे लिए आपके चरणाम्बुजों का ही सहारा है।{21}

गुप्त जी भगवान से विनती करते हैं--"मुझे कुछ नहीं चाहिए। रिद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति नहीं चाहिए। सिर्फ तुम्हारे चरणों के यहाँ जगह दीजिए, "दास" जानकर मुझे अनुग्रह कीजिए।"{22}

सेव्य-सेवक भक्ति के छः अंगों का वर्णन श्रीमद्भागवत् में पाया जाता है- नमस्कार, स्तुति, समस्तकर्मों का समर्पण, सेवा, पूजा, चरण कमलों का चिन्तन और भगवत्कथा का श्रवण। गुप्त जी के काव्य से उद्धृत उदाहरण इन तत्वों को स्पष्ट कर देते हैं।

दास्य भक्ति में विनय, प्रार्थना, दैन्य भाव, स्तवन आदि का समावेश होता है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार विनय की सात भूमिकाएँ होती हैं। -- दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारणा। गुप्त जी की दास्य भक्ति का स्वरूप इन सात भूमिकाओं में देखा जा सकता है।

क. <u>दीनता</u> :---

भगवान के स्वरूप तथा महत्व को जानकर अपनी क्षुद्र वासनाओं से ग्रसित दीनता हीनता का अनुभव करना भक्त के लिए सहज स्वाभाविक है।

गुप्त जी ने अपने विनय पदों में दीनता, हीनता प्रकट की और पतितपावन से उद्धार करने की याचना की ---

"प्रभु जी मेरे औगुन बन गए सूल।
भ्रष्टाचरन उदर व्यथा को, औगुन ही तो मूल।
मूरखता वस समुझि न पायो वे औगुन प्रतिकूल।।"प्रभुजी"
"दाऊदयाल" विसय मन अटक्यो बैठ्यो सदगुन भूल।
करो कृपा अब नटवर नागर मो पै ह्वै अनुकूल।।"प्रभुजी।।
[स्याम सतक,पद-1]

गुप्त जी के काव्य में इस प्रकार के पद कई है, जिसमें एक भक्त की हृदय भगवान के सामने नतमस्तक हो जाता है।

स॰ मानमर्षता :---

अभिमान छोड़कर भगवान की शरण जाना मानमर्षता कहलाता है। भक्त के लिए निरभिमान होना आवश्यक है। "भगवान सदा भक्तों के प्रति प्रीति लगा रहते हैं, जो अहंकार को छोड़कर "भगतवर" हो जाता है, उस पर विशेष अनुग्रह करते हैं।[23] इसीलिए गुप्त जी कहते हैं ---

"तजो रे मन पाप मूल अभिमान।।
जाके कारन बिसर जात है, सुमति और सुदग्यान।।
उपज्यो अहं हरी सीता हूँ रावन दैदिए प्रान।।
हिरनाकुस को भयो सफायो कंस को बलिदान।।
दुरजोधन भा काम क्रोध बस करतब को नहिं भावन
"दाऊदयाल" अहं के कारन परलोकहुँ नहिं थान।।"
[स्याम सतक,पद-2।]

इसीलिए गुप्त जी का भगवान से प्रार्थना है -- "हे प्रभु! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। जग का मोहजाल भारी है। इससे बचने के लिए हमें भक्ति का वर दो।"[24]

ग. भय-दर्शन :---

भवसागर में डूबनेवाले जीव को माया रूपी मगर तथा पापकार्य जैसे भयंकर विषैले पशुओं का तथा नरक का भय दिखाकर जागृत करना भयदर्शन कहलाता है।

गुप्त जी कहते हैं -- यह जग का नाता झूठा है, सच तो राजाधिराज कृष्ण है।[25] फिर जीव को सचेत करते हुए गुप्त जी कहते हैं -- जब तुम्हारी मृत्यु होती है, तब तुम्हारे माता, पिता, शिशु कोई तुम्हारे लिए काम नहीं आते। तुम्हारे धन,वैभव यहीं पड़े रहेंगे। यह संसार तुम को भूल जायेगा।[26] तुम अपनी विषयवासनाओं को छोड़ दो। ये काम, क्रोध, मद,मोह, लोभ काले नाग हैं। अबतक जिन्दगी में सोता रहा, अब जागो। भगवान का नाम धाम स्मरण करो तुम्हारा भाग्य खुल जायेगा।[27]

भक्त छोकर भयग्रस्त होकर अपने क्षुद्र अहंकार को त्याग कर रक्षा के लिए पुकार उठता है और भगवान की दास्यता स्वीकार करता है। इस प्रकार गुप्त जी की दास्य भक्ति में भयदर्शन का रूप स्पष्ट होता है।

घ. भर्त्सना :---

भक्त अपने मन को डाँट फटकारता है। शासन कर संयमित होने को सचेत करता है।

गुप्त जी कहते हैं --"अभी तक मैं ने जीवन व्यर्थ गँवाया। "हरि" चर्चा भूल गया। कुकर्मों में मन लगा बैठा, पाप-पुण्य न जानकर अपयश पाया। अब गले में फन्दा पड़ गया।"[26] इसलिए हे मन! जान लो, जग का नाता झूठा है।[29] सब विषयवासनाओं को छोड़ दो।[30] श्यामसुन्दर से लग जाओ। वही तुम्हारा उद्धार करेगा।[31]

इ॰ आश्वासन :---

उपास्य के गुणों पर परिपूर्ण विश्वास कर कर उन्हीं के चरण कमलों के भरोसे धीरज धरना आश्वासन कहलाता है। गुप्त जी कहते हैं---

"जप तप सब जोग फल जोई,कृष्ण चरित गावत मिलि सोई।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-210]

हरि नाम को जप करने से, गुणगान करने से उसे जरूर हरिधाम में स्थान मिलेगा।[32] प्रभु कृपा के बिना तुम्हारा मन भटकता रहेगा। इसलिए हरि नाम का स्मरण कर, तुम्हारा भाग्य खुल जायेगा।[33] गुप्त जी शिव के प्रति भक्ति भाव प्रकट करते हुए कहते हैं -- वे सदाशिव सृष्टि, स्थिति, लय कारक है।[34] वे दयामय, भक्त जनों की आपदा हरते रहते हैं।[35] इसीलिए उनकी कृपा के पात्र बनने को कहते हैं ----

"इसलिए तुम भी वहाँ चल,शुद्ध अन्तर्भावना से।
चढ़ चरण, उनकी कृपा ही,प्राप्त कर लो याचना से।।"
[शंकर ,पृ-65]

उसी प्रकार समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली महाशक्ति के रूप में दुर्गा माँ के प्रति विश्वास प्रकट करते हैं ---

"जो जो अभिलाषा-आशा रहीं उभरती।
नवदुर्गा करती पूर्ण, कुचिन्ता हरती।।"
[महाशक्ति दुर्गा - पृ-25]

इसीलिए गुप्त जी भगवान कृष्ण के मुँह से यह कहलाते हैं --- हे पार्थ! भगवति दुर्गा की पूजा भक्ति भाव से करो, अवश्य तुम्हारी विजय होगी तुम कृतार्थ हो जाओगे।"[36]

इस प्रकार गुप्त जी ने विविध देवी-देवताओं पर, उनकी दयालुता पर दृढ़ विश्वास रख आश्वासन प्रकट किया है।

घ. मनोराज्य :---

भक्त अपने मन में सुन्दर कल्पना लोक की भावना करता है। बड़ी बड़ी अभिलाषाएँ रखकर उनकी पूर्ति की प्रार्थना करता है। गुप्त जी अपने मन की अभिलाषा इस प्रकार प्रकट करते हैं --"दुर्लभ ब्रज धाम को पाने के लिए सुरवृन्द तरसते रहते हैं। यहाँ की सुन्दर सुखद रूपी मिट्टी स्नेह से, प्रेम से भरी हुई है। भक्ति, गान, संगीत इस रज के हर कण में भरा हुआ है।"[37] ब्रज की मिट्टी पवित्र है, पूजनीय है। उस मिट्टी में प्रिया सहित कृष्ण ने विहार किया। वह मिट्टी प्राणियों को भोग - मोक्ष प्रदायिनी है।[38] इसलिए----

"प्रभु जी, मोय रज कन चौं न करे?
या पावन ब्रज में बहु तेरे साधु संत विचरे।
आइ निकसतौ मो ढिंग कोऊ तरतौ पाप धरे।।"प्रभुजी"
शुभ आचरन और सद्गुन सब ममता में बिसरे।
दाऊदयाल कहा करि पाऊँ समुझति नाँहि परे।।"प्रभुजी"
[स्याम सतक ,पद-6]

फिर गुप्त जी भगवान से विनती करते हैं ----

"रिद्धि सिद्धि संपति नहिं मांगी। केवल चरन-सरन अनुरागी।"

[श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-228]

इस प्रकार गुप्त जी ने मनोराज्य की भावना की अभिव्यक्ति की, जिसमें अपने को एक मात्र व भगवान का दास बनकर रहने में जन्म को धन्य माना है।

ग• विचारण :---

संसार की असारता पर चिन्तन करते हुए वैराग्य भावना से निर्लिप्त हो जीवन व्यतीत करना "विचारण" कहलाता है।

गुप्त जी इस शोभायमान शरीर की विकृतियों का दिग्दर्शन कराकर वैराग्य भावना को उत्पन्न कर देते हैं ---

"मनवा, छायौ माया जाल।
भासमान संसार बनायौ सबरौ झूठौ जाल,
यह काया माटी है प्यारे करनी नाँहि निहाल,
हंस उड़ जानौ है तत्काल।। ।।मनवा।।
मोह छाँड़ि परलोक सम्हारौ डोल रह्यौ सिर काल,
दाऊदयाल काम नहीं आवै वैभव कुटुम विशाल।।
देह धरनी पै होइ निढाल।। ।। मनवा।।

[श्याम शतक - पद-14]

गुप्त जी स्पष्ट बताते हैं कि इस घोर तिमिर सागर को पार करने के लिए माधव की दासता करना ही सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

इस प्रकार हमें गुप्त जी के काव्य साहित्य में दास्यभक्ति के पूर्ण स्वरूप का दर्शन सप्त भूमिकाओं में होता है।

8• सख्य भक्ति:---

जब आराध्य को सखा मानकर उसके प्रति असीम स्नेह की अभिव्यक्ति की जाती है तो उसे सख्य भक्ति कहते हैं। इष्टदेव के प्रति अन्तरंग में सखा जैसा परमप्रेममय निस्वार्थ भाव रखना इसका प्रधान लक्षण है। परब्रह्म श्रीकृष्ण के प्रति सखा या मित्र भाव, गोपादि ब्रजवासियों में, तथा अर्जुन में हमें दिखाई देता है। कृष्ण की इष्ट सखी राधा है। सख्य - भक्ति मुख्यत: वैष्णवभक्ति साहित्य में ही दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र नहीं।

गुप्त जी ने सख्य - भक्ति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर दिये हैं। कृष्ण की बाल लीलाएँ, सुदामा का दारिद्र्य निवारण आदि प्रसंग सख्य भक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

कृष्ण ग्वाल बालकों के साथ यमुना तट पर खेलने गये। तब सारे सखाओं ने मिलकर कृष्ण को "काला" और "पराया पूत" कहकर चिढ़ाते हैं। बलराम भी उन लोगों के साथ मिलकर चिढ़ाते है तो कृष्ण कुपित होकर माँ से बलराम की शिकायत करते हैं। {39} फिर दूसरे दिन सब कुछ भूल-कर उन लोगों के साथ गाय चराने जाते हैं। उन लोगों के साथ खेलकूद में भाग लेते हैं।{40} ये तो स्वाभाविक बात है सखाओं के मध्य यदि स्वच्छ प्रेम की अपार सरिता प्रवाहित होती है। सदा-कदा झगड़ा भी हो जाता है। प्रेम की परिपुष्टता के लिए कभी - कभी झगड़े होना अनिवार्य भी है।

राधा भगवान कृष्ण की अ इष्ट सखी है। अपने चंचल स्वभाव के कारण वे तरह तरह की ठैलियाँ करते है। कभी राधा कृष्ण पर धूल फैंक कर वेणु छीन लेती है तो कभी कृष्ण राधा के हाथ में शोभायमान पद्म को। कृष्ण राधा से कहते हैं --"जब तुम वंशी मेरे हाथ में रखोगी तब मैं इस पद्म को दूँगा।" तब राधा कहती है---- "अन्याय है यह। एक अबला के

प्रति ऐसा करना उचित नहीं है।" तब कृष्ण कहते हैं --"वे अबलाएँ नहीं कहलातीं, जो पुरुष के नयनों में धूल फेंककर वेणु छीन लेती हैं।"{41} फिर दोनों जल विहार करते हैं।{42} फिर कभी होली खेलते हैं।{43}

जब कृष्ण कंस वध करने मथुरा चले गये, तब गोपांगनाएँ अपने साथी कृष्ण के लिए व्याकुल हो पुकारती हैं ---

"सखी! साथी, स्वामी! द्रुत गरुड़गामी तुम हरे,
अरे बंसी वारे! व्रजधन उजारे। किधर गये?
अनंगाऊ लज्यौ, अरि छवि सज्यौ गोपिन सिरै
अहो लीलाधारी, वनन सुखकारी दरस दो।।"

{महारास ; पृ-65}

सख्य भक्ति में उच्च, निम्न की भेद भावनाएँ न रहतीं। इसका उत्कृष्टतम रूप हमें उस प्रसंग में मिलता है जब शिव-पार्वती, नारद आदि कृष्ण सखा अर्जुन के दर्शन करने आते हैं ----

अर्जुन गहरी नींद में हैं। उसकी सांस में "हरि! ध्वनि निकलने लगा। भगवान कृष्ण स्वयं अपने हाथों से अर्जुन के पैर दबाते रहे-----

"शिवा संभु देखउ तहँ जाई। पार्थ चरन चापत यदुराई।।"

{श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-7}

इस प्रकार सख्य भक्ति के वशीभूत भगवान भक्त की सेवा करने लगते हैं। इस प्रकार की सख्यभक्ति का वर्णन शायद ही अन्य कवियों ने किया हो।

गुप्त जी द्वारा वर्णित इन प्रसंगों में हमें उनके साहित्य में स्थित "सख्यभक्ति" के पूर्ण स्वरूप के दर्शन होते हैं।

९• आत्मनिवेदन :--

यह भक्ति भाव की परिणति है। अनन्य भाव से परमाराध्य की प्रार्थना करना और उसकी शरण लाना आत्मनिवेदन है। इसे "प्रपत्ति" भी कहते हैं। वैराग्य से प्रेरित होकर भक्त अन्त में भगवान से दुराव-छिपाव न रखकर अपनी दीनता, हीनता तथा पाप कर्मों का ब्यौरा देकर भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण कर देता है।

गुप्त जी की भक्ति साधना में "आत्मनिवेदन" या "शरणागति" का अपूर्व महत्व है। गुप्त जी निर्मल मन से भगवान की शरण में गये। गुप्त जी ने अनेक पदों में अपनी दयनीय दशा का वर्णन किया है, यथा----

"प्रभु जी मै ने जीवन व्यर्थ गमायौ।।
भूल गयौ मै हरि की चरचा कुकरम में मन लायौ।।
काम क्रोध मद लोभ आदि सौं मै सब और पिरायौ।।
पाप पुन्न का होइ न जान्यौ जस अप जस का पायौ।।
[स्याम सतक, पद-10]

शरणागति को शास्त्रीय रूप भी प्राप्त है। प्रपत्ति के छः अंग ----- अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, रक्षा में विश्वास, गोप्तृत्व वरण, आत्मसमर्पण और कार्पण्य माने गये हैं। गुप्त जी के काव्य साहित्य में आत्मनिवेदन के इन षट् विधाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

क• अनुकूलस्य संकल्प:---

भगवान को प्राप्त करने में जो साधन अनुकूल पड़ते हैं। उन्हीं को अपनाने का भक्त दृढ़ संकल्प करते हैं। गुप्त जी कहते हैं ---

"हरि नाम जपै गुन - गान करै, मन जीव सदा थिर ध्यान लगावै।।
फल एक अनन्त सुनाम लिये, फल दूजौ मिलै तो महाफल लावै।।
विसवास लगाइ मनावत है, यह थान सदा हरि-धाम मैं पावैं।"
[कैशव- पद-219]

हरि का गुण गान करने मैं, ध्यान करने मैं ही जीव की भलाई है। मन लगाकर, उन पर विश्वास रखकर जो ध्यान करेगा, उसे जरूर "हरि धाम" मैं स्थान मिलेगा।

वे कहते हैं --"रामभक्ति जिसके हृदय मैं स्थिर होगा उसे सर्वत्र विजय ही मिलेगा।[44] इसीलिए गुप्त जी राम मंत्र जप करने को कहते हैं ---

"राम मंत्र दृढ है जप जोगू। मिलि हैं भोग मोच्छ मिटि सोगू
आधि व्याधि सब होंइ निवारन। ध्यान जोग रघुपति एहि कारनू।।"
[हनुमच्चरित मानस-अयोध्याकाण्ड, पद-58]

इस प्रकार गुप्त जी भगवान को प्राप्त करके भव बन्धनों से मुक्त होने को कहते हैं ।

ख• प्रतिकूलस्य वर्जनम् :---

उस परम प्रभु को प्राप्त करने मैं विघ्न उपस्थित करनेवाले जो साधन है, उनका सर्वथा परित्याग करना आवश्यक है। इसीलिए गुप्त जी कहते है---

"काम क्रोध मद मोह लोभ सब मानौ कारे नाग
करौ रे मन सब विसयन को त्याग।।" [राम सतक, पृष्ठ-16]

फिर वे कहते है -----

"बिन प्रभु किरपा मन भटकत है, उपजे नाहिं विराग
"दाऊदयाल" करौ सुमिरन, तौ ही लागै भाग।।"
[स्याम सतक,पद-16]

इस प्रकार गुप्त जी स्पष्ट शब्दों में मानव को प्रतिकूल संकल्प त्याग कर, स्याम के शरण में लाने के लिए कहते हैं।

ग• रक्षिष्यतीति विश्वास :---

भक्त के हृदय में सदा यह विश्वास रहता है कि उसकी रक्षा भगवान सदा करेंगे। इसी विश्वास के बल पर वह संसार के संघर्ष में भी विचलित न होकर स्थिर रहता है। गुप्त जी का विश्वास अटल है -----

"प्रभुजी, तुम गज केउ प्रान बचारे।
जब जब टेर करी सन्तन नें दौर तुरत ही आरे।।
द्रुपद सुता की हेला सुनि कैं बा के चीर बढ़ारे।
नरसिंह रूप धरि ह हिरनाकुस बधि, प्रह्लाद बचारे।।"
[स्याम सतक,पद-22]

इस प्रकार गुप्त जी "आत्मनिवेदन भक्ति" में उपास्य के प्रति अटल विश्वास साथ रक्षा पाने का भरोसा अभिव्यक्त करते हैं -----

"जीरन नैया, नहिं खिवैया, पार करौ सागर सौं।
अरज नटवर नागर सौं।।" [स्याम सतक,पद-15]

इस प्रकार भक्त को भगवान पर अटल विश्वास रखकर आगे बढ़ने की संदेश देते हैं।

ग· गोप्तृत्व वरणम् :---

दीन दयाल, सर्वांतर्यामी, सर्वशक्तिमान भगवान से विनती करना तथा उनके रक्षक स्वरूप का वरण करना "गोप्तृत्व वरण" कहलाता है।

भगवान का यह स्वरूप "भगवान के अवतरण" के प्रसंग में स्पष्ट दिखाई देता है। समस्त देवताओं ने भगवान के पास जाकर प्रार्थना करते हैं ------

"जय दीन बन्धु दयानिधान महान महिमामय प्रभो।
सब ओर हाहाकार अत्याचार आ छाये विभो।।
करतार जगदाधार धरि अवतार सुजन उबारियो।
अब करि खलन्ह संहार धरनी भार नाथ उतारियो।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-68]

एक जगह पर गुप्त जी ने महाशक्ति के स्वरूप का वर्णन किया। यथा ----

"मिलकर वराह से, वाराही बन जाती।।
मिलती नृसिंह से, नारसिंही कहलाती।।
वैष्णवी, शिवानी, उमा, रमा, ब्रह्माणी।।
नन्द, विन्ध्या या इन्द्राणी कल्याणी।।
कृष्णा, श्यामा, रासेश्वरी होती राधा।।
सब मुक्तिमयी हरती है सब भव बाधा।।"

[महाशक्ति दुर्गा,पृ-257]

इन प्रसंगों में हमें भगवान या भगवती का यह रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं।

छ. आत्म समर्पण :---

उपास्य के अधीन भक्त अपने सर्वस्व सर्वात्मना कर निश्चिंत निर्मल जीवन व्यतीत करना "आत्मसमर्पण" कहलाता है। गुप्त जी के काव्य साहित्य में कई पदों में समर्पण भाव अभिव्यक्त हुआ है।|45|

च. कार्पण्य :---

दम्भ और अहमन्यता का नाश कर भगवान के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए दीन भाव का ग्रहण करना कार्पण्य कहलाता है। हृदय खोलकर भक्त अपनी करुण कथा सुनाता है और सर्वस्व समर्पण कर विनय भावना तथा दीनता व्यक्त करता है। यथा ----

"कहाओ, यों कैसे हो नाथ।
मैं अति दीन हीन दुरबल हूँ, मोहूँ करो सनाथ।।
जदपि फँस्यौ मो मन विसयन मँह गाइ सकौ नहिं गाथ।।
तौऊ तरुन लोग को तुम हूँ राखो किरपा हाथ।।
दुरगुन औंत बढ़े हिरदै मँह रही गिरस्ती साथ।।
"दाऊदयाल" बने नहिं साधन चरनन नाऊँ माथ।।"
|स्याम सतक,पद-18|

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य साहित्य में आत्मनिवेदन के सब रूप प्राप्त होते हैं।

प्रेमाभक्ति :---

वैधी भक्ति के जितने भी विधि विधान है, वे सब प्रेम लक्षण भक्ति को प्राप्त करने के साधन हैं। इसीलिए वैधी भक्ति को साधना भक्ति और

प्रेम लक्षणा भक्ति को साध्या भक्ति कहा गया है।

गुप्त जी ने भगवदनुग्रह पाकर प्रेम भक्ति सम्बन्धी पदों का गान किया है। प्रेम-भक्ति बिना मुक्ति सम्भव नहीं और प्रेमभक्ति आश्रित है, भगवदनुग्रह पर। अतः गुप्त जी ने सर्वप्रथम उसी की प्राप्ति के लिए भगवान से प्रार्थना की ------

"हम तौ कृष्ण कृपाल सन, मंगहिं प्रेम की भीख।"

(श्री कृष्ण चरितमानस- अवतरणकाण्ड,पद-18)

गुप्त जी राधा के मुँह से स्वयं ये बातें कहते हैं --- "सच्चे प्रेम से उस परम प्रभु को ध्यान करने से वह अपनायेगा। प्रेममार्ग में कितने ही तकलीफों का सामना करना पड़े, फिर भी प्रेम-पथिक थका नहीं जाता। मुझे कृष्ण पर भरोसा है, वह जरूर मुझे अपनायेगा ये प्राण उस परम प्रभु को ही वरण करेंगे।(46)

गुप्त जी कहते हैं कि जो प्रेमभक्ति रखकर भगवान रामचन्द्र की पूजा करते हैं, उसे भगवान भी अत्यंत प्रेम से अपनाते हैं। उसी भक्ति के वश होकर शबरी से दी गयी जूठे फल भगवान खाते हैं और उसे भक्ति का वर प्रदान करते हैं ---

"प्रेमभक्ति रत सबरी चीन्ही। सोउ रघुपति अति उपकृत कीन्ही
चाखि चाखि फल दीन्हेउ सोई। खायेउनाथ प्रेमरत होई
माँगिन कहि वर दीन दयाला। भक्ति माँगि दीन्हेउ तत्काला।।"

(हनुमच्चरित मानस - बालकाण्ड,पद-64)

" भक्ति रसामृत सिन्धु" में कहा गया है कि चित्त जब सम्यक् रूप से मसृण(कोमल) हो जाता है, तब परम आनन्द के उत्कर्ष से घनीभूत भाव ही

"प्रेम" कहलाता है। प्रेम की उपलब्धि सहज नहीं, उसके लिए बलिदान आवश्यक है। बलिदान के पश्चात् ही प्रेमभक्ति की सिद्धि होती है। गुप्त जी कहते हैं ----

"धन्य वे जो प्रेम पर हैं मर सके।"

[राधा-दाऊदयाल गुप्त, पृ-206]

गुप्त जी ने अपने काव्य में प्रेम के जिस रूप का प्रतिपादन किया है। वह वेदान्तियों का शुष्क प्रेम नहीं, अपितु ऐसा प्रेम है, जो माधुर्य रस से परिप्लावित है। गुप्त जी का प्रेम क्रमशः विकसित होकर विश्वप्रेम में पर्यवसित हुआ है, जो अनन्यता। मधुर वेदना, निस्वार्थता आदि है। सार रूप में कहा जा सकता है कि विश्व की विभिन्न प्रेमानुभूतियों का सार ही गुप्त जी में सरस रस बनकर आ समाया है।

प्रेमाभक्ति-एकादश आसक्तियों-गुणमाहात्म्या सक्ति, रूपा सक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदासक्ति, तन्मयासक्ति, कान्तासक्ति और परमविरहासक्ति पर आधारित होती है। गुप्त जी ने अपने प्रसिद्ध काव्य में इन ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख भी किया है।[47]

वात्सल्य भक्ति :---

माता, पिता का अपनी संतान के प्रति प्रेम विशुद्ध एवं निष्काम होता है, वैसे ही प्रेम भगवान के प्रति रखना "वात्सल्य भक्ति" है। गुप्त जी ने इस भक्ति रूप का सरस, हृदयग्राही और विशद वर्णन किया है। नन्द और यशोदा को उपलक्ष्य बनाकर उन्होंने कृष्ण के प्रति वात्सल्य भक्ति व्यक्त की।

द्वारकाप्रसाद गुप्त ने संयोग वात्सल्य एवं वियोग-वात्सल्य के वर्णनों में कृष्ण के विविध रूपों का बड़ा ही आकर्षक वर्णन अपूर्व ढंग से किया है।

सारा लोक जानता है, कृष्ण भगवान है, लेकिन वह यशोदा के लिए एक साधारण नटखट बालक है। अपना बेटा है। उसे यशोदा बहुत प्यार करती है अपने अंक में प्रेम से बिठाती है ----

"उपजि मोह जसुमति उर आवा, करि अति नेह अंक बैठावा।।
जग रघु राम करहिं जेहि गाना, जसुमति तेहि निजसुत करि माना।।"
(श्री कृष्णचरितमानस-अवतरण काण्ड, पद-183)

उस बालक के सौन्दर्य को देखकर माँ तो मुग्ध है ही, ब्रज की समस्त माताएँ भी मुग्ध हैं। यशोदा अत्यन्त प्रेम से कृष्ण को सम्भालती है। उस मुग्धमोहन शिशु के दर्शन करने देवता जन भी छद्म वेश धारण कर नंद गृह आने लगे। यशोदा सोचती है----

मो कहँ अति प्रानन प्रिय छौना। लगहिं सुन्दर श्याम सुलौना।
सुनि पद ध्वनि सोवत सो जागै। शंका यहि कहुँ दीठि न लागै।।
(श्री कृष्णचरितमानस-अवतरण काण्ड, पद-146)

कृष्ण दिनरात ग्वाल बालकों से खेला करता था। माँ मन में यह सोचती है --"कृष्ण को दीठि कुदीठि न लगै।" शंका मिटाने के लिए कृष्ण के माथे पर काजल की टीका लगाकर भगवान से प्रार्थना करती है---

"अति चंचल या बाल की जेहि विधि इच्छा होई।
कीजिए प्रभु आप वहीं सतत भरोसा मोइ।।"
(श्री कृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-8)

कृष्ण ग्वाल बालकों के साथ मिलकर "माखन" चोरी करने लगे। जब यह शिकायत लेकर व्रजांगनाएँ यशोदा के पास जाती हैं तब यशोदा अपने पुत्र का ही समर्थन करती हुई कहती है ---

"मेरे लाला निरा भोला है, आप लोग क्यों व्यर्थ शिकायत करती हैं? उस अबोध पर दोष लगाने में लाज नहीं आती?" {48}

कृष्ण ग्वाल बालकों के साथ खेल - कूद में भूख - प्यास भी भूल जाता था। लेकिन माँ कैसे भूल सकती? वह सदा अपने बच्चे की ही सोचती रहती है। उसके लिए कुछ देर प्रतीक्षा कर उसे ढूँढकर घर लाती है, पास बैठकर खिलाती है। स्नान कराके वस्त्राभरणों से सजाती है। {49}

जब अक्रूर, बलराम-कृष्ण को अपने साथ मथुरा ले जाने की बात करता है। तब उसके कल्पनामय वियोग तीव्र हो उठता है। आखिर विवश होकर अपने पुत्रों को उनके साथ भेजती हुई नंद से विनती करती है --"राजा क्रूर है, प्रजा के लिए "काल" समान बन बैठा है। मेरे बच्चे को मारने पीछे पड़े हैं। इनको आँखों से दूर न जाने दो। सदा हृदय से लगा रखिए। इनका खयाल रखिए।" {50}

दुःख के आधिक्य में एक दशा यह भी है जब मुख से वचन नहीं फूटते, वाणी मूक हो उठती है। वाणी का कार्य आँखों को करना पड़ता है, विरह की इस चरम अनुभूति का वर्णन भी गुप्त जी ने मार्मिकता पूर्ण किया है---

"जसुमति दसा लखहु निज आँखी। सुनत न दाउ किछु अन्तर साखी।।
रोहिन द्रुग झारत मुख फेरी। भइ गति शिशु-विहीन गउ केरी।।
गोपी गोप बिकल मन माँही। रोवत धीर धरत कोउ नाँही।।
व्रजपति बाहिर अचल दिखाने। पै चित न रोउ छिपाने।।"

{श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-215}

इस प्रकार स्पष्ट विदित है कि गुप्त जी के काव्य साहित्य में संयोग तथा वियोग - पक्ष में वात्सल्य भक्ति अपनी पूर्ण परिणति को प्राप्त हुई।

<u>मधुर भक्ति :---</u>

माधुर्यभाव की भक्ति में भक्त और भगवान में प्रेयसी प्रेमी का संबंध होता है। लौकिक श्रृंगार रस ही भक्ति के क्षेत्र में "मधुर रस" या "मधुर भक्ति" के नाम से अभिहित होता है। मधुर भक्ति के लिए आत्म-समर्पण और अनन्य भाव परमावश्यक हैं, जो गुप्त बन्धु जी की मुरली माधुरी, चीरहरण आदि में पूर्णता को प्राप्त हुए हैं। गुप्त जी ने इस भक्ति के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मार्मिक ढंग से निर्वाह किया है।

हेमन्तऋतु के प्रथम मास में नन्द जी के व्रज की कन्याओं ने हविष्यान्न को खाकर भगवती कात्यायनी देवी के पूजनार्थ व्रत धारण किया। उनके व्रत का उद्देश्य था पति रूप में भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति। भगवती से वे यही प्रार्थना करती हैं -----

"जय जय जय कात्यायनि माता, विधुवदनी अति उज्ज्वल गाता।
मातु हरहु सब बाधा हमारी। मिलहिं नन्दसुत वर सुखकारी।।"
(श्रीकृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-91)

बाद में गोपियाँ वस्त्र उतारकर नग्न होकर यमुना में स्नान करने लगीं। उसी समय कृष्ण वहाँ प्रकट होकर, उनके वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर जा बैठे। यह देखकर गोपियाँ कृष्ण से बार-बार अनुनय विनय करती हैं कि वे उन्हें वस्त्र लौटा दें। पर कृष्ण नहीं मानते। तब वे गोपियाँ भगवान से क्षमा माँगकर उनसे वस्त्र प्राप्त कर लिये।(5।) इस तरह कृष्ण चीरहरण द्वारा गोपियों को अपनी ओर और अधिक आकृष्ट करते हैं।

गुप्त जी ने शरद् कालीन रासलीला का आरम्भ मुरली सम्मोहन के वर्णन से किया है। मुरली की धुन सुन गोपियाँ प्रेम विह्वल होकर वन की ओर दौड़ी। जो जिस अवस्था में थी उसी में उठकर श्याम की ओर भाग निकली।[52] गोपियाँ कृष्ण के पास पहुँची, जैसे बीन - विमोहित सर्प। लेकिन कृष्ण बड़े भोलेपन से व्रजांगनाओं से प्रश्न करते हैं— अपने पति को परमेश्वर मान, उसकी पूजा करनी चाहिए। तुम्हारे पति, माता-पिता तुम सबके बिना दुःखी हो उठे होंगे। इसी से तुम सब अपने अपने घर चली जाओ। विकल होकर गोपियों ने कहा-"तुम क्या कह रहे हो? हम तुम्हारे सिवा किसी को नहीं जानतीं। सारे बन्धनों को तोड़कर तुम्हारे पास दौड़ आयी हैं। फिर वे अपने मंतव्य को स्पष्ट बताती है---

"जानहिं नाहिं होहि का नीति। हिरदय सतत प्रीति की रीति।
देउ सीख जरा यहि नहिं जाना।। हम तुम कहँ पतिधन्ह पति माना।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-152]

राधा, कृष्ण को अपना पति मान बैठी है, वह यह बात स्पष्ट बताती है —"यहि पुन प्रान पीय प्रभु वरहूँ।"[53] अपने चंचल स्वभाव के कारण वे तरह - तरह की केलियाँ करती हैं।[54] जल विहार करती है।"[55] होली खेलती है।[56] फिर एक जगह पर गोपियाँ कृष्ण पर आरोप लगाती हुई कहती है---

"कछुक कहेउ विसरोउ कहा दीन्हेउ जो विश्वास।।
चीर हरेउ बोधेउ हमहिं करन कहेउ सुख रास।।
बोली केउ गोपी तजि लाजा। हिरदयहीन होउ केहि काजा।
तुमकहँ हम आपुन्ह पिय जाना। तब लगि गेह मोह बिसराना।।
नहिं अब कछुक रही अभिलासा। हम त्यागी सब काम्य दुरासा।।
सो तव चरन सरन गहि आई। काम कोह मद मोह बिहाई।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-153]

राधा तथा अन्य गोपियों के साथ कृष्ण की ये लीलाएँ उनके माधुर्य-भाव को उत्तरोत्तर परिनिष्ठित करती हैं और इनमें आनंद एवं रस के प्रेत कृष्ण गोपियों को भी आनन्द और रस से आप्लावित करनेवाले "माधुर्यभक्ति" के श्रेष्ठतम आलंबन रूप में चित्रित हुए हैं।

गुप्त जी ने शैव साहित्य में भी यह माधुर्य भक्ति का पराकाष्ठा की स्थिति को दिखाया है -- उमा, परमेश्वर को पति मानकर उनकेलिए तप करती है। उस तप को देखकर मुनिजन मुग्ध हो जाते हैं। आखिर स्वयं शिव उनकी परीक्षा करने आते हैं तो वह स्पष्ट शब्दों में कहती है---

"मेरे तो शंकर ही स्वामी। और नहीं कोई है जग में।"

(शंकर ,पृ-169)

यह स्वाभाविक बात है प्रेयसी - प्रेमी के बीच स्वच्छ प्रेम की अपार सरिता प्रवाहित होती है। इस मधुर भाव में दोनों एक दूसरे के प्रति इतनी आकर्षित होते हैं कि बड़प्पन, छोटापन की भावनाएँ दब जाती है। प्रिय अपने को प्रेयसी के दास मानते हैं,प्रेयसी प्रिय की। गुप्त जी के शिव अपने को गिरिजा का दास मानते हैं और कहते हैं ---

"यह सौभाग्य रहा मेरा, गिरिजा का दास कहाऊँगा।
वह सहर्ष स्वीकारूँगा, जो भी आज्ञा मैं पाऊँगा।।"

(शंकर,पृ-242)

इस प्रकार गुप्त जी ने शैव साहित्य में भी "माधुर्यभक्ति" का चित्रण किया है।

वियोग में जितनी प्रेम पक्ष की वास्तविकता विद्यमान रहती है, उतनी संयोग की स्थिति में नहीं। क्योंकि संयोग की अवस्था में अपने

प्रियजन की ओर से निश्चिन्त रहता है। विरह की दशा में वह व्याकुल होकर विरह का अनुभव करने लगता है। अतएव सहज ही उसके प्रेम की परीक्षा हो जाती है। विरह प्रेम की कसौटी माना गया है। गुप्त जी द्वारा वर्णित विरह सम्बन्धी पदों को पढ़ने से ऐसा लगता है मानो ब सर्वेश्वर के प्रति अनन्त प्रेम में मग्न होकर उसके विरह से व्याकुल हो भक्त हृदय ने मानो अपनी आन्तरिक व्यथा को गोपियों की विरहोक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त किया है।

भगवान कंस वध करने मथुरा चले गये। कृष्ण के चले जाने पर गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल होती हैं। उस समय तक उनका प्रेम इतना बढ़ गया था कि वे उनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती थी। वे इतना तन्मय हो गयी कि चेतन-अचेतन का भी भेद भूल गयीं और पक्षियों तथा वृक्षों से भी अपने प्रियतम के विषय में पूछने लगीं-----

"एरे, सिंधुर! पहरी इन कों इन्यौ है,
तूई बताइ अब पीय किते हमारे?"
(महारास, पृ-57)

गुप्त जी कहते हैं कि --"भक्ति की चार अवस्थाएँ मानी जाती है---कोमल भाव, तीव्रभाव, स्वच्छन्द प्रेम और उत्कृष्ट अनुरक्ति। इनमें से उत्कृष्ट अनुरक्ति ही अधिक श्रेष्ठ है। यह भक्ति की पूर्ण अवस्था में ही हो पाती है। इसमें भक्त को यह ध्यान ही नहीं रहता कि भगवान के अतिरिक्त कहीं कोई अन्यवस्तु है भी या नहीं। ऐसी अवस्था में भक्त को अपने शरीर का भी ध्यान नहीं ह रहता।"(57)

जब गोपियों को किसी भी प्रकार अपने प्रियतम प्यारे का पता न लगा तो वे इतनी प्रेम- विभोर हो गयीं कि आपा ही भूल बैठीं तथा वे उनके चिन्तन में ऐसी निमग्न हो गयीं कि अपने को कृष्ण समझकर उनकी लीलाओं का अनुकरण करने लगी-----

"गोपी फिरैं अनुकरैं हरि लोल लीला, हाँसी विनोद मोद सुअंग हीरे,
क्रीडा मग्न नरतहीं धीर होट हँसी, गाती चलीं बन बनी रजनी उजेरी।
माधौ हमीं जसुमति सुत नँदलाला, कोउ कहै-कमल पैडन मैं उबारे।
नारी बनी ब्रज मयंक निसंक बाजी, बाली कहैं बँसुरिया धन स्याम मैं हूँ।"
(महारास, पृ-55)

विरहावस्था का प्रेमभक्ति के आध्यात्मिक साधन में विशेष महत्वपूर्ण है, अतः गुप्त जी ने वियोग का अधिक उज्ज्वल, प्रबल रूप "भ्रमरगीत" में प्रस्तुत कर मधुर भक्ति के आलम्बन को अपनी भाव भीनी प्रणति समर्पित किया।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं — हे उद्धव! हमें क्यों भ्रम में डालना चाहते हो? हमें सब कुछ मालूम है। वह (कृष्ण) अब राजभोग में तल्लीन है, अपनी रानियों के साथ सुखी में हैं। इधर माता, यशोदा उसकेलिए रोती रही, नन्दबाबा भी दुखी है। फिर हमारी गोपियों की दशा क्या बताऊँ----

"नीतिउ सिखाई, लोक रीतिउ बताई हीं।
रासउ रचाये, केलि - केलिउ खिलाये भौत
बेनु गीत गाये, कैसी बावरी बनाई ही।
याद ही संजोवैं, रोवै - रैन - दिन हारैं नैन
विरहा जरिंगी, जि लौं सोध नहि पाई ही।।"
(स्याम संदेसौ, पृ-39)

इस प्रकार गुप्त जी ने मधुर भक्ति के संयोग और वियोग सम्बन्धी साधारण लौकिक श्रृंगार को उत्कृष्ट, उज्ज्वल तथा भक्ति रस बना दिया है।

वैरभाव-भक्ति :---

वैरभाव कुछ होते हुए भी मोक्ष प्राप्ति के लिए सरल है। * शत्रुभाव से अनेकानेक राक्षस तर गये। तामसी भक्त अपने सहज स्वभाव से प्रेरित होकर भगवान से शत्रुता कर सदा उसका स्मरण, ध्यान करने लगता है। चाहे, अनचाहे सर्वेश्वर के निरन्तर नाम जप से वह पवित्र हो जाता है और अन्त में परमगति को प्राप्ती करता है। "गुप्त जी ने कई संदर्भों में कहा है ---

1• समदरसी जग पालक जोई, तेहिं लगि सत्रु मित्र नहिं कोई।
जपिहहिं नाम द्वेष हित लागी। सोउ नर सब प्रकार बड़ भागी।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-अवतरण काण्ड, पद-114]

2• नहिं कोउ सत्रु मित्र जग जेते। जीव मात्र प्रभु के प्रिय तेते।।"
[हनुमच्चरित मानस- सुन्दरकाण्ड, पद-123]

एक जगह पर परीक्षित शुक मुनि से प्रश्न करता है ---

"भगत सत्रु महँ अन्तर काहा। सो समुझाइ कहहु मुनिनाहा।।"
तब शुक मुनि उत्तर देते है -----

"बोले शुक-- दोउ एक समाना। हरि सुमिरन नहिं कोउ भुलाना।
द्वेष प्रीति कोउ कछु किन करही। पर दृढ़ मन अनन्यता धरही।।
[श्री कृष्णचरितमानस-मथुराकाण्ड, पद-44]

"भगवान के लिए भक्त एवं शत्रु दोनों एक ही है। वे समदर्शी है। वे सदा निर्लेप है।" [58]

इसी कारण पूतना, बकासुर, अघासुर, तृणावर्त, कंस, महिषासुर, शुम्भ - निशुम्भ, रावण, कुंभकर्ण आदि राक्षस ईश्वर की दया के प्राप्त पात्र हुए।

कंस की स्थिति देखिए। जब आकाशवाणी द्वारा "तुम्हारा शत्रु कहीं पल रहा है।" यह बात जानकर, वह व्याकुल हो उठता है। गुप्त जी ने उस स्थिति का वर्णन करते हुए कहा ---

"रहहिं व्याकुल धीर न पावा। चित्त सकल चिन्तन्ह बिसरावा।
चिन्तामगन रहहि सब भाँति। हरि मूरति देखहि दिन राती।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-113]

जब नाम प्रभाव से नर भव सिन्धु को पार कर रहे हैं तो निरंतर चिंतन करते तो उसे मोक्ष क्यों न मिलेगा।----

"केवल नाम प्रताप जग नर भवसिंधु तराहिं।।
हरि चिन्तन निसिदिन करहिं, जो किमि मुक्ति न पाहिं।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस-अवतरण काण्ड,पद-114]

आखिर प्रभु के हाथों में उसने प्राण खोदिये और प्रभु लोक में स्थान पाया।"[59]

इस प्रकार गुप्त जी ने वैरभक्ति का स्पष्ट तथा भावपूर्ण वर्णन किया।

<u>पुष्टिमार्गीय भक्ति</u> :---

भागवत में बताया गया है कि भगवान के अनुग्रह को ही "पोषण" या "पुष्टि" कहते हैं --"पोषणं तदनुग्रहः"। यही सिद्धान्त इस पुष्टि सम्प्रदाय के नामकरण का मूल उत्स है।

गुप्त जी एक स्वतन्त्र व्यक्तित्ववाले हैं। वह अपने को किसी सम्प्रदाय की लकीरों में बंद नहीं किया था। फिर भी उनके काव्य में श्रीवल्लभाचार्य द्वारा स्थापित, सूर द्वारा पोषित "पुष्टि भक्ति" का प्रभाव जरूर दिखाई देता है।

पुष्टि मार्ग के अन्तर्गत भक्त परमेश्वर की करुणा एवं अनुग्रह पर निर्भर करता है। गुप्त जी ने अपने इष्टदेव से "भक्ति" प्रदान करने की प्रार्थना की ----

"दीजिए नाथ भगति कर मोहिं, मोहादिक पुनि प्रगटि न होहीं।
पद पाँवरि निज करहु प्रदाना। पूजत रहहुँ सतत भगवाना।।
सुदृढ प्रीति लखि यदुराया, दीन्हीं पद पाँवरि कर दाया।"
{श्रीकृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-119}

पुष्टि मार्ग के अनुसार भगवान की कृपा से ही भक्ति की उत्पत्ति होती है। गुप्त जी ने अनेक पदों में हरि कृपालुता का मनोहर ढंग से वर्णन किया है। पुष्टि भक्ति के अनुसार गुप्त जी ने व्रजांगनाओं, गोपियों, गोपांगनाओं की माधुर्य भक्ति, प्रेमाभक्ति, वात्सल्य के अन्तर्गत वर्णन प्रस्तुत किया है। जिसका विवेचन हो चुका है। पुष्टिमार्ग में "शरणागति" का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त जी भगवान की कृपालुता पर विश्वास तथा शरणागत वत्सलता का वर्णन कर शरण गये हैं।

पुष्टिमार्गीय भक्ति में भगवान के अनुग्रह को विशेष महत्व दिया गया है। यह अनुग्रह उसी भक्त को प्राप्त होता है जो विविध सेवाओं से भगवान को प्रसन्न कर लेता है। इसलिए पुष्टि सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य ने और इनके उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथ ने विविध सेवाओं का सांगोपांग तथा विस्तार से विवेचन किया है। इन्होंने सेवा के तीन भेद माने हैं। प्रभुसेवा, गुरुसेवा और संत सेवा।

क. <u>प्रभुसेवा</u> :---

अहर्निश तन्मयता से प्रभु सेवा में तल्लीन रहना भक्त का परम पुरुषार्थ है। प्रभु सेवा के दो भेद होते हैं -- नाम सेवा, और स्वरूप सेवा।

नामसेवा में भगवान के नाम का महत्व होता है। भक्त भगवान के नाम गुण आदि की महत्ता का वर्णन करके स्वयं को सांसारिक विषय-वासनाओं से दूर करता है और भगवान के महत्व के प्रति, उनकी भक्त वत्सलता आदि के प्रति अपने मन में गहन तथा अविचल आस्था उत्पन्न करता है। भगवन्नाम की महत्ता का वर्णन करते हुए गुप्त जी कहते हैं ---

"कृष्ण नाम महिमा अगम, सुर मुनि पार न पाहिं।
जपहिं जे मानव भक्ति सन, ते सब पाप नसाहिं।। "

(श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड ,पद-3)

उसी प्रकार गुप्त जी ने राम नाम स्मरण की महत्ता को भी कई जगहों पर वर्णन किया।(60)

वल्लभाचार्य ने स्वरूप सेवा विधि को दो वर्गों में विभक्त किया है--- नित्य सेवा विधि और वर्षोत्सव से सम्बन्ध सेवा विधि।

नित्य सेवा विधि प्रात: काल से लेकर शयन-समय तक होती है। इसमें भोग, राग, श्रृंगार का विशेष महत्व माना गया है। खान-पान आदि के उत्तम से उत्तम पदार्थों को भगवान के प्रति समर्पित करना भोग कहलाता है। गुप्त जी यशोदा के मुख से गुद कहते हैं -----

"आवहु न तु अवार सुत होई, विविध भाँति मैं कीन्ह रसोई।।
सैहै हाथ तक हि प्रभु राज। लाल विलम्ब करहु केहि काजा।।"

(श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-196)

विविध रागों द्वारा भगवान के गुण आदि का वर्णन करना "राग" कहलाता है। गुप्त जी ने अनेक राग और रागिनियों के द्वारा कृष्ण का यशोगान करके राग सेवा को प्रस्तुत किया है।

भाँति-भाँति के अलंकारों से श्री कृष्ण को मण्डित करना श्रृंगार सेवा कहलाती है। पुष्टिमार्ग में श्री कृष्ण के विविध अलंकारों से सुसज्जित रूप का गुण गान किया जाता है। गुप्त जी ने कृष्ण के इस मनोहर रूप का भी वर्णन किया है ----

"सुन्दर श्यामल रूप सुहावा। भक्त जनन के मन अति भावा।
मनिमय मोर मुकुट सिर सोहै। रत्नजटित कुण्डल मन मो है।।
चन्दन तिलक भाल पहँ राजै। मृदु पीताम्बर कटि महँ साजै।।
वैजयन्ति माला गल माँही। रूप निरखि शत काम लजाहीं।।
लालरंग जामा सुखदाई। लाल रूप सुन्दर छवि छाई।।
श्याम केश लगत अति नीके। भ्रमर पुंज तेहिं सम्मुख फीके।।
मेघ बरन भक्तन्ह मन भावन। सुन्दर चितवन लगहि सुहावन।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड, पद-3}

पुष्टिमार्गीय सेवा के अन्तर्गत वर्षोत्सव सेवा-विधि के द्वारा भक्ति भावनाओं से तीव्रता का संचार होता है। इन उत्सवों का भी गुप्त जी ने वर्णन किया है। इनमें जन्माष्टमी {61}, रास {62}, कात्यायनी व्रतचर्या {63}, होली {64} आदि मुख्य है। वर्षोत्सवों में गोवर्धन पूजा {65}, इन्द्र की पूजा {66} का वर्णन किया गया है।

<u>स-गुरुभक्ति :---</u>

भक्ति मार्ग में गुरु का विशेष महत्व माना गया है। क्योंकि गुरु की कृपा के बिना साधक की साधना सिद्ध नहीं हो सकती और न भगवान

का अनुग्रह मिल सकता है। गुरु के गुणों के गान, उनकी महत्ता का वर्णन भी इस सेवा का एक पक्ष है। गुप्त जी ने गुरु के महत्त्व का वर्णन किया है। यथा -----

"जैसउ कोउ नर बुद्धि निधाना। बिनु गुरुकृपा उपजि नहिं ज्ञान
विद्या सकल सिखावै सोई। भोग मोच्छ दोउ कारन होई।।"
[हनुमच्चरित मानस-बालकाण्ड,पद-29]

फिर वे कहते हैं -----

"सेवहि ब्रह्म मनि नर जोई। भोग मोच्छ दोउ पावहि सोई
रहि अज्ञान ताप तम नाहीं। हुइ है सिष्य धन्य जग माहीं
मातु पिता तन एहि तन पावै। पर सदगुरु बिनु ज्ञान न आवै
एहि लगि उच्च थान गुरु केरा। दइहै जो शुभ श्रेय घनेरा।।"
[हनुमच्चरितमानस-बालकाण्ड,पद-30]

इन तत्वों के साथ ही गुप्त जी ने पुष्टिमार्गीय भक्ति के समर्पण, अनन्य, सदाचार आदि तत्वों का भी विस्तार से वर्णन किया है।

<u>अद्वैत भक्ति साधना</u> :---

भक्त के अथक परिश्रम एवं निरंतर साधना के फलस्वरूप परमतत्व प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। सहज ही उन्हें भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। वह अनन्य भाव से अपने इष्टदेव की सेवा तथा ध्यान करता है। जब भक्ति विकसित होती जाती है तो भक्त सचराचर जगत में भगवान की लीला का स्वर सुनता है। कण-कण में भगवान के अतिरिक्त कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। वहाँ पर भक्त द्वैतअद्वैत भावना अथवा पुष्टिमार्गीय निजी भावनाओं से ऊँची एक अनिर्वचनीय आध्यात्मिक भाव भूमि पर पहुँच

जाता है, ऐसी परिस्थिति में भक्त परमसुख में लीन होकर परमानन्द प्राप्त करता है। यह भक्ति की अन्तिम स्थिति ब्रह्मानंद स्थिति है। इस स्थिति में भक्त राम-कृष्ण, शिव-केशव तथा अन्य देवी-देवताओं में अंतर नहीं देखता। सबको अपने परम आराध्य में पाता है। इसी भाव-भूमि को "अद्वैत सिद्धि" कहते हैं। इस दृष्टि से गुप्त जी की भक्ति अद्वैतमूलक है।

क• त्रिदेव - अद्वैत सिद्धि :---

गुप्त जी की भक्ति में ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देवता एक ही परब्रह्म के विभिन्न स्वरूप कहे गये हैं। गुप्त जी कहते हैं वही "ओंकार परब्रह्म" ही सृष्टि, स्थिति, लय हेतु तीन रूपों में प्रकट हुआ है ----

"ओम् अगुण परमात्मा, प्रकटे सगुण सुवेश।
सृष्टि स्थिति लय हेतु वह, ब्रह्मा विष्णु महेश।।"
[जयओंकार-दाऊदयाल गुप्त,पृ-1।]

पौराणिक प्रसंगों को लेकर गुप्त जी ने त्रिदेवों में एकता को स्पष्ट किया। "बाल वत्सहरण" प्रसंग में ब्रह्मा ने बाल वत्सों का हरण कर उस अन्तर्यामी कृष्ण भगवान की परीक्षा लेना चाहा। परब्रह्म के अवतार कृष्ण पुन: सृष्टि करके उनके गर्वहरण करते हैं। ब्रह्म पश्चात्ताप कर क्षमा याचना करते हैं।"[67]

भगवान कृष्ण की रासलीला से मुग्ध होकर परमेश्वर गोपी रूप धारण कर उस रास नृत्य में भाग लिया है। और उस आनंद में अपने को खोकर नृत्य करने लगा।[68] फिर भगवान कृष्ण "मथुरापुरी" का निर्माण कर कालयवन को मारने, जाते समय मथुरापुरी के रक्षा भार महेश्वर को सौंपते हैं।[69] महेश्वर उस भार को आनंद पूर्वक स्वीकार करते हैं।[70]

इस प्रकार गुप्त जी ने त्रिदेवों के अस्तित्व की रूप कल्पना करके उन तीनों को परमतत्त्व [कृष्ण] के तीन तत्त्वों के रूप में वर्णन किया है। स्वयं गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं ----

"मैं ही कृष्ण मुकुन्द मुरारी। मैं ही ब्रज गोलोक विहारी।
मैं ही विधि हरि हर तिहुँ रूपा। मैं अगाध गति अकथ अनूपा।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-173]

भीष्म पितामह ने भगवान कृष्ण के तीन तत्त्वों के रूप में त्रिदेवों की कल्पना की -----

"तिहुँ लोकन्ह रासक अखिल होइ कथन अस भूप
रचि पालत संहरत एहि विधि हरि हर तिहुँ रूप।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-इन्द्रप्रस्थकाण्ड, पद-24]

गुप्त जी ने भगवान कृष्ण के बाल रूप का वर्णन करते हुए, उसी रूप में त्रिदेवों के दर्शन किये -----

"तेहि तन अगनित लोक समाये। सकल जीव जहाँ आश्रय पाये।
हरिहर विधि असंख्य तेहि माँही। विश्व प्रपंच शेष कछु नाँही।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड, पद-26]

इस प्रकार गुप्त जी ने त्रिदेवों को एक ही ब्रह्म के तीन तत्त्व मानकर त्रिदेवों में एकता को स्पष्ट किया।

ख• राम-कृष्ण-अद्वैत सिद्धि :---

गुप्त जी वैष्णव भक्त कवि हैं। विष्णु के अनेक रूपों में "कृष्ण" रूप उनका आराध्य है। तुलसीदास ने विष्णु के अन्य अवतारों में "राम" रूप

को अपना कर "रामचरितमानस" के माध्यम से अपनी भक्ति प्रकट की। गुप्त जी ने इसी "रामचरितमानस" की शैली को अपनाकर अपने प्रसिद्ध काव्य कृष्णचरितमानस एवं हनुमच्चरित मानस की रूप कल्पना की।

गुप्त जी भगवान राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं मानते----

"राम कृष्ण दोउ जदपि अभेदू, एक हि ब्रह्म भनिन सब वेदू"।।

[हनुमच्चरित मानस-उत्तरकाण्ड,पद-52]

गुप्त जी के श्रीराम ने अपने सेवक एवं भक्त हनुमान को अवतार समाप्ति के समय में यही समझाते हैं कि मैं द्वापर युग में श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित होकर तुम्हें दर्शन दूँगा-----

"हुइहौं द्वापर अन्त महँ, कृष्ण रूप अवतार।
तब पावहु मम शुभ दरस, निहिचै पवन कुमार।।"

[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-97]

गुप्त जी के कृष्ण भी अपने को राम के रूप में घोषित किया----

"राम रूप धरि हति खर दूषन। मारेउ रावन सकुल भूषन।
मोहन हेतु रूप धरि सीता। रही असोक बिपिन बनि भीता।
नहिं मैं नारि पुरुष नहिं होऊ। सकल रूप अस रूप न कोऊ।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड, पद-174]

फिर हनुमत् गर्वभंग प्रसंग में कृष्ण ने एक ब्राह्मण युवक रूप धारण कर हनुमान का गर्वभंग करके अपना स्वरूप समझाया है ---

"स्वयं बनाइ भेष ब्रह्मचारी। आनेउ स्वयं मुकुंद मुरारी।
त्रेता युग सोइ कहि रघुनंदन। द्विजकुमार बनि दइहौं दरसन।।"

[श्रीकृष्ण चरितमानस-द्वारिका काण्ड,पद-103]

हनुमान भगवान "राम-कृष्ण" का उस अद्‌वैत रूप को देखकर आनंद मग्न हो जाता है --

"लखेउ कीस अपलक दृगन्ह अद्‌भुत अतिसि अनूप।
सर धनुधर मुरली अधर राम-कृष्ण इक रूप।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-द्वारिका काण्ड,पद-102]

स्पष्ट है कि गुप्त जी ने विष्णु, नारायण, हरि, राम-कृष्ण में अद्‌वैत तत्व की साधना की।

ग· सीता-राधा में अद्‌वैत :---

राम और कृष्ण की अद्‌वैत भक्ति साधना के समान ही गुप्त जी ने सीता और राधा को परमशक्ति के अवतार मानकर अद्‌वैत तत्व के दर्शन किये हैं---- गुप्त जी कहते हैं ---

"त्रेता में सीता रूप प्रकट हो पाई।
वह ही द्वापर में "राधा" शक्ति कहाई।"
[महाशक्ति दुर्गा - पृ-253]

गुप्त जी के कृष्ण एक जगह पर राधा को अपना स्वरूप याद दिलाते हुए कहते हैं ---

"मैं ब्रह्मा ब्रह्मानि तुम्ह, करि हहु ज्ञान प्रकास।
राम भयेउँ तुम्ह जनकी, कीन्हेउँ खलन्ह विनास।।"
[श्री कृष्ण चरितमानस- उत्तरकाण्ड,पद-133]

फिर एक जगह भगवान श्री कृष्ण ने हनुमान को सीता के अस्तित्व के बारे में कहा है ---

"त्रेता तुम जो जनक कुमारी। जीव सो शक्ति प्रधान हमारी।
प्रगट भई ब्रज राधा रूपा। सर्वमई तारनि भवकूपा।।"

[श्री कृष्णचरितमानस-कुरुक्षेत्र काण्ड, पद-203]

गुप्त जी ने सीता, राधा, लक्ष्मी, रुक्मिणी आदि नामों में कोई अन्तर नहीं पाया। इन समस्त रूपों को पराशक्ति राधा के ही रूप मान कर वर्णन किया---

"तुम जननि स्वामिनि सब केरी। नरतत जग तव इंगित हेरो।।
शारद रमा उमा इन्द्रानी। दुर्गा काली रूप भवानी।।
विद्या माया सीता श्यामा। सत्या कालिन्दी सतभामा।।
रुक्मिनि आदि नारि जग जोऊ। सो सब प्रिये अंस तव होऊ।।"

[श्री कृष्ण चरितमानस-द्वारिका काण्ड, पद-192]

घ. हरिहराद्वैत भक्ति साधना :---

दाऊदयाल गुप्त जी अद्वैत मत के समर्थक है। उनकी अद्वैतमूलक भक्ति में शिव, राम, कृष्ण आदि सभी रूप समाविष्ट है। सब में एक अखण्ड अभेदता है। गुप्त जी ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को एक ही परम तत्व माना है।[7।]

गुप्त जी के राम इस अभेदता को सूचित करते हुए शिव से कहते है--

"आपु बसो मम हीय महँ, तव हीये मम वास।
सोइ ज्ञानी मतिमान नर, जेहिं अभेद विस्वास।।
ज्ञान विरत मूरख महा, जेहिं मति दुविधा होइ।।
संकर मो महँ आपु महँ, भेद लखहिं नर सोइ।।"

[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड, पद-65]

गुप्त जी के शिव भी यही बात पर बल देते हुए कहते हैं --"मैं केवल हरि का आदर करता हूँ।[72] नारायण सम अन्य कोई नहीं है।"[73]

गुप्त जी के कृष्ण भी यही अभेद तत्व को समझाते हुए कहते हैं ----

"शिव सन द्वैष भाव उर लावा। सो मानव मम भगति न पावा।।
मम वैरी करि शिव सन प्रीति। नहिं हर भगत सोउ एहि रीति।।
नाम रूप बहु धरेउँ भुआला। विधि हरि हर सुरपति दिग्पाला।।"
[श्रीकृष्ण चरितमानस-कुरुक्षेत्र काण्ड-पद-160]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में हरिहराद्वैत भक्ति साधना की। इसके अलावा शिव-शिवानी में अद्वैत, राम-सीता में अद्वैत, राधा-कृष्ण में अद्वैत आदि साधनाओं का भी आपने वर्णन किया। जिसका पूर्ण परिचय एवं विवेचन पिछले पृष्ठों में हो चुका है।

इस प्रकार हमें स्पष्ट होता है कि गुप्त जी ने अपने काव्य साहित्य में परमसत्ता के रूप में अभेदता का समर्थन किया है।

4·2· <u>दाऊदयालगुप्त जी के काव्य में राष्ट्रीय भक्ति :---</u>

19वीं शती के पूर्व "भक्ति" का नाता विराट् स्वरूप, जगदाधार, सर्वान्तर्यामी परब्रह्म के साथ है, जो सच्चिदानंद स्वरूप माना गया। 19 वीं शती तक आकर यह भक्ति "राष्ट्र" से जुड़ गयी। "राष्ट्रीय भक्ति" के रूप में परिवर्तित हुई। राष्ट्र के प्रति सेवा भाव रखना ही राष्ट्रीय भक्ति है। "आधुनिक युग मानवता की पूजा एवं आराधना का युग है। आज विश्व में सर्वत्र मानवता-प्रेम का धूम मची है और इसीलिए विश्व का बड़े से बड़े विचारक, मनीषी, दार्शनिक मानवता की पूजा को ही ईश्वर पूजा माना है। उसकी सेवा सुश्रूषा को "ईश्वर भक्ति" माना है और

उनके हित साधना में ही जीवन का सौभाग्य समझा है।[74] फलतः उस विश्वात्मा, जगदाधार, सर्वान्तर्यामी को जन-जन में व्याप्त दिखाने की भावना का अत्यन्त प्रसार हुआ। मानव सेवा ही माधव सेवा का भाव मुखरित हो उठा।

श्री दाऊदयाल गुप्त भक्त कवि ही नहीं बल्कि एक स्वतन्त्र योद्धा हैं। बचपन में ही गाँधी जी के प्रति आकर्षित होकर उनके गले में आत्मार्पण किया। गंगातट पर नमक आन्दोलन के समय उन्होंने भी निषेध आज्ञा का उल्लंघन किया। स्वतन्त्र संग्राम में कूद पड़ा। गुप्त जी गाँधीवाद से प्रभावित व्यक्ति हैं। सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी दृष्टिकोण के व्यक्ति हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात श्री गुप्त जी राष्ट्रीय कांग्रेस एवं उसकी गतिविधियों से जुड़े हुए हैं। गुप्त जी का समस्त काव्य पौराणिक है। आध्यात्मिक चिंतन से भरपूर है फिर भी उनमें यत्र-तत्र उनके राष्ट्रीय भावना की प्रमुख विशेषताएँ हम निम्न शीर्षकों के अंतर्गत इस प्रकार देख सकते हैं -----

1• राष्ट्रीय एकता
2• जन्मभूमि के प्रति अटूट प्रेम
3• उज्वल समाज की आकांक्षा
4• नारी जागरण
5• वर्तमान दुर्दशा - भारतीय जनता को उद्बोधन

राष्ट्रीय एकता:-----

अनेकता में एकता की प्रतीति कराकर, भारतीय संस्कृति ने "वसुधैव कुटुम्बकम्" की महती प्रेरणा के द्वारा विश्व को गौरवमय जीवन का संदेश दिया है। पं•जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र की उन्नति के लिए एकता की

भावना को अनिवार्य मानते हुए कहा था—"हमारे देश में जो तरह तरह के धर्म हैं, वे सब हमारे देश के धर्म हैं और सभी को इस देश में बराबर का अधिकार है। धर्म तो हर एक का रहे, उसकी रक्षा हो, कोई दूसरे के मजहब में दखल न दे। झगड़ा फसाद न करे। हर एक को अधिकार है कि चाहे जिस धर्म को माने और चले, लेकिन जहाँ देश का काम आता है, वहाँ सभी का एक ही धर्म है और वह देश का धर्म है। क्योंकि देश की सेवा तो हर एक का धर्म होना चाहिए। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, आपस में एकता रखने से ही आपकी तरक्की होगी।"[75] राष्ट्रपिता गाँधी ने भी सभी धर्मों और जातियों के लोगों को एकता के सूत्र में आबद्ध होने की प्रेरणा दी और आपस में प्रेम भाव रखने की प्रेरणा दी। गुप्त जी इसी भावना का समर्थन करते हैं। वे कहते हैं ---

"रखरे मन, सब जीवन सौं नेह।
एक ब्रह्म की है यही माया, सानैं राची देह।।
जात-पाँत ताके नहिं कोउ, नश्वर थलचर भेह।।
बुही राम, अल्लाह, गौड़ है, ध्यावत सबइ सनेह।।
इंगलिस्तान, अरब, भारत में बरसत समभेह।।
दाऊदयाल सबइ प्रानिन को अन्त एक ही गेह।।"
[श्याम सतक, पद-10।]

इस प्रकार गुप्त जी ने समस्त धर्मों का सार एक मानकर, जाति-पाँति का विरोध करके, मानव-एकता पर बल देकर भारत की अखंडता का प्रतिपादन किया।

जन्मभूमि के प्रति अटूट प्रेम :---

हमारी मातृभूमि भारत है। इस धरती में हम पले हैं। इस धरती ने हमें खिलाया और पिलाया और हमें एक सच्चे नागरिक बनाकर विश्व के सामने खड़ा कर दिया है। इसका ऋण चुकाना है। इसकी रक्षा करना हमारा धर्म है, कर्तव्य है। गुप्त जी के कृष्ण जब उद्धव द्वारा ब्रज वासियों को संदेश भेजते हैं तब जन्मभूमि हित रण करनेवालों को यह संदेश भेजते हैं---

"सुई नोक परिमान भूमि हू, प्रान रहे न गमाइयो।।"
[स्याम सतक, पद-84]

फिर एक जगह पर अर्जुन से कहते हैं -----

"तीनों रिन है- देश, जाति को,लोक होइ चुकानी
मारि रहे तोइ सत्रु हावरे, तू धी नहिं पुकानो।।"
[स्याम सतक, पद-96]

इस प्रकार गुप्त जी ने भगवान कृष्ण के मुख से मातृभूमि के प्रति अपने मन में स्थित प्रेमभक्ति को अभिव्यक्त किया और मातृभूमि की रक्षा को सबसे परम धर्म के रूप में घोषित किया।

उज्ज्वल एवं आदर्श समाज का निर्माण:---

देश का भविष्य गाँव पर निर्भर है। जबतक गाँव स्वस्थ और सम्पन्न न बनेगा तबतक देश स्वस्थ न रहेगा। देश का भविष्य हृष्ट-पुष्ट जनता पर ही निर्भर है। इसलिए पहले जनता का स्वास्थ्य बनाना चाहिए ताकि वे अत्याचारों के विरोध लड़ने में समर्थ हो सकें और वीर बन जाए। इसकेलिए दूध दही की आवश्यकता है। लेकिन गाँव की लक्ष्मी शहर की

और भाग रही है। गाँव के लोग इससे वंचित हो रहे हैं। इसका संकेत करते हुए गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं ---

"बाले - दूध दही नवनीता, बेचहु करि निज जन पद रीता।
धनपति अल्प मूल्य यहाँ लहहीं। हम स्वादहुँ सन वंचित रहहीं।।
इन अभाव रहि जन पद माहीं। श्रम करि लाभउ पावहिं नाहीं।।
जो नहिं बेचहु मथुरा जाई। तो रहिं सुखी समृद्धी पाई।।
हुइ है किंधु नहीं कुछ-भाना। बिन अभाव इत संपति नाना।।
बहु बाढ़ि होहि पुनि शक्ति हमारी। प्रबल होइं नहिं अत्याचारी।।"

[श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड, पद-135]

देश कल्याण के लिए ऐसे वीरों की कामना करती हुई राधा कहती है---

"राधा बोली --- कायर से कल्याण न होगा।
वीर न होंगे भू पर तो उत्थान न होगा।।" [राधा, पृ-52]

देश की रक्षा का भार वीरों पर ही है। वीर वहीं है जो सभी के दुख का हरण करता है। शरणागत या अल्प भीतियों की रक्षा करता है। साथ ही साथ सत्यनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ, धर्म - कर्मनिष्ठ होता है। [76] गुप्त जी ने कृष्ण का आदर्शमय चरित्र हमारे सामने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया और हर एक गाँव को गोकुल बनाने का संदेश दिया।

नारी जागरण :---

समाज की मूल इकाई परिवार है, जिसकी केन्द्रबिन्दु नारी है। यही कारण है कि भारत में प्राचीनकाल से ही नैतिक धरातल पर नारी को

सम्मान्य माना गया है। भारतीय संस्कृति में जननी को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताकर नारी वर्ग के प्रति सम्मान्य प्रकट किया गया है। भारत में मुस्लिम आक्रान्ताओं के आगमन के उपरान्त स्त्रियों की इस सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया। लोलुप - शासकों की कुदृष्टि से स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए नारी एक बार जो पर्दे में गई तो फिर बाहर न आ सकी। अंग्रेजों के राज्य स्थापना के पश्चात्त उसकी स्थिति में सुधार लाने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए। गांधी जी, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, श्रीमति एनीबेसैंट और श्रीमती सरोजिनी नायडु आदि ने इस दिशा में श्लाघनीय कार्य किए। इन महान व्यक्तियों के कार्याचरण के फल स्वरूप नारी को अपने सामाजिक मापदण्डों का पुनर्परीक्षण करके अपनी सामाजिक भूमिका के लिए मार्ग प्रशस्त करने का अवसर मिला। प्राचीन और अर्वाचीन मनीषियों एवं सार्वजनिक नेताओं के इन विचारों से हिन्दी कवि गण अप्रभावित न रह सके। उन्होंने नारी की दयनीय दशा को काव्य में प्रतिबिम्बित करते हुए, उसे उसके सम्मानित पद पर आसीन करने का प्रयास किया। नारी आज पुरुष के हाथ का खिलौना तथा भोगवासना की ही वस्तु बनकर रह गई है। उसका अपना कोई x स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उसकी भावना का कोई मूल्य नहीं रह गया। पुरुष वर्ग द्वारा अपेक्षित तथा उसकी लोलुप विलास वासना की क्रूरता की शिकार बनी नारी के प्रति x इंगित करती हुई दाऊदयाल गुप्त जी की गोपियाँ कहती हैं ---

"दबत रही नारी सदा। मानि नरै सिर मौर
पै जो जैसी ई दबी, ताहि दबाई और।
ताहि दबाई और सबइ तरियाँ सो हाँसी
स्वामी बनि के स्वयं कही तू तो है दासी।।

पै सब आयसु स्वीकारत ऊ चैन न पावै।।
अँगुरी कौ संकेत करत नर सदा नचावै।।"
[स्याम संदेसौ,पृ-44]

कविगण इस तथ्य से पूर्णतः परिचित है कि नारी की दयनीय अवस्था में परिवर्तन लाने के लिए नारी का महिमा गान ही पर्याप्त नहीं है, वरन् पुरुष वर्ग को चुनौती देते हुए यह स्पष्ट कर देना होगा कि अगर नारी को उचित सम्मान न मिला तो समाज का कुछ भी महत्व नहीं रह जाएगा। जननी के मान से ही पुत्र की उन्नति संभव है। अतः कवि पुरुष समाज को चुनौती देते हुए, उसके नारी-विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है। पुरुष समाज को ललकारता हुआ कवि नारी स्वातंत्र्य की उद्घोषणा करता है। समाज का यह वर्ग अब दीनावस्था में नहीं रहेगा। कर्तव्य के साथ साथ नारी अधिकार ग्रहण करने की भी अधिकारिणी है। गुप्त जी की गोपियाँ कहती हैं ---- "पुरुष समाज अपनी दुर्बलताएँ कमजोरियों को छिपाने के लिए हमें "अबला" बताते हैं।[77] लेकिन हम डरनेवाली नहीं हैं, कर्तव्य से विमुख नहीं होंगी। आवश्यकता पड़े तो वीर रूप धारणकर राज भी सँभालेंगी-----

"पुरुष के काज को परैगो भार हम पै, तो---
आसरे रहिंगी क्यों? जि भीत तोरि डारिंगी
छोड़ि घर चलिंगी तो, बीर कौ धरिंगी भेष
चकौरिंगी दुधारो कर, धूरी उतारिंगी।।
हस में करिंगी हम चक्र जो सुदर्सन कौ तो
सैन सँग लिगीं, नर ओर क्यों निहारिंगी,
सासक बनिंगी, नहिं झुकिंगी नैंकु काउ सो
जोग क्यों करिंगी, राज गद्दी हू सम्हारिंगी।।"
[स्याम सतक,पृ-46]

नारी अब समाज के अमानुषिक कृत्यों को मूक पशुवत् सहन नहीं कर सकती। उसके अंदर का तेज जो परिस्थितियों के कुहरे में कहीं विलीन हो गया था, ज्ञान के प्रकाश में पुन: प्रखर हो उठा है।

इस प्रकार कवियों ने कला के पारदर्शी आलोक में समाज के उस रूप का साक्षात्कार करने का प्रयास किया, जहाँ स्त्री और पुरुष नर-नारी नहीं, बल्कि अपने अंत:करण में मानव हैं। उनके व्यक्तित्व के एकत्व में ही समाज का कल्याण है। समाज का यह कल्याण राष्ट्र के भविष्य को उन्नत बनाने में सहायक सिद्ध होता है।

वर्तमान दुर्दशा- भारतीय जनता को उद्बोधन :---

कवि युग का प्रतिनिधि होता है। वह राष्ट्र की भावनाओं को काव्य में प्रतिध्वनित भी करता है तथा उसे प्रेरणा भी देता है। जनता को उद्बोधन करने के लिए कवियों ने सर्वप्रथम उसकी कायरता एवं राष्ट्र के प्रति उपेक्षा भाव को पूर्णत: नष्ट करने का प्रयास किया। उसे उसके पशुतुल्य जीवन का आभास कराते हुए उसकी परम्परागत शौर्य - भावना को जगाने का प्रयत्न किया।

गुप्त जी कहते हैं --"आज जनता स्वार्थी बनी है। जिससे राष्ट्र हित नहीं होगा। [78] हम सदियों से अस्वतंत्र रहे इसका एक ही कारण है कि हम अपने प्रति जितना लगाव रखा उतना देश के प्रति नहीं। अपने प्राणों के लिए देश का गौरव मिट्टी में मिला दिया। जिससे हमारा मान, वैभव, धर्म का भी अन्त हुआ, जिससे राष्ट्र का ही पतन हुआ। [79] भोग-विलास में डूब कर स्वदेश की रक्षा करने में असमर्थ, अशक्त बने। [80] सौभाग्यवश हमें स्वतन्त्र मिला। फिर भी हम जाति " पाँति के नाम से, मजहब के नाम से, धर्म के नाम से अपनों से लड़ते रहे। गुप्त जी कहते हैं---

यह हमारे लिए शोभा नहीं देता। जिससे लोक कल्याण नहीं होता---

"समान प्राणी सभी समझकर, न चल रही है विचार धारा
अजातुहिक दृष्टिकोण ही तो, किए हुए है पतन हमारा।।
न अन्य का मान जो रखे वह, न क्यों स्व-सम्मान खो सकेगा।
स्व-बंधु जन से विरोध करके, न लोक कल्याण हो सकेगा।।"
[शंकर, पृ-45]

इस प्रकार के भेद भावों का एक ही कारण है। वह है ईर्ष्या। वही मानव- मानव को लड़ा रही है।[61] जबतक स्वदेश में ये कलह न मिटते तबतक विश्व बंधुत्व भी सफल न होगा---

"मानवता व्यर्थ है हमारी, न शुद्ध जबतक हृदय पहल हो।
स्वराष्ट्र में ही कलह रही तो, न विश्व बंधुत्व भी सफल हो।।"
[शंकर, पृ-44]

इसलिए गुप्त जी होली के पर्व दिन पर राधा के मुख से जनता को उद्बोधन करते हैं--"सब लोग द्वेष, वैर भावनाओं को छोड़कर एक हो जाओ, देश-प्रेम के रंग में भीग जाओ। अपने मन में स्थित मल को इस होली के रंगों में धो डालो।।"[62]

इस प्रकार गुप्त जी के काव्य में आध्यात्मिक चिंतन के साथ - साथ राष्ट्रीय भक्ति भाव की झलक भी हमें स्पष्टतया दिखाई देती है। वह सच्चे देश भक्त, गाँधीवाद का समर्थक, सच्चे समाज सुधारक साथ ही साथ सच्चे भक्त कवि है।

4.3. निष्कर्ष:---

परब्रह्म की प्राप्ति के लिए बताये गये चार मार्गों में (योग, ज्ञान, कर्म, भक्ति) से गुप्त जी भक्ति मार्ग को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। वे ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति को भक्ति कहते हैं। यद्यपि भगवदनुग्रह ही भक्ति का मूल साधन होता है। गुप्त जी ने नवधा भक्ति को भक्ति के सोपान बताया। गुप्त जी की भक्ति पद्धति के पाँच रूप है -- वैराग्य पूर्ण भक्ति, वैधी भक्ति, प्रेम रूपा भक्ति, पुष्टिमार्गीय भक्ति, अद्वैतमूलक भक्ति। शैव, शाक्त, वैष्णव धर्मों का सम्मिलित भक्ति ही उनकी भक्ति साधना है। साम्प्रदायिक लकीरों में बन्धे व्यक्ति नहीं होने के कारण उनकी भक्ति पद्धति में कई सम्प्रदायों की पद्धतियाँ न्यूनाधिक रूप में मिली हुई है। समस्त विश्व में वही भगवान है। इसलिए वह विश्वंभर है। विश्व के प्रति आराधना ही भगवदाराधना है। मानव सेवा ही माधव सेवा है। इन सिद्धान्तों के द्वारा गुप्त जी ने अपने आराध्य देवी - देवताओं के प्रति अनन्य भाव प्रकट कर आत्म निवेदन किया है। इन समस्त देवी देवताओं में उनके लिए परम आराध्य भगवान कृष्ण हैं तो आराधिका श्रीराधा है। मनसा, वाचा, कर्मणा अपना जीवन उन्हीं की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची

1. श्रीकृष्ण चरितमानस	- दाऊदयाल गुप्त	अवतरणकाण्ड	पद-221.
2. जयओंकार	- वही		पृ-16.14
3. श्री कृष्णचरितमानस	- वही	अवतरणकाण्ड	पद-160
4. वही	- वही	इन्द्रप्रस्थकाण्ड	पद-23.
5. स्याम सतक	- वही		पद-22.
6. वही	- वही		पद-22.
7. श्री मद्भागवत			1-68.
8. शंकर	- वही		पृ-140.
9. श्री कृष्णचरितमानस	- वही	उत्तरकाण्ड	पद-199.
10. वही	- वही	अवतरणकाण्ड	पद-114
11. हनुमच्चरित मानस	- वही	अवधकाण्ड	पद-59
12. वही	- वही	युद्धकाण्ड	पद-29.
13. कैलाश	- वही		पद-221.
14. कैलाश	- वही		पद-221.
15. महाशक्ति दुर्गा	- वही		पृ-247.
16. स्यामसतक	- वही		पद-15.
17. श्री कृष्णचरितमानस	- वही	लीलाकाण्ड	पद-67.
18. वही	- वही	वही	पद-228.
19. वही	- वही	द्वारिका काण्ड,	पद-103.
20. शंकर महाकाव्य	- वही		पृ-178.
21. वही	- वही		पृ-92.
22. श्री कृष्णचरितमानस	- वही	लीलाकाण्ड	पद-228.
23. वही	- वही	इन्द्रप्रस्थकाण्ड	पद-177.
24. स्याम सतक	- वही		पद-3.
25. वही	- वही		पद-2.

26•	स्याम सतक	– दाऊदयाल गुप्त		पद–13•
27•	वही	– वही		पद–16•
28•	वही	– वही		पद–10•
29•	वही	– वही		पद–13•
30•	वही	– वही		पद–16•
31•	वही	– वही		पद–15•
32•	कैकय	– वही		पद–219•
33•	स्याम सतक	– वही		पद–16•
34•	शंकर	– वही		पृ–20•
35•	वही	– वही		पृ–24•
36•	श्री कृष्णचरितमानस–	वही	गीताकाण्ड	पद33•
37•	स्यामसतक	– वही		पद–3•
38•	श्री कृष्णचरितमानस–	वही		पद–195•
39•	स्याम सतक	– वही		पद–35•
40•	श्री कृष्णचरितमानस–	वही	लीलाकाण्ड	पद–49•
41•	राधा	– वही		पृ–90,91•
42•	वही	– वही		पृ–92•
43•	स्यामसतक	– वही		पद–52•
44•	हनुमच्चरितमानस	– वही	सुन्दरकाण्ड	पद–29•
45•	1•श्याम शतक	– वही		पद–10,19,15
	2• शंकर	– वही		पृ–169•
46•	श्री कृष्णचरितमानस–	वही	अवतरणकाण्ड	पद–18•
47•	वही	– वही	वही	पद–203•
48•	राधा महाकाव्य	– वही		पृ–67•
49•	श्री कृष्णचरितमानस–	वही	अवतरणकाण्ड	पद–196•
50•	स्याम सतक	– वही		पद–70•

51•	श्री कृष्णचरितमानस-	दाउदयाल गुप्त	लीलाकाण्ड	पद-93•
52•	वही -	वही	वही	पद-146•
53•	वही -	वही	अवतरणकाण्ड	पद-18•
54•	राधा महाकाव्य -	वही		पृ-90•
55•	वही -	वही		पृ-92•
56•	श्याम सतक -	वही		पद-52•
57•	महारास -	वही		पृ-16•
58•	शंकर -	वही		पृ-48•
59•	श्री कृष्णचरितमानस-	वही	मथुराकाण्ड	पद-42•
60•	1•श्री हनुमच्चरितमानस-	वही	अवधकाण्ड	पद-63•
	2• वही -	वही	सुन्दरकाण्ड	पद-61•
61•	श्री हनुमच्चरितमानस -	वही	अवतरणकाण्ड	पद-197•
62•	वही -	वही	वही	पद-67•
63•	वही -	वही	लीलाकाण्ड	पद-91•
64•	1• श्यामसतक -	वही		पद-53•
	2•श्री कृष्णचरितमानस -	वही	लीलाकाण्ड	पद-95,96 97•
65•	श्री कृष्णचरितमानस-	वही	लीलाकाण्ड	पद-105•
66•	वही -	वही	वही	पद-111•
67•	वही -	वही	वही	पद-41से44
68•	वही -	वही	वही	पद-180•
69•	वही -	वही	मथुराकाण्ड	पद-186•
70•	वही -	वही	वही	पद-187•
71•	वही -	वही	इन्द्रप्रस्थकाण्ड	पद-24•
72•	शंकर महाकाव्य -	वही		पृ-58•
73•	वही -	वही		पृ-59•

74• साकेत के काव्य: संस्कृति और दर्शन-डॉ•द्वारिकाप्रसाद सक्सेना,पृ-329•

75• आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना - डॉ•शुभलक्ष्मी पृ-59•

76• राधा - दाऊदयाल गुप्त पृ-52•

77• स्याम संदेसौ - वही पृ-46•

78• जय औंकार - वही पृ-91•

79• वही - वही पृ-141•

80• वही - वही पृ-142•

81• शंकर - वही पृ-41•

82• स्याम सतक - वही पद-53•

पंचम अध्याय

दाऊदयाल गुप्त के काव्य में दर्शन

पंचम अध्याय

दाऊदयाल गुप्त जी के काव्य में दर्शन

5.1. दर्शन:---

आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, माया और मोक्ष के सम्बन्ध का विवेचन दर्शन कहलाता है। जो मस्तिष्क प्रधान, चिन्तनशील व्यक्ति की साधना से उपर्युक्त विषयों का ज्ञान प्रस्फुटित होता है।{1} पश्चिमी देशों में धार्मिक गूढ़ रहस्य से परिपूर्ण साहित्य को "फिलासफी" कहते हैं। यह शब्द "फिलास और सोफिया" दो ग्रीक शब्दों से बना है, जिनका अर्थ क्रमशः प्रेम और विद्या है अर्थात् किसी भी धार्मिक या सामाजिक विषय का ज्ञान प्राप्त करने की रुचिकर विद्या ही फिलासफी है।{2} इसके विपरीत भारत में इसे दर्शन {दृश्यते तद् {ब्रह्म}, एतद् {विश्वम्} अनेन ज्ञान चक्षुषा त्रिकालदर्शिभिः आत्मज्ञैः ऋषिभिः मुनिभिः इति दर्शनम्} कहा गया है, जिसका भाव है त्रिकाल द्रष्टा आत्मज्ञानी, ऋषि मुनियों के द्वारा ज्ञान चक्षुओं से जो ब्रह्म एवं यह विश्व देखा जाए वह दर्शन है।{3} भारतीय दर्शन का आदिस्रोत वेद ही है। भारतीय तत्व-वेत्ता मनीषियों ने ब्रह्म, जीव, माया और जगत् के रहस्य को भली - भाँति देखा, परखा है।

वैज्ञानिक जिस प्रकार सत्यान्वेषी होता है, ठीक उसी प्रकार दार्शनिक भी सत्यान्वेषी होता है। इस दृष्टि से दर्शन भी एक विज्ञान है, एक शास्त्र है। भारत प्रारंभ से ही आमानुसंधान, सत्यानुशीलन एवं सत्यान्वेषण की ओर अभिमुख रहा है। वेद, उपनिषद् एवं दर्शन इसके प्रमाण हैं। भारतीयों में मानव के जन्म से जीवन की अंतिम श्वास तक की गतिविधि के प्रति तीव्र जिज्ञासा रही है। सांसारिक एवं पारलौकिक

जीवन पर भारत के ऋषि मुनियों ने आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व एक सुदीर्घ काल तक निरन्तर अनुसंधान किया है और उसी का परिणाम है ----- "भारतीय दर्शन शास्त्र:"

विश्व में "वेद" को आदिम ज्ञान माना जाता है। उसके दो भाग हैं-- मन्त्र, ब्राह्मण। मंत्रों में देवताओं की स्तुति की गई है और ब्राह्मणों में कर्मकाण्ड [यज्ञादि] का ज्ञान निहित है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् रचित आरण्यक ग्रन्थों में वानप्रस्थाश्रम के उपयुक्त योगाभ्यास की विधियों का वर्णन हैं। उपनिषद् वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग है। अत: इसे वेदान्त भी कहते हैं और ये वेदान्तदर्शन के आदि स्रोत माने जाते हैं, ये वास्तव में ऐसे निबंध है, जिनमें मानवीय भावना अत्युच्च शिखर पर पहुँची हुई प्रतीत होती है और चिन्तन की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। इन मन्त्रों की व्याख्या विभिन्न प्रकार से कर विभिन्न मतों के विभिन्न सिद्धान्तों का सूत्रपात हुआ है। वेदान्तदर्शन से चार दार्शनिक विचार धाराएँ प्रस्फुटित हुई हैं--- आचार्य शंकर का निर्विशेषाद्वैत रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत। श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत और श्री मध्वाचार्य का द्वैत। जीव, ब्रह्म, संसार, मोक्ष आदि के संबन्ध में इन सबने उपनिषदों के विभिन्न सूत्रों को अपना कर अपनी विचारधारा को पुष्टि प्रदान की तथा विभिन्न क्षेत्रों को उससे प्रभावित किया।[4]

इन सभी सिद्धान्तों में सर्वाधिक महत्व शंकराचार्य के अद्वैत का ही रहा, जिसके निरसन के लिए वैष्णव आचार्यों तथा अन्यान्य वैष्णव भक्तों ने श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर द्वैताद्वैत के झमेले से टक्कर लेने के लिए भक्ति सिद्धान्त को सर्वोपरि मान्यता दी और उसे ही संसार-चक्र से मोक्ष दिलानेवाला परम साधन स्वीकार किया तथापि जीव, ब्रह्म, माया आदि का भी पर्याप्त विवेचन हुआ है।[5]

आचार्य शंकर के अतिरिक्त शेष सभी वेदान्ताचार्य सगुण को ही प्रमुख मानते हैं। इनमें से नारायण एवं लक्ष्मी की उपासना को रामानुज महत्व देते हैं। जबकि मध्व, निम्बार्क, वल्लभ इत्यादि सभी आचार्य श्रीकृष्ण को ही किसी न किसी रूप में परब्रह्म स्वीकार करते हैं। इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर हमारे हिन्दी के कवि गन अपने काव्य कृतियों को अमूल्य बना दिया। तुलसीदास परब्रह्म को राम के रूप में, सूरदास ने कृष्ण के रूप में अर्थात् भगवान के सगुण रूपों पर अपना ध्यान लगा दिया तो कबीर जैसे लोग निर्गुण ब्रह्म पर "आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं ---"इस"तत्वचिंतन" से न केवल भागवत, उपनिषद्, गीता, पुराण, भक्ति की सगुण - निर्गुण आदि शाखाओं के प्रवर्तक कवि, आचार्य रामानुज, मध्व, वल्लभ, चैतन्य, रामानंद, कबीर, सूर, तुलसी सभी के बाहरी रंगों में अंतर होते हुए भी भीतर से ये एक ही रंग में रंगे हुए हैं। ये सभी एक महान् सत्ता या सार सत्ता {वह निर्गुण हो या सगुण} के प्रति अनन्य भाव से आकर्षित हुए हैं और उसी केन्द्र की ओर उनकी सारी भावना खींची हुई है। उसी केन्द्र पर उनका संपूर्ण काव्य प्रसाद खड़ा हुआ है। उपनिषदों में वह केन्द्र ब्रह्म, गीता और भागवत में भगवान श्रीकृष्ण, रामायण में राम तथा कबीर आदि संतों की वाणी में निर्गुण है। इन केन्द्रों में विद्वानों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर संभव है बहुत कुछ अंतर भी दिखाई दे, पर इनका ऐक्य किसी भी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता कि ये सभी आध्यात्मिक आधार पर स्थित हैं।"{6}

श्री दाऊदयाल गुप्त जी के दार्शनिक अभिमतों के निरूपण के लिए उनकी रचनाओं में विकीर्ण रहनेवाली तात्विक उक्तियों का संचयन करना परम आवश्यक है। इसमें संतोष की बात यह है कि उनकी तत्व-दृष्टि सांप्रदायिक हठवादिता से सर्वथा विमुक्त है। उनके एतद्विषयक उद्गार स्वयं विशद एवं भावद्योतक हैं। कुछ लोग गुप्त जी को शांकर

अद्वैती कहते हैं तो और कुछ लोग विशिष्टाद्वैती, कुछ लोग शुद्धाद्वैती औरों की दृष्टि में वे निजी दर्शन के प्रवक्ता हैं। यदि हम कवि की वास्तविक मनःस्थिति से सह-भाव स्थापित करेंगे तो उनकी दार्शनिक अभिरुचि को समझ लेने में कोई कठिनाई नहीं होगी। हमें निरन्तर यह स्मरण रखना चाहिए कि दाऊदयाल भक्त हैं। इस कारण उनकी बौद्धिक अभिरुचि हमेशा भक्तिवाद से नियंत्रित रही है। गुप्त जी की रचनाओं के अध्ययन से विदित होता है कि वे तत्वतः दार्शनिक नहीं है और न ही दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन या विश्लेषण करना उनका उद्देश्य रहा है। भगवत् सम्बन्धी पद गाकर अपने आराध्य को रिझाने में ही परमानन्द की अनुभूति करते हैं। भक्ति में विभोर हो उनके हृदय से जो भाव प्रस्फुटित होते हैंवे उनकी भाव प्रवणता के ही विशेषतः परिचायक होते हैं, दार्शनिकता के नहीं। इसके उपरान्त भी गुप्त जी के साहित्य में दार्शनिक विचार उपलब्ध होते हैं। वे किसी एक सम्प्रदाय में दीक्षित न होने पर भी उन पर विविध सम्प्रदायों का प्रभाव दिखाई देता है। उन पर वातावरण के अनुसार शंकर के अद्वैतवाद, श्री वल्लभ के शुद्धाद्वैत, रामानुज के विशिष्टाद्वैत आदि विभिन्न धाराओं का प्रभाव परिलक्षित है। इतना ही नहीं तुलसी एवं सूरदास जैसे महान भक्त दार्शनिकों की विचार धाराओं से भी वे प्रभावित हुए दिखाई देते हैं।

इन सब दार्शनिक प्रभावों से प्रभावित होकर भी गुप्त जी ने प्रसंग वश जो दार्शनिक विचार प्रगट किए हैं, उनमें भी रुचि और मौलिकता का ही प्राधान्य है। गुप्त जी के दार्शनिक विचार निम्न हैं -----

<u>ब्रह्म</u> :---

दाऊदयाल गुप्त जी के लिए कृष्ण ही परब्रह्म हैं —— कई संदर्भों में उन्होंने इस तथ्य पर स्पष्ट रूप से अपना अभिमत स्थिर किया है।

इसलिए ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप स्वीकार्य हैं, दोनों का उन्होंने यथावत् प्रतिपादन किया है, ब्रह्म निरूपण का आरंभ गुप्त जी ने उसके निर्गुण निरुपाधि स्वरूप से किया, पर उसकी परिणति सगुण-स्वरूप में कर दी है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि ब्रह्म के दोनों स्वरूपों को स्वीकार करते हुए भी सगुण को सर्वोपरि मानते हैं।

<u>ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप</u> :----

श्रुतियों में निरूपित ब्रह्म का वर्णन दाऊदयाल ने अनेकों स्थानों पर किया है। यथा ----

"ब्रह्म अगोचर अज अविनाशी
परमानन्द सकल सुख राशी।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड, पद-5}

वह अविनाशी, व्यापक तथा सभी के देह धारियों में निवास करने वाला है। भक्त जन उसी का ध्यान करते हैं।{7} और संसार में सर्वत्र वही परब्रह्म विराजमान है ---

"पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण ही, यह अनन्त साकार।
परब्रह्म परिपूर्ण है, पूर्ण सकल संसार।।"
{ज्योंकार-दाऊदयाल गुप्त, पृ-11}

इत्यादि वचनों में भी ब्रह्म का निर्गुण स्वरूप ही अभिव्यक्त हुआ।

<u>ब्रह्म अनंत गुण संपन्न</u>:------

दाऊदयाल गुप्त जी का ब्रह्म निर्गुण एवं सगुण भी है। अजर, अमर, अविनाशी कहलाने वाले निर्गुण ब्रह्म का गुणगान अनेक स्थानों पर किया है---

"अजर अमर अनादि अविकारी। अतुल अमल अद्वय अघहारी।
अविचल अविकल अटल अमंदा। परमानंद सकल सुख कंदा।।
व्यापक परब्रह्म अविनाशी। स्वयं प्रकाश सकल घटवासी।।"
[हनुमच्चरितमानस-अयोध्याकाण्ड, पद-46]

वह सारे जगत् के पिता, ईश एवं गुरु भी हैं।[8] वह अव्यक्त होकर भी भक्तों के हित के लिए व्यक्त होते हैं ---

"ब्रह्म हैं अव्यक्त वे ही, व्यक्त भक्तों हित सदा ही।
नाम रूप अनन्त व्यापक, है असीमित सम्पदा ही।।"
[शंकर-दाऊदयाल गुप्त, पृ-24]

सृष्टि, स्थिति लय हेतु वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप धारण करते हैं।[9] उसी परब्रह्म ने विश्व की रचना की। सर्वत्र उसी की माया दिखाई देती है।[10] वह सर्व समर्थ है। अज, अनन्त, अव्यय है। विश्वतंत्र उसके वश में है। उसकी इच्छा के बिना कुछ नहीं होता।"[11]

<u>कृष्ण ही ब्रह्म है :---</u>

वल्लभाचार्य एवं सूरदास की तरह शुद्धाद्वैत वेदान्त के अनुसार गुप्त जी ने जिस कृष्ण का वर्णन किया है वह स्वयं ब्रह्म ही है। उसका असली स्वरूप आनंदात्मक है ---

"कृष्ण नाम अति गूढ़ कृषि भूः निर्वृत्तिकार।।
विभु विभु ब्रह्म निरत आनंदाकर्षक सहज।।
आनन्द आकर्षक सहज अव्यय अगोचर जो रहे।।
निर्वृत्तिकर निर्लिप्त नारायन निरामय जो कहे।।

सोइ अगुन ब्रह्म अगम्य अज अवतार धरि जग आवते।।
गोविन्द माधव कृष्ण सुन्दर स्याम नाम धरावते।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-द्वारिका काण्ड,पद-4]

जिस परब्रह्म का वेद ने गुणगान किया उसी परब्रह्म को अपना सुत मानकर यशोदा ने प्रेम से अपने अंक में बिठाया ---

"उपजि मोह जसुमति उर आवा करि अति नेह अंक बैठावा।
जग यदु सम करहिं जेहि गाना जसुमति तेहि निज सुत करि माना।।"
[श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-163]

कृष्ण के परब्रह्म होने की बात गुप्त जी के काव्य के ब्रह्म, उद्धव, भीष्म, बलराम आदि कहते है। स्वयं गुप्त जी के कृष्ण जब कुरुक्षेत्र में राधा से मिले, उस समय राधा को अपने स्वरूप का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं---"मैं वही परब्रह्म हूँ जो अजर, अविनाशी, आत्मरूप में घट घट वासी कहा गया। मैं अपनी चाह से इस संसार में विविध रूपों में प्रकट हो रहा हूँ। सृष्टि, स्थिति, लयकारक मैं ही हूँ।"[2]

उद्धव यही बात गोपियों को समझाते हुए कहते हैं---
"श्याम सदा निर्मम और निर्मोही। वह साक्षात् परब्रह्म ही है, जिसने भक्तों के हित अवतार लिया है।"[3]

गर्गाचार्य भी यह बात जानते हैं। इसलिए ही वह जब बलराम-कृष्ण के नामकरण करने नंद गृह पधारते हैं। तब नंद से कहते हैं ---
"जो मुनि योगियों के लिए भी दुर्लभ है, वही भगवान स्वयं दुष्ट शिक्षार्थ, सज्जनों की रक्षा हेतु सुत के रूप में तुम्हारे घर में प्रकट हुआ है। यही बात वह वृषभानु महाराज से भी कहते हैं ---"हरि,ब्रह्म, अनन्ता है, जनहित अवतार लिया है।"[4]

जल में अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराते हुए कृष्ण ने अक्रूर को समझा दिया कि वे स्वयं पूर्ण ब्रह्म ही हैं। अक्रूर आनंद मग्न होकर भगवान का गुणगान करते हैं ---

"नाथ आपु सब व्याधि निवारन। जगकारन पालन अरु तारन
परब्रह्म अच्युत अविनाशी, आत्मरूप सब घट घटवासी
खलदल दलन हरन भुभारा। धर्म हेतु लीन्हेउ अवतारा।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-मथुराकाण्ड, पद-143}

इस प्रकार गुप्त जी कृष्ण को ब्रह्म के रूप में घोषित करके उनके प्रति अनन्य भक्ति भाव प्रकट की।

ब्रह्म {कृष्ण} का सगुण रूप :---

शुद्धाद्वैत वेदान्त के अनुसार गुप्त जी ने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को समान रूप से अपनाया है। तथापि उनकी प्रवृत्ति और प्रतिपत्ति दोनों कृष्ण के सगुण रूप की ओर अधिक है। इस दिशा में स्वाभाविकतया गुप्त जी की दार्शनिक दृष्टि शुद्धाद्वैत मत में प्रतिपादित सगुण ब्रह्म के स्वरूप से प्रभावित है। कृष्णचरितमानस के प्रथमकाण्ड में ही उन्होंने भगवान के सगुण रूप के प्रति संकेत किया ---

"ब्रह्म सदा अव्यय अविकारी, सगुण सो प्रभु गोलोक विहारी।
तेहि प्रकाश जगमाँहि सुहावा। सोइ कृपालु हमरें मनभावा।।"
{कृष्णचरितमानस -अवतरण काण्ड, पद-16}

गुप्त जी ने अपने ग्रन्थों में सर्वत्र कृष्ण के गुणगणों के वर्णन का प्रयत्न ही सर्वाधिक किया है। कृष्ण परिपूर्ण आनंद का संदोह है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता भक्तों के प्रति अपार करुणा है। अतएव भक्तों के उद्धार में

वे निरन्तर जागरूक रहते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें वहाँ मिलता है, जहाँ हंसमुनि की रक्षा करने भगवान महारास के बीच में से अदृश्य होते हैं। फिर प्रकट होकर अदृश्य होने का कारण गोपियों को बताते हैं — "समुंदर के बीच में हंसमुनि को एक मछली ने पकड़ा, उसका आर्तस्वर सुनते ही मुझे वहाँ जाना पड़ा। सुदर्शन से उस मत्स्य को मारकर महर्षि को उस विपत्ति से बचाया। फिर कृष्ण कहते हैं---

"पुकारता भक्त आर्त्त स्वर में
तुरन्त जाता - कहा उन्होंने।।" (राधा-पृ-144)

भगवान कृष्ण भक्तों के संरक्षक, भवरोग के विनाशक, शरणागतों के भयहरण एवं करुणानिधान है। भगवान के इस रूप का वर्णन गुप्त जी ने अपने काव्य में कई स्थानों पर किया है ---

"प्रभु जी, तुम जन केउ प्रान बचाये।
जब जब टेर करी सन्तन नें दौर तुरत ही आये।
द्रुपद-सुता की टेला सुनिकै बाढे चीर बढाये।।
नरसिंह रूप धरि हिरनाकुस बधि, प्रह्लाद बचाये।।
अम्बरीस हित दुर्वास पै तुम ही चक्र चलाये।।
"दाऊदयाल" सुनो नहिं मेरी कैतउ बार बुलाये।।"
(श्याम सतक-पद-22)

अपने बाल्यकालीन लीलाओं में भी कृष्ण बीच बीच में कुछ ऐसे कार्य करते जाते हैं, जिनमें वे असुरों के संहारक और भक्तों के रक्षक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। पूतना वध (15), शकटासुर वध (16), तृणावर्त वध (17), बकासुर वध (18), वत्सासुर वध (19), अघासुर वध (20), शंखचूड़ वध (21) आदि ऐसी ही लीलाएँ हैं, जिनमें उनका यह रूप प्रकट हुआ है।

राक्षसों के इन वधों के अतिरिक्त कालीय-दमन लीला में श्रीकृष्ण का यही रूप उपस्थित होता है। गोवर्धन धारण कर , इन्द्र के कोप से ब्रज वासियों को बचाकर रक्षा करते हैं।[22] मथुरा जाकर कृष्ण अत्याचारी अधर्मी कंस का वध कर मथुरा वासियों को दुख से परित्राण करते हैं।[23] उनके समान और कोई रक्षक नहीं है।[24] इस प्रकार कृष्ण की शक्ति और वीरता का वर्णन गुप्त जी ने अनेक स्थलों पर किया है।

इस प्रकार की अनन्त महिमा के कारण ही कृष्ण हरि, हर, ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं के लिए आराध्य हैं। वे पूर्ण रूप से ऐश्वर्य संपन्न हैं। एवं भगवान के लिए जितने गुण आवश्यक हैं। उन सबसे पूर्ण हैं।

कृष्ण और त्रिमूर्ति :---

गुप्त जी ने कृष्ण के ब्रह्मत्व के वर्णन के साथ सृष्टि, स्थिति, संहार के नियामक ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के संबंध में अपना दार्शनिक निर्णय दिया है। वे तत्वतः परमात्मा से अभिन्न है और उनकी त्रिविध शक्तियाँ मात्र हैं।[25] द्वारकादास गुप्त यद्यपि सामान्य रूप से इसको स्वीकार करते हैं। तथापि उनके अनुसार कृष्ण ही सब के मूल में हैं। कृष्ण ही ब्रह्म रूप से सृष्टि, विष्णु रूप में रक्षा एवं शिव बनकर संहार का कार्य करते हैं। गुप्त जी भीष्म के मुँह से यही बात कहवाते हैं---

"तिहुँ लोकन्ह सासक अजित होइ कवन अस भूप।
रचि पालत संहरत सकी एहि विधि हरिहर तिहुँ रूप।।"

[श्री कृष्णचरितमानस-इन्द्रप्रस्थकाण्ड-पद-24]

गुप्त जी के कृष्ण भी स्वयं यही बात कहते हैं ---

"मैं ही कृष्ण मुकुन्द मुरारी। मैं ही प्रभु गोलोक विहारी।
मैं ही विधि हरिहर तिहुं रूपा। मैं अगाध गति अकथ अनूपा।।"
(श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-173)

इस प्रकार गुप्त जी ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन तीनों को अपने आराध्य में दर्शन किया।

राम और कृष्ण :---

दाऊदयाल गुप्त जी की दृष्टि में राम और कृष्ण दोनों अभेद हैं। वे इन दोनों में कोई अन्तर नहीं मानते। गुप्त जी का कृष्ण स्वयं कहते हैं।

"राम रूप धरि हति खर दूषन, मारेउ रावन खलकुल भूषन।
मोहन हेतु रूप धरि सीता। रही असोक विपिन बनि भीता।
नहिं मैं नारि पुरुष नहिं होऊ। सकल रूप अरु रूप न कोऊ।।"
(श्री कृष्ण चरितमानस-उत्तरकाण्ड,पद-174)

एक जगह पर हनुमान भगवान "राम-कृष्ण" के इस अद्वैत रूप का दर्शन कर आनन्द मग्न हो जाता है-----

"लखेउ कीस अलक दृगन्ह अदभुत अलखि अनूप
सर धनु धर मुरली अधर राम-कृष्ण इक रूप।।"
(श्री कृष्णचरितमानस-द्वारिकाकाण्ड,पद-102)

गुप्त जी की दृष्टि में राम और कृष्ण में अभिन्नता है, जिस तरह उन्होंने कृष्ण को परब्रह्म माना उसी तरह राम को भी। गुप्त जी के राम निर्गुण ब्रह्म है, जो अज, अविनाशी, अनंत है। वही वैकुण्ठ निवासी नारायण भी है। वही परब्रह्म सगुण वेश में अवध पुर में राम बनकर प्रकट

हुए हैं। सृष्टि, स्थिति,लयकारक सकल फलदायक वही है। आत्मरूप में वही विद्यमान है।(26) वही ब्रह्म दुष्टशिक्षण, शिष्ट रक्षण हेतु कौसल्या तनय के रूप में प्रकट हुआ है ---

"कौसल्या जायेउ भगवंता। रूप सील गुन रासि अनंता।
लीन्हेउ ब्रह्म स्वयं अवतारा। धान धरम हरन भुआरा।।"
(हनुमच्चरित मानस-अवतरणकाण्ड,पद-46)

राम अपने शील स्वभाव के कारण ही पतित पावन है। इसीलिए वे भक्तों का उद्धार करते हैं। शबरी जैसी ओछी जाति की स्त्री को भक्ति का वरदान देकर उसके दी गयी जूठे फल प्रेमपूर्वक स्वीकार किये।(27) शिला बनी अहल्या को स्त्री बना दिया।(28) जटायु को उत्तमगति प्रदान की।(29) वे शरणागतों के पालक तथा भक्तजनों के रक्षक हैं। रावण के डर से भागकर शरण में आए विभीषण की रक्षा की। उसे अभय देकर राजसिंहासन प्रदान किया।(30) वे भक्त रक्षक हैं। गुप्त जी के राम स्वयं कहते हैं ---

"मो महँ जेहि अति ही अनुरागा। दुः है भगत सोउ बड़ भागा।।"
(हनुमच्चरितमानस-बालकाण्ड,पद-52)

राम अत्यंत सौन्दर्यवान है। उसके जगन्मोहक रूप सबको लुभानेवाला है। देखनेवाला उसे देखते ही रह जाता है---

"त्रिभुवन मोहन रूप सोइ, लखत न नयन थकान।"
(हनुमच्चरितमानस-वरदायक काण्ड,पद-26)

उनकेलिए न कोई शत्रु है न मित्र। सबको ~~सम~~ समभाव से आदर करते है।(31) अकेला राम ही तीनों लोकों को जीत सकता है। उनके समान

और कोई नहीं है।[32] इसीलिए गुप्त जी भगवान रामचन्द्र के गुण गान करके इह-पर सुख प्राप्त करने को कहते हैं ---

"राम मंत्र दृढ़ है जप लोगू। मिलि हैं भोग मोच्छ मिटि सोगू।
आधि व्याधि सब होइ निवारन, ध्यान जोग रघुपति एहि कारन।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-58]

शंकर :---

दाऊदयाल गुप्त जी की सभी रचनाओं में भगवान शंकर को जो स्थान दिया गया है वह उनकी असीम उदारता सौमनस्य और समन्वय बुद्धि का द्योतक है। गुप्त जी की दृष्टि में शंकर में उतनी ही महिमा है, जितनी राम और कृष्ण में। वे सच्चिदानंद ब्रह्म है। अनादि, अज, अन्तर्यामी, अविनाशी, अविकार, अकामी है।[33] सृष्टि स्थिति लयकारक है[34] सर्वव्यापक है, अनन्त रूप हैं, नाम हैं। वे दयामय भक्तजनों की विपत्ति हरते हैं।[35] शिव, ब्रह्मा और विष्णु आदि के लिए वंदनीय है----

"विश्वास करो-वे भगवान,वैभव-निधान जग के स्वामी।
ब्रह्मा हरि सुर नर किन्नरगण, सबही है उनके अनुगामी।।"
[शंकर महाकाव्य,पृ-21।]

शिवनिंदक हरि भक्त नहीं कहलाता।[36] इसी विषय पर बल देते हुए गुप्त के राम कहते हैं -- मेरे हृदय में आप हैं, आप के हृदय में मैं हूँ। हम अभिन्न हैं। मूर्ख जन ही हमें भिन्न समझते हैं।[37] गुप्त जी के कृष्ण भी इसी तथ्य के प्रति संकेत करते हैं।[38] वे दयामय, सदा भक्तों की रक्षा करते हैं।[39] इसीलिए गुप्त जी भगवान शंकर की कृपा के पात्र बनने को कहते हैं ----

"इसीलिए तुम भी वहाँ चल शुद्ध अन्तर्भावना से।
पड़ो चरण, उनकी कृपा ही प्राप्त कर लो याचना से।।"
{शंकर महाकाव्य}

जीवात्मा :---

समस्त ज्ञान प्रक्रियाओं के मूल में एक चेतना तत्व वर्तमान है, जिसको जीव कहा जाता है। वह देहधारी है और उसकी परिमित मात्रा क में नियामक थी। द्वारकादयाल गुप्त जी के अनुसार जीव अविनाशी और परमात्मा का अंश है-----

"कहहुँ तत्व तोहि मैं हनुमंता। एकु ईस पर रूप अनेता।
जीव ब्रह्म दो नाम धरावा। आत्म और परमात्म कहावा।
जीव अंस अंसी जगदीसा। सत चित आनंद रूप अनीसा।
सत चित जीव लखै सब कोई। पर आनंद आवरित होई।।"

{हनुमच्चरित मानस- अवधकाण्ड, पद-45}

जीव को नित्य, अमर तथा शरीरधारी होते हुए भी क्षर तत्व मान लेती है, जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़ों को छोड़कर ब नये वस्त्र धारण करते हैं उसी प्रकार जीव शरीर छोड़कर नये शरीर स्वीकार करते हैं---

"जिमि तजि जीरन वसन नर धारै नव परिधान।
तिमि जरिन तन तजि नव तब धरै सुजान।।"
{श्री कृष्णचरितमानस- गीताकाण्ड, पद 2/22}

इन पंक्तियों में कवि गीता के उस प्रसिद्ध वचन का अनुगमन करते हैं, जिसमें इसी उदाहरण के द्वारा आत्मा के अमरत्व का प्रतिपादन किया गया है।{40}

विद्वानों ने चौरासी लाख योनियों का उल्लेख किया है। सबमें भगवान विराजमान है ---

"जोनि कहैं विदुलत चौरासी। सकल माहिं राजत अविनासी।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-45]

जीव यद्यपि नैसर्गिक रूप में आनंद स्वरूप है तथापि माया-संग के कारण वह काम,क्रोध, मद, मोह के वश होकर वास्तविक स्वरूप को भूल कर दुःखी होता है ---

"भेद अहं त्वं भ्रमवश होऊ। पर माया बस जानि न कोऊ।
काम क्रोह मद मोह उपाई। भरमहि भव बंधन दुखदाई।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-45]

जब जीव अपना वास्तविक तत्व पहचानता हैतब उसे कल्याण होता है यही बात सीता जी हनुमान से कहती है---

"जीव ब्रह्म एकत्व मति, जब हुइ है हनुमान।
जनम मरन संकट मिटै। पावै तब कल्यान।।"
[हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-46]

जीव के कृतित्व और भोक्तृत्व का निरूपण भी गुप्त जी ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया है। जीव तो कर्म करने में स्वतन्त्र है और उसके फल भोगने में परतंत्र। यही बात गुप्त जी के कृष्ण अर्जुन से कहते हैं----

"पारथ! यों भटका है राही।
जैसे करम करै तैसेऊ करि अरपन मो माँही।
हुइ साधक होइ सिद्ध करै जो फल की इच्छा नाहीं।।

सोइ ग्यानी ग्यानी ध्यानी जे करम नाँहि बिसराही।
"दाऊदयाल" धन्न जे ठाडे प्रभु - किरपा की छाँही।।"
[स्याम सतक - पद-99]

गुप्त जी के विचार से कर्मपाश को काटने के दो उपाय हैं। ज्ञान और भक्ति। आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान लेने पर कर्मबंधन काटना सरल हो जाता है। ज्ञान और योग परस्पर पूरक हैं।[41] आत्मज्ञानी योगी अनासक्त होकर कर्म करता है। अत: उसमें पुन: कर्म की वासना उत्पन्न नहीं होती। वासना क्षय से कर्म का बीज नष्ट हो जाता है।[42] कर्मक्षय का दूसरा उपाय है भक्ति। भक्ति भगवान् कृष्ण की असीम कृपा की साधिका है। प्रभु कृपा बिना मन भटकता रहेगा। मन भटकता रहेगा तो वैराग्य कैसे मिलेगा? इसलिए समस्तविषयों को त्याग देना चाहिए। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि को छोड़कर उस प्रभु का स्मरण करना चाहिए--

"बिन प्रभु-किरपा मन भटकत है उपजे नाँहि विराग।
दाऊदयाल करौ हरि सुमिरन तौ ही जागैं भाग।।
करौ रे मन सब विसयन कौ त्याग।।"
[स्याम सतक,पद-16]

दाऊदयाल गुप्त जी के जीव सम्बन्धी विचार अद्वैत वेदान्त परक हैं। उनके अनुसार जीव-परमात्मा से किसी भी स्थिति में अलग नहीं है। "जीवो ब्रह्मैव ना पर:" के अनुसार गुप्त जी ने जीव को ब्रह्म ही माना है।[43] मायामोहित होकर जीव अपने स्वरूप को पहचानता नहीं ---

"जीव ब्रह्म मैं भी न भेद है, भेद लगे यह माया है।"
[जय ओंकार ,पृ-247]

जीव के अज्ञान का दूसरा कारण अहंकार है। धन, यौवन तथा रूप, गुण सम्पन्नता जन्य अहंकार से जीव मायावेष्टित हो जाता है। इसलिए ही गुप्त जी इससे सतर्क रहने को कहते हैं ---

"मनवा, लगी माया जाल।
नासमान संसार बनायो सबरो झूठो जाल
यह काया माटी है प्यार करनी नाँहि निहाल
हंस उड जानो हो ततकाल।।
मोह छाँडि परलोक सम्हारो डोल रह्यो सिर काल।
दाऊदयाल काम नहीं आवे वैभव कुटुम बिसाल।
देह धरनी पै होइ निढाल।।"
[स्याम सतक, पद-14]

अज्ञान के निवारण के लिए "स्वस्वरूपानुसंधान" आवश्यक है। किये कर्मों का ब्यौरा देकर भक्त को विमल बुद्धि से पश्चात्ताप करना चाहिए। परमेश्वर को सर्वशक्तिमान कर्ता - धर्ता मानकर जीव को अहंकार त्याग कर शरणागत होना चाहिए।[44] इस अज्ञान रूपी बंधन को काटने के लिए सतगुरु का कृपा-भाजन होना चाहिए। गुरु की कृपा के बिना साधक की साधना सिद्ध नहीं हो सकती और न भगवान का अनुग्रह मिल सकता।[45]

<u>जगत्</u> :---

सूरदास ने आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैत वेदान्त के अनुसार ही जगत् को ब्रह्म रूप एवं संसार को नश्वर तथा मायिक बताया है। दाऊदयाल गुप्त ने भी यही सिद्धांत अपनाया। इसीलिए गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं -- "जगत् की सृष्टि स्थिति प्रलयकारण मैं ही हूँ।"[46]

गुप्त जी ने जगत्, जीव और देव आदि को ब्रह्म का अंश माना है। यह जगत् परब्रह्म द्वारा उत्पन्न होकर पुनः उसी में ब समा जाता है। गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं --"मेरी माया शक्ति आठ प्रकार की होती है --"भू, जल, अग्नि, समीर, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार।" यह मेरी अपर प्रकृति है, जीव रूप में इस जगत को धारण करनेवाली मेरी दूसरी प्रकृति इससे श्रेष्ठ है। इन दोनों प्रकृतियों से समस्त भूतों का आविर्भाव हो रहा है। इसलिए सारा जगत् आविर्भूत एवं तिरोभूत होने का कारण मैं ही हूँ। इस समग्र जगत को धारण कर रहा हूँ।"{47}

यह बात वसुदेव श्री कृष्ण आविर्भाव के सन्दर्भ में कहता है ---

"करहु नाथ घट घट तुम वासा।
तव प्रकासा गहि जगत प्रकासा।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-121}

फिर ब्रह्मा ने यही बात कही ---

"तेहि तन अगनित लोक समाये, सकल जीव जहाँ आश्रय पाये।
हरि हर विधि अहिया तेहि माँहि। विश्व प्रपंच शेष कुछ नाँही।।"
{श्री कृष्णचरितमानस-अवतरणकाण्ड,पद-26}

गुप्त जी ने सूर के समान सारे जगत को ब्रह्म का माना है। यह अतः ब्रह्म के समान सत्य है। यह ब्रह्म का भौतिक रूप है। गुप्त जी ने जहाँ जगत् को ब्रह्म का अंश कहा है, वहाँ संसार, माया को नश्वर कहा। माया का अर्थ है संसार के प्रति मोह एवं ममत्व भावना। संसार के प्रति ममत्व रखनेवाले जीव को गुप्त जी ने कठोर शब्दों में फटकारा है -----

"मनवा, लायो माया जाल।
नासमान संसार बनायो सबरो झूठो जाल

यह काया माटी है प्यारे करनी नाँहि निहाल।
हंस उड जानौ है ततकाल।।
मोहि छाँडि परलोक सम्हारौ डोल रह्यौ सिरकाल
दाऊदयाल काम नहीं आवै वैभव कुटुम विसाल।
देह धरनी पै होइ निढाल।।"
[स्यामसतक,पद-14]

गुप्त जी के कृष्ण कहते हैं --"दिखाई देनेवाला समग्र जगत का मूल-कारण मैं ही हूँ। यह रहस्य जो जानेगा वही ज्ञानी कहलाएगा।"[48]

फिर भी गुप्त जी ने "जगत" शब्द का प्रयोग सामान्य संसार के अर्थ में भी किया है। गुप्त जी कहते हैं --"जग का नाता झूठा है। इसलिए हरि नाम का स्मरण करो। एक दिन ये प्राण उड़ जाएँगे। तब तुम्हारे बन्धुजन इस शरीर को लेकर जला देते हैं। फिर इससे कुछ काम न बनता। इसलिए इस संसार को पार करना है तो स्याम को आश्रय पाना है।"[49]

यहाँ जगत् शब्द संसार का पर्याय है। इसी तरह अन्य कई स्थानों पर गुप्त जी ने "जगत्" का सामान्य संसार के अर्थ में प्रयोग किया---

1. मनवा, झूठौ जग कौ नातौ। [स्याम सतक ,पद-13]

2. मनवा, लग्यौ मेरौ स्याम सुन्दर सौं।
यह जग अगम दु:ख है भारी
तव किरपा हित तरसौं।।" [स्याम सतक,पद-15]

उपर्युक्त सभी पदांशों में जगत् शब्द का प्रयोग सामान्य माया-मोह में फँसे हुए "संसार" के लिए हुआ है।

परब्रह्म के रोम रोम में कोटि - कोटि ब्रह्माण्ड स्थित है। ब्रह्म ही जगत के पिता है, जगदीश है। वह ज्योतिस्वरूप है। अण्ड, ब्रह्माण्ड, तीनों लोक, सकल जीव उसके उदर में ही विद्यमान है। गुप्तजी ने इस पद में जगत् को ब्रह्म का ही अंश माना है ---

"शिशु लोइ विधि पर मातु प्रमाना, रहेउ उदरि मँह अण्ड समाना।।
पुनि सो अण्ड पिण्ड दो रूपा। तेहिं मँह इक ब्रह्मण्ड अनूपा।।
द्वितीय रूप सुन्दर शिशु साजा। कोटि अर्क सम ज्योतित भ्राजा।
तेहि तन अगनित लोक समाये। सकल जीव जहाँ आश्रय पाये।।
हरिहर विधि असंख्य तेहि माँही। विश्व प्रपंच शेष कुछ नाँही।।
[श्री कृष्णचरितमानस-अवतरण काण्ड, पद-26]

इस प्रकार गुप्त जी ने आधिभौतिक जगत को ब्रह्म[कृष्ण] के रूप में देखा है।

माया :---

निरुपाधि - निर्गुण ब्रह्म मात्र को अन्तिम सत्य मान लेने पर नितांत भिन्न प्रकृतिवाले जगत् और उसमें सुख - दु:ख का अनुभव करनेवाले असंख्य आत्माओं के अस्तित्व की कोई यौक्तिक उपपत्ति नहीं स्थापित हो सकती। इस जटिल समस्या से अपने को बचाने के लिए केवलाद्वैतियों ने माया का प्रतिपादन किया जिसका स्वरूप उनके यहाँ एक विशिष्ट अर्थ को द्योतित करनेवाला बन गया है। उनके अनुकरण में प्राय: सभी भारतीय दार्शनिकों ने किसी न किसी रूप से माया को अपने दर्शन-मत में स्थान दिया है। माया अनिर्वचनीय और त्रिगुणात्मिका है। वह ऐसी शक्ति है, जिसके कारण विश्व का आविर्भाव और तिरोभाव संपन्न होता है। वस्तुत: माया का मौलिक अर्थ प्रपंच के उपादान कारण अर्थात् मूल प्रकृति से था,

जो निरन्तर परिवर्तनशील होने के कारण मायिक प्रतीत होता है। वह नित्य पदार्थ अर्थात् मूल प्रकृति ही अद्वैतियों के हाथ अनिर्वचनीय माया हो गयी। परमात्मा की शक्ति भी प्राचीनकाल में माया कही जाती थी, जिसकी थाह पाना असंभव है जो जगत् के आविर्भाव में कारणरूप वर्तमान है।50।

श्रीमद् भागवत् में माया को विश्व का मूलकारण, भगवान की शक्ति और उनका हास कहा गया है। विद्या और अविद्या को बन्धन और मोक्ष की परिचायिका अपनी अंशभूता माया से निर्मित या प्रकटित दो उपशक्तियाँ भगवान ने स्वीकार की।।51।

दाऊदयाल गुप्त ने भी ✗ इन्हीं सिद्धान्तों को अपनाया। उनकी दृष्टि में माया एक महान शक्ति है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इस शक्ति के कारण ही सुखी एवं भयंकर बने हैं -----

"मैं ब्रह्मा एवं विष्णु और शिव शंकर
तव शक्ति प्राप्त सुखकर या बने भयंकर।।"
।महाशक्ति दुर्गा-दाऊदयाल गुप्त,पृ-34।

वही ब्रह्माणी बनकर सृष्टि करती, वैष्णवी बनकर रक्षा करती, भवानी के रूप में लय करती है।।52। उस शक्ति के बिना सर्वव्यापक, अविनाशी, घट घट वासी कहलानेवाले परब्रह्म भी स्वयं कुछ नहीं कर ✗ सकता।।53। सृष्टिकर्ता ब्रह्म ने मधुकैटभ असुरों के दमन करने हेतु विष्णु को जगाने इसी माया का आश्रय लिया। विष्णु भी इसी महामाया के सहारे उन असुरों को मारने में समर्थ हुए।।54। माया के अनंत रूप हैं, नाम हैं। गुप्त जी की "माया" स्वयं कहती है--"मैं हूँ गायत्री, सावित्री, ब्रह्माणी, नारायणी, शिवानी। मैं सुख प्रदान करनेवाली दुर्गा हूँ। सीता, राधा, काली, कराली, इन्द्राणी मैं ही हूँ।।55। फिर वह कहती है-----

"मैं ब्रह्म रूपिणी एक मात्र, मैं त्रिगुणमयी मैं ही त्रिमात्र।
करती त्रिदेव को शक्तिमान, हो व्यक्त मुझ से वे महान।।
मेरा ही होता कृत्य सर्व करती सर्ग स्थिति लय समर्थ।।
मैं महाशक्ति यद्यपि अनादि, पर महासर्ग मिस व्यक्त आदि।।"
(जय औंकार, पृ-68)

दाऊदयाल गुप्त जी ने माया- नारी के मोहिनी रूप का वर्णन किया है। "समुद्रमंथन" प्रसंग में श्री विष्णु के माया-वधू रूप का सुन्दर वर्णन किया है, जिसके प्रभाव से शिव भी बच न पाये।(56) इस महान माया की थाह पाना असंभव है ---

"वेद विज्ञ सुभक्त योगी, कौन उनको जान पाया?"
(शंकर महाकाव्य, पृ-24)

गुप्त जी कहते हैं जब जब भगवान दुष्ट विनाशार्थ, शिष्ट रक्षार्थ पृथ्वी पर अवतरित होते रहे हैं। तब उसकी माया भी उसके साथ रहती।(57) उसी शक्ति ने कभ रामावतार में सीता के रूप एवं कृष्णावतार में राधा रूप धारण किया। हनुमान एक जगह पर यही तथ्य को प्रति - पादन करते हुए रावण को समझाते हैं ----

"जबजब अवतरि हैं नर भेसा संग रहहि माया है तैसा।
एहि अवतार भई सिय सोई। तुम्ह सामान्य जानि लिय जोई।।"
(हनुमच्चरितमानस-सुन्दरकाण्ड, पद-112)

गर्गाचार्य भी एक स्थान पर राधा को कृष्ण - माया के रूप में वर्णन करते हुए वृषभानु महाराज से कहते हैं ---

"गर्ग कहेउ हरि ब्रह्म अनन्ता। जायेउ जनहित सोइ भगवन्ता
ताकी प्रकृति कहावहि जोई। संग रहहि माया सम सोई।।

सोई माया प्रभु प्रथम पठाई, धरि तव सुता रूप जग आई।।"

॥श्री कृष्णचरितमानस-लीलाकाण्ड,पद-11॥

इस प्रकार गुप्त जी ने सृष्टि,स्थिति, लय करनेवाली एक महान शक्ति को माया के रूप में दर्शन किया।

शांकर वेदान्त के अनुसार माया के दो रूप हैं --- एक है विद्या माया दूसरी अविद्या माया। अविद्या माया के प्रलोभनों में आकर जीव सांसारिकता में जकड़े रहता है और विद्या माया के प्रलोभनों में आकर जीव सांसारिकता में जकड़े रहता है और विद्या माया परब्रह्म के इच्छानुसार सृष्टि एवं विनाश करती रहती है। दाऊदयाल गुप्त जी ने माया के ये दोनों रूपों का दर्शन किया।

गुप्त जी कहते हैं कि अविद्या माया कामा,क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि मानसिक विकार, दुर्बलताओं में फंसा कर जीव को प्रभु से दूर रखती है। गुप्त जी कई स्थानों पर जीव को चेतावनी देते रहे कि सर्वत्र इसी माया का जाल है, इससे मानव को सचेत रहना चाहिए। वह उसे मोह में डाल देती है।॥88॥58॥ इस माया के कारण ही जीव अपने को ब्रह्म से अलग समझता है। काम, क्रोध, मद,मोह के वशीभूत होकर भवबंधनों में पड़कर दुख भोगता है ----

"जोनि कहे विदु लख चौरासी। सकल माँहि राजत अविनासी
भेद अहं एवं भ्रमवस होऊ। पर माया बस जानि न कोऊ।।
काम कोह मद उपाई। भरमहि भव बंधन दुख पाई।।"

॥हनुमच्चरितमानस-अवधकाण्ड,पद-45॥

इस माया से बचने के लिए एक ही मार्ग है वह है -- प्रभु कृपा प्राप्त करना। इसी लिए गुप्त जी कहते है ----

"करौरे मन सब विषयन कौ त्याग।।
काम क्रोध मद मोह लोभ सब मनों कारे नाग।
सोतो रह्यौ जिन्दगी भर अब नींद त्यागि कै जाग।।
सेवा करौ सकल प्रानिन की ईस-प्रेम रस पाग।।
बिन प्रभु-किरपा मन भटका है उपजै नाहि विराग
"दाऊदयाल" करौ हरि सुमिरन तो ही जागै भाग।।"
{स्यामसतक- पद-16}

भगवद् कृपा प्राप्त करने के लिए अत्यंत सरल मार्ग है भक्ति मार्ग। इस मार्ग के पथिक बनकर भगवद् कृपा प्राप्त कर अपने को उद्धार होने की बात गुप्त जी कहते हैं ---

"प्रेम सहित हरि नाम उचारो, सरल हृदय से उन्हें पुकारो।
केवल भक्ति-भाव उर धारो, अब तो अपनी भूल सुधारो।।"
{शंकर महाकाव्य, पृ-189}

इस प्रकार गुप्त जी ने माया के प्रभाव का वर्णन कर उससे बचने का एक मात्र उपाय भगवद् भक्ति कर उसके कृपा पात्र हो जाने में श्रेष्ठता मानी है।

इस प्रकार "दाऊदयाल गुप्त के काव्य में दर्शन। नामक इस शीर्षक के अन्तर्गत, उनके समस्त काव्यों का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्टतया कह सकते हैं -- उन्होंने भगवान के समस्त स्वरूपों का वर्णन किया है। शैव, वैष्णव एवं शाक्त दर्शनों का समन्वित स्वरूप ही उनके दर्शन का सार है। इस असाधारण समन्वयवादिता ने शैवों, वैष्णवों एवं शाक्तों को एक दूसरे के बहुत ही निकट लाकर खड़ा कर दिया है। वस्तुतः गुप्त जी की धार्मिक समन्वयवादिता, वैचारिक तथा सैद्धांतिक उदारता और महानता के बल पर वे विश्वधर्म की विधायिनी बन सकती है।

सन्दर्भ सूची

1॰ सूर और पोतना की भक्ति साधना-डॉ॰सीएच॰रामुलु पृ-388॰

2॰ भक्ति और दर्शन - डॉ॰वेदप्रकाश शास्त्री पृ-126॰

3॰ हिन्दी कृष्ण - काव्य में भक्ति एवं दर्शन-डॉ॰संतोष पाराशर, पृ-39॰

4॰ भक्ति और दर्शन - डॉ॰ वेदप्रकाश शास्त्री पृ-127॰

5॰ वही - वही पृ-128॰

6॰ हिन्दी कृष्ण काव्य में भक्ति एवं वेदान्त-डॉ॰संतोष पराशर, पृ-127॰

7॰ श्रीकृष्णचरितमानस - दाऊदयाल गुप्त - लीलाकाण्ड,पद-47॰

8॰ वही - वही गीताकाण्ड,पद-9/17

9॰ जयओंकार - वही पृ-11॰

10॰ वही - वही पृ-14॰

11॰ श्रीकृष्ण चरितमानस - वही अवतरणकाण्ड,पद-74॰

12॰ वही - वही द्वारिकाकाण्ड,पद-194॰

13॰ वही - वही मथुराकाण्ड पद-88॰

14॰ वही - वही लीलाकाण्ड पद-11॰

15॰ वैभव - वही पद-69॰

16॰ श्रीकृष्णचरितमानस - वही अवतरणकाण्ड पद-163॰

17॰ वैभव - वही पद-93॰

18॰ वही - वही पद-101॰

19॰ श्रीकृष्णचरितमानस - वही लीलाकाण्ड पद-28॰

20॰ वही - वही वही पद-37॰

21॰ वही - वही वही पद-187॰

22॰ वही - वही वही पद-124॰

23॰ स्यामसतक - वही पद-75॰

24॰ श्रीकृष्णचरितमानस - वही द्वारिकाकाण्ड, पद-25

25॰ जयओंकार - वही पृ-11॰

26.	हनुमच्चरितमानस	–	दाऊदयाल गुप्त	सुंदरकांड	पद-111
27.	वही	–	वही	बालकाण्ड	पद-64.
28.	वही	–	वही	वही	पद-58.
29.	वही	–	वही	वही	पद-63.
30.	वही	–	वही	सुंदरकाण्ड	पद-64.
31.	वही	–	वही	वही	पद-123.
32.	वही	–	वही	वही	पद-122.
33.	"शंकर" महाकाव्य	–	वही		पृ-178.
34.	वही	–	वही		पृ-20.
35.	वही	–	वही		पृ-24.
36.	वही	–	वही		पृ-203.
37.	हनुमच्चरितमानस	–	वही	अवधकाण्ड	पद-65.
38.	श्री कृष्णचरितमानस	–	वही	कुरुक्षेत्रकाण्ड	पद-160.
39.	शंकर महाकाव्य	–	वही		पृ-23.
40.	गीता	–	2/22.		
41.	श्री कृष्णचरितमानस	–	दाऊदयाल गुप्त	गीताकाण्ड	4/33.
42.	वही	–	वही	वही	4/19,23.
43.	हनुमच्चरितमानस	–	वही	अवधकाण्ड	पद-45.
44.	श्याम सतक	–	वही		पद-2.
45.	श्री कृष्ण चरितमानस	–	वही	मथुराकाण्ड	पद-68.
46.	वही	–	वही	इन्द्रप्रस्थकांड	पद-24.
47.	वही	–	वही	गीताकाण्ड	7/4,5,6,7.
48.	वही	–	वही	वही	10/8.
49.	श्याम सतक	–	वही		पद-19.
50.	हिन्दी सगुण भक्ति काव्य में दार्शनिक स्रोत-रामचन्द्र देव				पृ-255.

51॰	भक्ति और दर्शन	– डॉ॰वेदप्रकाश शास्त्री		पृ-171॰
52॰	महाशक्ति दुर्गा	– श्री दाऊदयाल गुप्त		पृ-38॰
53॰	हनुमच्चरितमानस	– वही	अवधकाण्ड	पद-46॰
54॰	महाशक्ति दुर्गा	– वही		पृ-58॰
55॰	जयओंकार	– वही		पृ-66॰
56॰	हनुमच्चरितमानस	– वही	अवतरणकाण्ड	पद-77॰
57॰	जयओंकार	– वही		पृ-248॰
58॰	श्याम सतक	– वही		पद-14॰

****

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

श्री दाऊदयाल गुप्त जी ब्रज अंचल में आधुनिक हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित कवि हैं। इन्होंने ब्रज और खड़ीबोली दोनों में रचनाएँ कीं। इनकी प्रतिभा चतुर्मुखी है। इन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, निबन्ध आदि साहित्य के अंगों में सफलता पूर्वक रचना करके अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया है।

गुप्त जी गाँधीवाद से प्रभावित व्यक्ति हैं। सामाजिक दृष्टि से सुधारवादी दृष्टिकोण के व्यक्ति हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया है। स्वतन्त्रता के पूर्व और स्वतन्त्रता के पश्चात्‌ श्री गुप्त जी राष्ट्रीय कांग्रेस एवं उसकी गतिविधियों से जुड़े हुए हैं।

गुप्त जी भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं, पिता की भक्ति भावना का असर बालक दाऊदयाल गुप्त के हृदय पर पड़ा और आगे चलकर यही भक्ति भावना उनके हृदय में खूब विकसित हुई। फलस्वरूप उनके काव्यों में वैष्णव भक्ति भावना पूर्णरूप से विकसित हुई। श्रीमद्भागवत इनकी विचार-धारा का मूलाधार है। भक्ति के अलावा गुप्त जी ने अपनी काव्य-रचनाओं में देश भक्ति को भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया। गुप्त जी की कृष्ण भक्ति सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट कृति "श्रीकृष्ण चरितमानस" है। इसके अलावा इन्होंने कृति महारास, राधा, वैष्णव, शंकर, जयओंकार, हनुमच्चरित-मानस, महाशक्ति दुर्गा इत्यादि कई काव्यों का सृजन किया।

गुप्त जी का "श्रीकृष्ण चरितमानस" आठ खण्डों में व 812 पृष्ठों का बृहद् काव्य है। यह महाकाव्य ब्रजभाषा के कृष्णभक्ति सम्बन्धी आधुनिक काव्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। शैली की दृष्टि से यह तुलसी के रामचरितमानस के अनुरूप है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर अवतार समाप्ति तक की सम्पूर्ण कृष्ण चरित्र का मनोहर ढंग से वर्णन किया गया है। इसके नायक ईश्वर के अवतार लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हैं और इसकी नायिका सर्वेश्वरी राधा है। कृष्ण के जीवन चरित्र से सम्बन्धित प्राय: सभी पौराणिक घटनाओं को कवि ने अपनी भावुकता से सजीव बना दिया। नवरसों से संपन्न इस महाकाव्य की कथा में नवीनता है। इसमें अनेक अन्तर कथाओं का समायोजन किया गया है। गुप्त जी ने कई नये प्रसंगों की कल्पना का अपनी विदग्ध प्रतिभा का परिचय दिया है। "गोपेश्वर शिव, श्रीकृष्ण की आज्ञा से अर्जुन की दुर्गा पूजा, अर्जुन को दुर्गा का वरदान, सत्यभामा, सुदर्शन चक्र और गरुड़ को मदहरण अर्जुन के श्वास-प्रश्वास से कृष्ण नाम ध्वनि, अर्जुन और नारद को गोपीभाव की प्राप्ति, उग्रसेन द्वारा अश्वमेध, तद् समय श्रीकृष्ण का ब्रजगमन "आदि से प्रसंग इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। वस्तुतः यह रचना वेद, वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत, देवी भागवत, महाभारत आदि समस्त निगमागम शास्त्रों का म सार रूप है।

खड़ीबोली में रचित "राधा" महाकाव्य राधा का चरित्र चित्रण करने में आपने गर्गसंहिता एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण का आश्रय लिया है। राधा कृष्ण विषयक प्राचीन परम्परा एवं आधुनिक विचारधारा के बीच मध्यम मार्ग का अनुसरण कर जहाँ एक ओर लेखक ने रूढ़िगत धार्मिक विचारों की रक्षा की है, वहाँ उसने वर्तमान की भी उपेक्षा नहीं की। विरह के उपरांत मिलन करना "राधा" महाकाव्य की अपनी अपूर्व विलक्षणता है।

गुप्त जी द्वारा रचित "महारास" काव्य अपने ढंग का अनूठा है। इसमें श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी को सरल ब्रजभाषा के छन्द में बांध दिया गया। इसमें गोलोक और नित्य वृन्दावन का वर्णन स्वानुभूति और शास्त्रों के आधार पर भी किया गया है।

गुप्त जी द्वारा रचित "स्यामसतक" में ब्रजभाषा का स्वाभाविक रूप निखर कर आया है। आरम्भ में स्तुति और विनय के पद हैं और उसके बाद कृष्ण कथा का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमें नंद, यशोदा, श्रीराधा एवं अन्य पात्रों के माध्यम से भावों का सूक्ष्मांकन हुआ है।

भ्रमरगीत परम्परा में रचित गुप्त जी का "स्याम-संदेसो" अपना महत्व रखता है। इसमें कवि के ब्रजप्रेम एवं ब्रज संस्कृति के प्रति लगाव का पूरा परिचय मिलता है। कथा की दृष्टि से अनेक मौलिक प्रयोग गुप्त जी ने किये।

गुप्त जी द्वारा लिखित यह पुस्तक "शैशव" ब्रजभाषा पद्य में श्रीकृष्ण की बाल्यकालीन कथा पर आधारित है। शैशव काव्य "श्रीकृष्ण चरितमानस" की कथा के प्रारंभिक अंश का पुनराख्यान से मुक्ति पाकर कवि ने इन प्रसंगों की मार्मिकता एवं पात्रों की भावुकता का चित्रण किया है।

"हनुमच्चरित मानस" भी दाऊदयाल जी का और एक महोत्कृष्ट रचना है। आठ खण्डों में 344 पृष्ठों में विराजमान यह महाकाव्य भी दोहा चौपाई शैली में है। इस काव्य के नायक हनुमान हैं। इस महान काव्य में श्री हनुमान जी के जीवन-चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। राम कथा में राम के प्रभाव से हनुमान का जो चरित्र अपने पूरे महत्त्व को प्राप्त नहीं कर सका था, कवि ने उसे यहाँ पूरी तरह प्रकाशित किया है। हनुमच्चरितमानस के साथ - साथ इसमें रामचरित का भी पर्याप्त रूप से वर्णन किया गया है। यह महाकाव्य ब्रजभाषा में लिखा गया है।

शिव की कथा शैव ग्रन्थों में एवं पुराणों में वर्णित है। पूर्णतः शिव पर रचे गये खड़ीबोली महाकाव्य को जो अभाव था। "शंकर" महाकाव्य उसकी पूर्ति करता है। शिव सम्बन्धी महत्वपूर्ण रचनाओं एवं तथ्यों से निर्मित यह महाकाव्य 18 सर्गों में 264 पृष्ठों में विराजमान है।

गुप्त जी द्वारा रचित "महाशक्ति दुर्गा" महाकाव्य भी हिन्दी साहित्य भण्डार का अमूल्य रत्न है। इसमें दुर्गा सप्तशती का उपाख्यान तो है ही, साथ ही देवी भागवत्, अन्नपूर्णोपनिषद्, गायत्र्युपनिषद् आदि अनेक उपनिषदों तथा महाकालिका पुराण, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, विष्णु पुराण आदि में जहाँ जो भी विशेषता मिली उसे ग्रहण करके निगमागम समस्त विभिन्न तन्त्र, मन्त्रों से सारभूत समावेशपूर्वक इस काव्य की रचना कथावृत्त के अनुसार छन्दों में हुई है। इस काव्य ग्रन्थ में "दुर्गासप्तशती" के तेरहों अध्यायों का यथा सम्भव पूर्णरूप से कथन हुआ है। साथ ही सप्तशती में वर्णित अर्गला स्त्रोत, तन्त्रोक्त देवीसूक्त आदि को भी सार रूप में सम्मिलित किया गया है। पन्द्रहवें सर्ग में आदिशक्ति ,महामाया रासेश्वरी श्रीराधा एवं नन्दा की भी महिमा गायी गई है। सोलहवें सर्ग में मानस पूजा, सत्रहवें सर्ग में देवी भागवत् के आधार पर यज्ञ कथा और पूजा, अठारहवें सर्ग में राजा सुरथ और समाधि वैश्य की उपासना से प्रसन्न हुई देवी उन दोनों को इच्छित वर प्रदान करने से संबन्धित कथा है। इस प्रकार इसमें प्रणवात्मिका परमाक्षरा महाशक्ति की महिमा का वर्णन किया है।

गुप्त जी की भाषा संस्कृत गर्भित है। इनकी भाषा में सर्वत्र कोमल-कांत पदावली का प्रयोग, अनुप्रासों का लालित्य, यमकादि का उचित व्यवहार, भाषा में अनेक रूपता आदि से आपकी कविता लोकप्रिय बन गयी है।

गुप्त जी हिन्दू धर्म के प्रति अडिग आस्था रखनेवाले हिन्दूवादी ही नहीं बल्कि सच्चे भक्त कवि हैं। भक्त अपने आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति रखकर परमपद प्राप्त करता है। भक्ति का अर्थ होता है- सेवा, आराधना, श्रद्धा, अनुराग विशेष आदि। साधना एवं उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता तथा महत्ता का प्रतिपादन वैष्णव चिन्तनधारा का मूलस्वर रहा है। गीता, भागवत, नारद भक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों द्वारा भक्ति को कर्म तथा योग से भी श्रेष्ठस्थान दिया दिया गया है। उत्तम भक्ति मुक्ति की वासना से रहित, ज्ञान कर्म आदि से अनाच्छादित तथा अनन्य भावुकता पूर्ण मानी गयी है। भुक्ति और मुक्ति भक्ति की दासियाँ हैं तथा ज्ञान और वैराग्य उसके पुत्र हैं अर्थात् भक्ति की साधना करने पर ये सब अनुवर्तन करते हुए भक्त के पास पहुँच ही जाते हैं। भक्ति का आनन्द अपरिमेय है। वह इतनी आकर्षक एवं मधुर है कि भगवान को भी अपने वश में कर लेती है। इस प्रकार अपरिमित विशेषताओं वाली भक्ति को कैवल्य से भी अधिक महत्व दिया गया है।

श्री दाऊदयाल गुप्त जी ने अपने काव्य में विविध देवी देवताओं के स्वरूप, तत्वों का वर्णन कर उनके प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट किया है। उनकी उपासना मूलक भक्ति को इन तीनों भागों में बाँट कर हम विवेचना कर सकते हैं -- शैव भक्ति, शाक्तभक्ति, वैष्णव भक्ति।

"शैव भक्ति" इस शीर्षक के अंतर्गत गुप्त जी ने भगवान शिव के स्वरूप शिव का भक्त वत्सल रूप, शिव-शिवानी में अभेदता आदि का निरूपण किया है।

"शाक्त भक्ति" शीर्षक में गुप्त जी ने भगवती, महाशक्ति के अनेक रूपों का वर्णन किया है— दुर्गा, गायत्री, महाकाली, ब्रह्माणी, रुद्राणी,

सीता, राधा आदि अनेक नामों से अभिहित की जानेवाली उस महाशक्ति का स्वरूप एवं शक्ति के प्रति अपना भक्ति - भाव प्रकट किया है।

"वैष्णव भक्ति" के अंतर्गत गुप्त जी ने भगवान विष्णु के अवतारों का वर्णन कर हर एक अवतार की विशेषता, उसकी महिमा एवं उसके प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट किया है। वे अवतार हैं — वराह, नारसिंह, कच्छप, मोहिनी, वामन, राम, वेंकटेश्वर एवं श्री कृष्ण। इसके अलावा गुप्त जी ने सूर्य, गणेश, हनुमान आदि देवताओं के प्रति भी अपना भक्ति-भाव प्रकट किया है।

गुप्त जी ने अपने काव्यों में समस्त देवी देवताओं को स्थान दिया और उनके प्रति अपनी श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास प्रकट किया। फिर भी उनके लिए आराध्य भगवान श्री कृष्ण हैं। भगवान के प्रेम में विह्वल होकर सच्चिदानंद मूर्ति कृष्ण के दर्शन का कांक्षी होना तथा उसी को साध्य मुक्ति समझना गुप्त जी की भक्ति का मूलाधार है। महाभारत, भागवत, गीता आदि में वर्णित कृष्ण के विभिन्न स्वरूप इनकी रचनाओं में दृष्टि-गोचर होते हैं। गुप्त जी के आराध्य कृष्ण परब्रह्म हैं। गुप्त जी के कृष्ण पुरुषोत्तम, घट घट व्यापक, अन्तर्यामी, अज,अनन्त अद्वैत ब्रह्म हैं। वही जगहित सगुण रूप धारण कर गोलोक में विराजमान है। जगत की सृष्टि, स्थिति, लय कारण वही है। वही जगत का शासक है, जगत, जीव और देव आदि उसी के अंश हैं। ये समस्त विश्व उसी से प्रकट होकर पुन: उसी में समा जाता है। वह परमयोगी, योगसिद्ध योगेश्वर महापुरुष है। स्वयं आप्तकाम पूर्णकाम होने पर भी लोक संग्रह के लिए आदर्श शुभकार्य किया करते थे। वे सदा निष्काम थे। उन्होंने अत्याचारी राजाओं को ध्वंस किया पर स्वयं कहीं भी राज्य ग्रहण नहीं किया। जब कंस का वध हुआ तब उग्रसेन ने कृष्ण को राज्य संभालने की विनती की तब कृष्ण उसे ठुकराते हुए उग्रसेन को राजा बनाकर स्वयं उसके सहायक बने। मानव जाति

के उद्धार के लिए आपने "गीता" के माध्यम से योगोपदेश दिया, तद्‌परा ब्रह्मानंद प्राप्ति का मार्ग बताया।

गुप्त जी ने संयोग वात्सल्य एवं वियोग वात्सल्य के वर्णनों में कृष्ण के विविध रूपों का बड़ा ही आकर्षक वर्णन अपूर्व ढंग से किया है। बालक कृष्ण वात्सल्यभाव के आलंबन हैं और उनकी लीलाएँ उद्दीपन का कार्य करती हैं। गुप्त जी ने यशोदा को वात्सल्य के संयोग - वियोग दोनों पक्षों में तल्लीन दिखाया। माँ के वात्सल्यपूर्ण चित्रों के साथ - साथ बालक की सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रियाओं का वर्णन गुप्त जी ने अनुभव कर लिया है।

कृष्ण ने गोकुल छोड़ वृन्दावन को अपनी लीलाभूमि बनाया। इसमें अपनी आनन्द प्रसारिणी शक्तियों सहित नित्य व्यापक लीलाएँ करते हैं। इसमें उनके नंद, यशोदा, गोप बालकों तथा राधा के प्रति सम्बन्धों का वर्णन हुआ है। कृष्ण का यह रूप "रसेश" कहा जा सकता है। गुप्त जी ने गोचारण, चीरहरण, मुरली माधुरी, रास लीला आदि प्रसंगों में कृष्ण के इस स्वरूप का मनोहरता पूर्वक चित्रण किया है।

कृष्ण के गोपीवल्लभ रूप के क्रमिक विकास गोपकन्याओं के कात्यायनी देवी का व्रत धारण प्रसंग से आरम्भ होकर क्रमश: चीरहरण, यमुना विहार, मुरली वादन, रास क्रीडा, जल क्रीडा, खण्डिता समय, वसंत आदि लीलाओं में हुआ है। गुप्त जी ने कृष्ण के इस रूप को बड़ी तन्मयता से चित्रित किया।

सामान्यत: हिन्दी के प्राचीन और अर्वाचीन कृष्ण काव्यों में श्रीकृष्ण का रसिकेश्वर का रूप ही मिलता है। गुप्त जी ने विशेष रूप से श्रीकृष्ण के लोक-रंजक रूप के साथ लोकरक्षक रूप का वर्णन कर हिन्दी काव्य को महिमा मण्डित कर दिया। पूतनावध, शकटासुर, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर, वृषभासुर, आदि का वध करते हैं, कालियदमन, गोवर्धन लीला,

कंस वध आदि प्रसंगों में, शिशुपाल, साल्व, दंतवक्र का दमन करने में कृष्ण का यही रूप स्पष्ट दिखाई देता है। श्री कृष्ण के परम्परागत रूपों को प्राचीन कृष्ण भक्त कवियों के अनुरूप दाऊदयाल गुप्त जी ने चित्रण किया, पर उनमें अपनी वैयक्तिक प्रतिभा से तथा रंग भर कर आधुनिक काल में रुचिपूर्ण बनाया।

गुप्त जी के कृष्ण की विलक्षणता यह है कि वे ईश्वर होते हुए भी पूर्ण मानव है। यशोदा, नंद और ब्रज के अन्य वयस्क नर नारी उन्हें निरन्तर अपने पुत्र और भोले भाले बालक के रूप में ही देखते हैं। गोप बालकों के लिए वे सदैव प्रिय सखा हैं। वह लोकनायक हैं। इस रूप में कृष्ण के समाज सुधारक रूप, देशभक्त रूप, दीनजनोद्धारक रूप समा हुआ है। इसका वर्णन गुप्त जी ने भावावेश के साथ वर्णन किया।

गुप्त जी को सैद्धांतिक रूप से अपने आराध्य के निर्गुण तथा अन्य रूपों का ज्ञान है, किन्तु भक्त होने के कारण उनका उपास्य सगुण साकार अवतरित भगवान हैं। गुप्त जी को भगवान के मर्यादा पुरुषोत्तम और पुष्टि पुरुषोत्तम दोनों रूप स्वीकार्य हैं। किन्तु उनके सेव्य केवल "रसेश पुरुषोत्तम" है। उनके कृष्ण न केवल निर्गुण ब्रह्म, सगुण भगवान अथवा रसेश है अपितु उनमें तीनों रूपों का पूर्ण सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। वे एक साथ ही पूर्ण आराध्य, लोकरक्षक तथा उदात्त नायक है।

कृष्ण गुप्त जी के उपास्य है और राधा उनके उपास्य की उपासिका। इसीलिए गुप्त जी ने राधा के अलौकिक रूप का चित्रण किया है। गर्गसंहिता एवं ब्रह्म वैवर्तपुराण आदि में वर्णित राधा के विभिन्न स्वरूप इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। गुप्त जी ने राधा-कृष्ण विषयक प्राचीन परम्परा एवं आधुनिक विचारधारा के बीच मध्यमार्ग का अनुसरण कर जहाँ एक ओर रूढ़िगत धार्मिक विचारों की रक्षा की है वहाँ उसने वर्तमान

की भी उपेक्षा नहीं की। इसमें वर्णित राधा एक ओर सर्वेश्वरी, आह्लादिनी शक्ति, कृष्ण प्राणाधिदेवी है तो दूसरी ओर भक्ति का प्रतीक, समाज सेवी एवं अनुपम नारी रत्न हैं।

गुप्त जी ने राधा कृष्ण का अभेद तत्व पर जोर दिया है। श्रीराधा कृष्ण अभिन्न रूप से एक ही स्वरूप, एक ही आत्मा है। केवल लीलारस के आस्वादन के लिए दो रूप धारण करते हैं। रमण के लिए दो की अपेक्षा रहती है। इसलिए भगवान ने अपने आप दो रूप धारण कर लिये। श्रीकृष्ण तथा राधा। राधा पूर्णशक्ति है और कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है।

गुप्त जी ने श्रीराधा के अलौकिक तथा लौकिक दोनों रूपों का सफल चित्रण किया है। अलौकिक रूप में राधा परब्रह्म कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति है, जो उनकी लीलाओं में सहयोग देने के लिए उन्हीं के साथ ब्रज भूमि में अवतरित हुई है। वैदिक - साहित्य और पुराण साहित्य दोनों में ही अलौकिक स्तर पर राधा के विविध रूपों की व्यंजना हुई है। गुप्त जी ने इन सभी रूपों का सरस तथा सजीव वर्णन किया है।

लौकिक रूप में राधा रसिक शिरोमणि कृष्ण की प्राण वल्लभा है। प्राण वल्लभ के रूप में राधा के जीवन में वे आदर्श न्यस्त है, जो एक आदर्श वल्लभा के लिए अपेक्षित हैं। संयोगावस्था में, वे अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का पूर्णरूपेण उपयोग करती हैं। और वियोगावस्था में चुपचाप जल कर अपने कठोर धर्म का निर्वाह करती है। वस्तुत: गुप्त जी की राधा अलौकिकता और लौकिकता का जो सम्यक समन्वय है, वह गुप्त जी के अमित शास्त्र ज्ञान तथा लोकज्ञान का सूचक और उनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है।

दुर्गा, उमा, वैष्णवी, इन्द्राणी, काली, शारदा, सीता आदि विभिन्न नामों एवं स्वरूपों से विश्व में सराही जानेवाली महाशक्ति के रूप में गुप्त जी ने राधा के उस विराट स्वरूप का तन्मयता पूर्वक वर्णन किया है।

गुप्त जी ने अपने आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट की। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं — सतयुग में निर्गुण ब्रह्म का सेवन किया करते थे, त्रेता में राम की महिमा का गुणगान किया करते थे। द्वापर में यदुवीर कृष्ण का भजन करते थे। अब तो कलियुग है। इस युग में भवसागर पार करने के लिए "कृष्णभक्ति" के अलावा और कोई सुलभ साधन नहीं है।

गुप्त जी की भक्ति पद्धति के पाँच रूप हैं— वैराग्यपूर्ण भक्ति, वैधीभक्ति, प्रेमरूपा भक्ति, पुष्टिमार्गीय भक्ति, अद्वैतमूलक भक्ति।

भक्त का प्रपूर्ण हृदय से आत्मसमर्पण करने से सांसारिकता का जाल दूर होना सम्भव हो जाता है। भक्त के विचारों में वैराग्य अनिवार्य तत्त्व है। जब मनुष्य के मन में यह भाव जाग उठता है तो वह सांसारिक विषय वासनाओं से उदासीन हो जाता है तभी उसके मन में ईश्वर के प्रति स्नेह उत्पन्न होता है। प्रभु कृपा के बिना मन भटकता रहेगा, मन भटकता रहेगा तो उसे वैराग्य कैसे मिलेगा? इसलिए समस्त विषयों का त्याग करना चाहिए। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि को छोड़कर प्रभु का स्मरण करना आवश्यक है। संसार के प्रति वैराग्य - भावना को साथ लेकर मनुष्य जिस भक्ति भाव को अपना सकता है, उसमें दो तत्वों की प्रधानता रहती है — निर्वेद और दैन्य। गुप्त जी के विनय पदों में एक ओर संसार की असारता, मनुष्य की पतनोन्मुखता और तज्जन्य उसकी दीनता का वर्णन है, वहाँ दूसरी ओर भगवान की शरणागत वत्सलता और कारण रहित कृपा के सहारे उनके चरणों के प्रति उत्कट अनुराग भी व्यक्त किया गया है।

श्रीमद्भागवत में नवधाभक्ति का विवेचन हुआ है-- वे हैं -- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन। गुप्त जी के अनुसार इन नौ प्रकार के भावों में भक्ति विकसित हुई। ये साधन हैं, जिनको साधकर भक्त इस भवसागर को पार कर सकता है और उस परम पुरुष को पा सकता है, यही भक्त का साध्य है। गुप्त जी ने इस नवधाभक्ति में कीर्तन, दास्य और आत्मनिवेदन को अत्यन्त महत्व प्रदान किया है।

भगवान के नाम, गुण, लीला आदि का प्रेम तथा श्रद्धा के साथ पाठ करना कीर्तन कहलाता है। तपस्या योग एवं समाधि से जो फल प्राप्त नहीं होता, वही सरल केवल कीर्तन से प्राप्त होता है, भगवान की लीला का संकीर्तन एवं श्रवण का फल अनंत है। नारद, शारद, सिद्ध, म मुनिजन भी उस प्रभु के गुणगान करते हैं।

भक्त के लिए भगवान स्वामी है, प्रभु है, नाथ है तो भक्त प्रभु का सेवक है, अनुचर है, दास है। वास्तव में भक्त का जीवन ही सेवामय है। दास्यभक्ति में भक्त की दो मनोदशाएँ होती हैं। एक तो यह कि वह समूचे संसार को मायाग्रस्त जानकर भी स्वयं को उससे बचने में असमर्थ पाता है और दूसरी यह है कि वह अपने आराध्य के उन गुणों पर और उन शक्तियों पर पूर्ण विश्वास रखता है जो इस सांसारिक विकारों से मुक्त कर सकते हैं। गुप्त जी ने विनय पदों के अतिरिक्त चीरहरण, कालियदमन, गोवर्धनलीला, आदि प्रसंगों में भगवान की भक्तवत्सलता और भक्त के दैन्य का साथ - साथ वर्णन कर "दास्यभक्ति" का महत्व प्रतिपादित किया है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार विनय की सात भूमिकाएँ होती हैं-- दीनता, मानमर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण। गुप्त जी ने अत्यंत पटुता के साथ अपने काव्य में ॥ इन सातों भूमिकाओं को निभाया।

गुप्त जी की भक्ति साधना में आत्मनिवेदन या शरणागति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रपत्ति के छः अंग-- अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, रक्षा में विश्वास, गोप्तृत्व वरण, आत्मसमर्पण और कार्पण्य माने जाते हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य साहित्य में आत्मनिवेदन की इन षट् - विधियों का मार्मिक ढंग से वर्णन किया है।

वैधी भक्ति के जितने विविध विधान हैं, वे सब प्रेम-लक्षणा भक्ति को प्राप्त करने के साधन हैं। प्रेम भक्ति बिना मुक्ति सम्भव नहीं और प्रेमा-भक्ति आश्रित है भगवदनुग्रह पर। प्रेम से उस परम प्रभु का ध्यान करने से वह अपनायेगा। प्रेममार्ग में कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़े फिर भी प्रेम पथिक थक नहीं जाता। गुप्त जी ने उसी जीवन को धन्य माना है जो प्रेम पर मर सके।

गुप्त जी ने अपने काव्य में प्रेम के जिस रूप का प्रतिपादन किया है, वह वेदान्तियों का शुष्क प्रेम नहीं, अपितु ऐसा प्रेम है। जो माधुर्य रस से परिसिंचित है। गुप्त जी का प्रेम क्रमशः विकसित होकर विश्व प्रेम में पर्यवसित हुआ है। जो अनन्यता, मधुर वेदना, निस्वार्थता आदि से ओतप्रोत है। प्रेमभक्ति एकादश आसक्तियों पर आधारित हैं। गुप्त जी ने अपने प्रसिद्ध काव्यों में इन ग्यारह आसक्तियों का सफलता पूर्वक निर्वाह किया है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि में वात्सल्य भक्ति का स्थान भक्ति के अन्य सभी प्रकारों से श्रेष्ठ है। गुप्त जी ने इस भक्ति रूप का सरस, हृदयग्राही और विशद वर्णन किया है। नन्द यशोदा को उपलक्ष्य बनाकर उन्होंने कृष्ण के प्रति वात्सल्य भक्ति व्यक्त की।

माधुर्य भक्ति के लिए आत्मसमर्पण और अनन्यभाव परमावश्यक है, जो गुप्त जी की मुरलीमाधुरी, चीरहरण आदि प्रसंगों में पूर्णता को प्राप्त हुई। गुप्त जी ने इस भक्ति के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का मार्मिक ढंग से निर्वाह किया है। गुप्त जी की प्रेमाभक्ति माधुर्यभाव की है।

वैरभाव क्रूर होते हुए भी मोक्ष प्राप्ति के लिए सरल है। शत्रुभाव से अनेकानेक राक्षस तर गये। तामसी भक्त अपने सहज स्वभाव से प्रेरित होकर भगवान से श त्रुता कर सदा उसका स्मरण - ध्यान करने लगता है चाहे अनचाहे सर्वेश्वर के निरन्तर नाम जप से वह पवित्र हो जाता है। पूतना, बकासुर, अघासुर, कंसादि राक्षस इसी कारण ईश्वर की दया के पात्र हुए।

गुप्त जी एक स्वतन्त्र व्यक्तित्ववाले है। आपने अपने को किसी सम्प्रदाय की लकीरों में बाँधे नहीं थे। फिर भी उनके काव्य में वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित, सूर द्वारा पोषित "पुष्टि भक्ति" का प्रभाव जरूर दिखाई देता है। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत भक्त परमेश्वर की करुणा एवं अनुग्रह पर निर्भर रहता है। गुप्त जी ने भी अपने इष्टदेव से भक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की। पुष्टिमार्ग में भगवान की कृपा से ही भक्ति की उत्पत्ति होती है। गुप्त जी ने अनेक पदों में हरि की कृपालुता का मनोहर ढंग से वर्णन किया है। पुष्टि भक्ति के अनुसार गुप्त जी ने व्रजांगनाओं, गोपियों, गोपांगनाओं की माधुर्य भक्ति, प्रेमभक्ति, वात्सल्य के अन्तर्गत वर्णन प्रस्तुत किया है। पुष्टिमार्ग में शरणागति का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त जी ने भगवान की कृपालुता पर विश्वास तथा शरणागत वत्सलता का वर्णन किया है।

भक्त के अथक परिश्रम एवं निरन्तर साधना के फल स्वरूप उसे परमतत्व प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। सहज ही उन्हें भक्ति की प्राप्ति हो जाती है। वह अनन्य भाव से अपने इष्टदेव की सेवा तथा ध्यान करता है

जब भक्ति विकसित होती जाती है तो भक्त सचराचर जगत में भगवान की लीला का स्वर सुनता है। कण - कण में भगवान के अतिरिक्त कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। यहाँ भक्त द्वैत - अद्वैत भावना अथवा पुष्टिमार्गीय निजी भावना से ऊँची एक अनिर्वचनीय आध्यात्मिक भावभूमि पर पहुँच जाता है। ऐसी परिस्थिति में भक्त परमसुख में लीन, होकर परमानन्द प्राप्त करता है। इस स्थिति में भक्त राम-कृष्ण, शिव- केशव तथा अन्य देवी-देवताओं में अन्तर नहीं देखता। सबको अपने परम आराध्य में पाता है। इसी भावभूमि को अद्वैत सिद्धि कहते हैं। इस दृष्टि से गुप्त जी की भक्ति अद्वैतमूलक है। इसके अन्तर्गत गुप्त जी ने त्रिदेवों में अद्वैत, राम-कृष्ण में अद्वैत, हरिहराद्वैत, सीता-राधा में अद्वैत तत्व का प्रतिपादन किया है।

भक्ति विषयक प्रभाव गुप्त जी पर श्रीमद्भागवत का ही पूर्णतः पड़ा है। परन्तु गुप्त जी की भक्ति पर इसके साथ ही सामाजिक प्रभाव, विभिन्न मतमतान्तर, वैष्णव सम्प्रदायों के सिद्धान्त, परम्पराओं और मान्यताओं आदि का भी प्रभाव पड़ा है। उन्होंने वल्लभ सम्प्रदाय से अनन्यता, चैतन्य सम्प्रदाय से कीर्तन - प्रियता, भागवत सम्प्रदाय से तन्मयता, परम्पराओं, मान्यताओं और सामाजिक ऊँच-नीच जाति वर्ण लिंग आदि की भावना का निरसन प्रस्तुत किया और शृंगार को अपने भक्ति तत्व के साथ जोड़कर एक सुन्दर मोड़ देने का सरल प्रयास किया है। इसी के माध्यम से युगल की झाँकी के दर्शन भी अपने पाठक को कराये हैं। साम्प्रदायिक लकीरों में बंधे व्यक्ति नहीं होने के कारण ही इनकी भक्ति पद्धति में कई सम्प्रदायों की पद्धतियाँ न्यूनाधिक रूप में मिली हुई हैं। इन पद्धतियों द्वारा गुप्त जी ने अपने आराध्य भगवान कृष्ण के प्रति अनन्य भाव प्रकट कर आत्मनिवेदन किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा अपना जीवन उसी भगवान की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं।

आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, माया और मोक्ष के सम्बन्ध का विवेचन "दर्शन" कहलाता है। भारतीय दर्शन का आदिस्रोत वेद ही है। भारतीय तत्व वेत्ता मनीषियों ने ब्रह्म, जीव, जगत और माया के रहस्य को भली - भाँति देखा व परखा है। वेदान्त दर्शन से चार दार्शनिक विचार धाराएँ प्रस्फुटित हुई हैं---- आचार्य शंकर का निर्विशेषाद्वैत, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत, श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत और श्री मध्वाचार्य का द्वैत। आचार्य शंकर के अतिरिक्त शेष सभी सगुण को ही प्रमुख मानते हैं। इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर हमारे हिन्दी के कविगन अपनी काव्य - कृतियों को अमूल्य बना दिया।

दाऊदयाल गुप्त जी की रचनाओं के अध्ययन से विदित होता है कि वे तत्वत: दार्शनिक नहीं है और न दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन या विश्लेषण करना ही उनका उद्देश्य है। भगवत् - सम्बन्धी पद गाकर अपने आराध्य को रिझाने में ही परमानन्द की अनुभूति पाते हैं। भक्ति: विभोर उनके हृदय से जो भाव प्रस्फुटित होते हैं वे उनकी भाव प्रवणता का के ही विशेषत: परिचायक होते हैं, दार्शनिकता के नहीं। इसके उपरांत भी गुप्त जी के साहित्य में दार्शनिक विचार उपलब्ध होते हैं। वे किसी एक सम्प्रदाय में दीक्षित न होने पर भी उन पर विविध सम्प्रदायों का प्रभाव दिखाईदेता है। उन पर शंकर का अद्वैतवाद, श्री वल्लभ के शुद्धाद्वैत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत आदि की विभिन्न धाराओं का प्रभाव परिलक्षित है। इतना ही नहीं तुलसी एवं सूरदास जैसे महान भक्त दार्शनिकों की विचार धाराओं से भी वे प्रभावित हुए दिखाई देते हैं।

दाऊदयाल गुप्त जी के लिए कृष्ण ही परब्रह्म है कई संदर्भों में उन्होंने इस तथ्य पर असंदिग्ध रूप से अपना अभिमत स्थिर किया है। उनकेलिए ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप स्वीकार्य हैं, दोनों का उन्होंने

यथावत् प्रतिपादन किया है। सृष्टि, स्थिति, लय हेतु वही परब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप धारण करते हैं। उसी परब्रह्म ने इस विश्व की रचना की। सर्वत्र उसी की माया दिखाई देती है। वह सर्व समर्थ है।

दाऊदयालगुप्त जी के जीव सम्बन्धी विचार अद्वैत वेदान्त परक हैं। उनके अनुसार जीव, परमात्मा से किसी भी स्थिति में अलग नहीं है। "जीवो ब्रह्मै व ना परः" के अनुसार गुप्त जी ने जीव को ब्रह्म ही माना है। लेकिन मायावेष्टित होकर जीव अपने स्वरूप को पहचानता नहीं। इस अज्ञान को दूर करने के लिए स्वस्वरूपानुसंधान आवश्यक है। किये कर्मों का ब्यौरा देकर भक्त को विमल बुद्धि से पश्चात्ताप करना चाहिए। परमेश्वर को सर्व शक्तिमान कर्ता - धर्ता मानकर जीव को अहंकार त्यागर शरणागत होना चाहिए।

सूरदास ने आचार्य वल्लभ के शुद्धाद्वैत वेदान्त के अनुसार ही जगत् को ब्रह्म रूप एवं संसार को नश्वर तथा मायिक बताया है। दाऊदयाल गुप्त ने भी इसी धारणा को अपनाया।

श्रीमद्भागवत में माया को विश्व का मूलकारण भगवान की शक्ति और उनका दास कहा गया है। विद्या और अविद्या को बन्ध और मोक्ष की परिचायिका अपनी अंशभूता माया से निर्मित या प्रकटित दो उपशक्तियाँ भगवान ने स्वीकार की। दाऊदयाल गुप्त ने भी इन्हीं सिद्धान्तों को अपनाया। उनकी दृष्टि में माया एक महान शक्ति है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इस शक्ति के कारण ही प्रसन्न रूपी एवं भयंकर रूपी बने हुए हैं। माया के अनंत रूप हैं, नाम हैं -- गायत्री, सावित्री, ब्रह्माणी, नारायणी, दुर्गा, भवानी, सीता, राधा इत्यादि। अब तक परब्रह्म के इच्छानुसार सृष्टि एवं विनाश करनेवाली, विद्या माया के बारे में बताया गया है। अविद्या माया के प्रलोभनों में आकर जीव सांसारिकता में जकड़ा

रहता है। गुप्त जी ने माया के इन दोनों रूपों का दर्शन अपने काव्यों में किया है।

इस प्रकार गुप्त जी के दर्शन के बारे में कहना है तो यह कहना उचित है कि शैव, वैष्णव एवं शाक्त दर्शनों का समन्वित स्वरूप ही उनका दर्शन है। इस असाधारण समन्वयवादिता ने शैवों, वैष्णवों एवं शाक्तों को एक दूसरे के बहुत ही निकट लाकर खड़ा कर दिया है। वस्तुतः गुप्त जी की धार्मिक समन्वयवादिता केवल हिन्दू समाज तक ही सीमित नहीं है। वैचारिक तथा सैद्धांतिक औदार्य और औदात्त्य के बल पर वे विश्व धर्म की विधायिनी बन सकती है।

दाऊदयाल गुप्त जी आज भी रचना के क्षेत्र में सक्रिय हैं। समाज सेवा के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। आधुनिक भक्त कवियों में विशेष रूप से कृष्ण भक्ति की रचनाओं में आप उत्तमकोटि के कवि माने जाते हैं। आपकी रचनाओं का अध्ययन तथा विश्लेषण परम रुचिकर लगता है, क्योंकि दोनों श्रीकृष्ण राधा के रसमय जगत के अंश बन जातेश हैं। आपके जीवन में कविता, भक्ति और सेवा का अपूर्व संगम हुआ है अर्थात् भक्ति का आचरण पक्ष आप मेंक प्रत्यक्ष दर्शन देता है। भक्ति की परिणति ईश्वर की सेवा अर्थात् लोक सेवा में होती है, जिसके प्रत्यक्ष प्रमाण दाऊदयाल गुप्त जी हैं। आज के लेखकों में रचना का लक्ष्य और जीवन की शैली में कोई मेल नहीं मिलता। दाऊदयाल जी के जीवन में रचना धार्मिकता और जीवन की सरणी दोनों में समन्वय है। कथनी और करनी में अभेद है। आधुनिक युग के साहित्यकारों के लिए गुप्त जी आदर्श स्तंभ ठहरते हैं। क्योंकि आज का कवि या तो परम्परावादी है या नवीनतावादी। गुप्त जी दोनों हैं और दोनों में है। इस प्रकार गुप्त जी आधुनिक युग में प्राचीन भक्त कवियों की परंपरा में दीपस्तंभ बने हुए हैं।

सहायक ग्रन्थ सूची

श्री दाऊदयाल गुप्त जी के आलोच्य काव्य-ग्रन्थ

महाकाव्य :-

1. श्रीकृष्ण चरित मानस - प्रकाशन, मानस संस्थान, गुड़हाई बाजार, मथुरा 1977.
2. राधा - (प्र) सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा - 1952.
3. शंकर - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, गुड़हाई बाजार, मथुरा - 1984.
4. हनुमच्चरित मानस - (प्र) मानस संस्थान, मथुरा-1985.
5. महाशक्ति दुर्गा - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, गुड़हाई बाजार, मथुरा - 1989.

अन्य काव्य :-

6. श्याम शतक - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, मथुरा - 1967.
7. केशव - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, मथुरा - 1967.
8. महारास - (प्र) . मानस संस्थान, मथुरा - 1981.
9. श्याम संदेशो - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, मथुरा, - 1983.
10. कृष्ण शतक - (प्र) मानस संस्थान, मथुरा - 1985.
11. राधा शतक - (प्र) मानस संस्थान, मथुरा - 1985.
12. जयओंकार - (प्र) मानस संस्थान, मथुरा - 1986.
13. भक्ति-ज्ञान दोहावली - (प्र) मानस संस्थान, मथुरा - 1991.
14. कृष्ण रक्षिता कृष्ण - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, मथुरा - 1992.
15. रुक्मिणी मंगल - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, मथुरा - 1993.
16. भक्ति भजन माला - (प्र) मानस संस्थान, मथुरा - 1993.
17. भजन गोविन्द - (प्र) सस्ता साहित्य भवन, मथुरा - 1994.

-x-x-

संस्कृत :---

1· तत्वदीप निबन्ध वल्लभाचार्य जी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

2· देवी भागवत – कल्याण देवी भागवतांक

3· नारद भक्ति सूत्र [2009] गीता प्रेस, गोरखपुर

4· भक्ति रसामृत सिंधु – पूर्वलहरी – रूप गोस्वामी, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी 1988 वि·

5· भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर

6· यजुर्वेद – वैदिक पुस्तकालय, अजमेर 2022 संवत्

7· शाण्डिल्य सूत्र [सं· 2012] गीताप्रेस, गोरखपुर

8· श्रीमद् भागवत् – दो भाग, गीताप्रेस, गोरखपुर।

****

<u>हिन्दी :---</u>

1· आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना - डॉ·शुभलक्ष्मी
नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली -11009·

2· कबीर ग्रन्थावली - सम्पादक : श्यामसुन्दरदास
नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, नौवां संस्करण; सं·2021 विं·

3· तुलसी ग्रन्थावली,- द्वितीय खण्ड : मूल संपादक-रामचन्द्र शुक्ल ,
भगवानदीन, व्रज रत्नदास,[मानसेतर एकादश ग्रन्थ];
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी · सं 2039 विं·

4· तुलसी दर्शन मीमांसा - डॉ· उदयभानुसिंह
लखनऊ विश्व विद्यालय , लखनऊ· सं· 2018 विं·

5· तुलसी ग्रन्थावली,[प्रथम खण्ड]-[रामचरितमानस] :
मूल सम्पादक: रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन,व्रज रत्नदास
नागरी पंचारिणी सभा, वाराणसी· सं· 2030 वि·

6· तुलसीकृत दोहावली में भक्ति तत्व - गीतारानी शर्मा
प्रकाशक : प्रवीण शर्मा शब्द और शब्द, दिल्ली 1987·

7· भक्ति का विकास - डॉ·मुंशीराम शर्मा
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1958 ई·

8· भक्ति सिद्धान्त - आशागुप्त
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1984·

9· भक्ति और दर्शन - डॉ·वेदप्रकाश शास्त्री,
गीता प्रकाशन, हुसैनी आलमरोड, हैदराबाद द्वितीय सं·1984·

10· राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी काव्य कला - डॉ·शेखरचन्द्र जैन
जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर 1973·

11· व्रजभाषा कृष्ण भक्ति काव्य - डॉ·जगदीश गुप्त, वसुमती प्रकाशन,
इलाहाबाद 1966·

12· शाक्त दर्शन और हिन्दी के वैष्णव कवि – डॉ·सुरेन्द्रमोहन प्रसाद
अनुपम प्रकाशन, पटना – प्र·सं· 1961·
13· शिव पुराण में शैव दर्शन तत्व – साहित्याचार्य जितेन्द्र चन्द्र भारतीय
निर्मोहीबंधु प्रकाशन, लखनऊ प्र·सं· 1972·
14· सूरसागर [दो भाग]
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2012 संवत
15· सूरसागर सार – सं· धीरेन्द्रवर्मा, साहित्य भवन [प्रा·] लिमिटेड,
तृतीय सं· 1977 ई·
16· सूर और पोतना के काव्य में भक्तितत्व – डॉ·सीएच·रामुलु,
दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद – 1980·
17· साकेत के काव्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ·द्वारिका प्रसाद सक्सेना
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 1973·
18· संस्कृत के चार अध्याय – दिनकर
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – 1956·
19· श्री अरविन्द विचार दर्शन – डॉ·श्याम बहादुर वर्मा
अरविन्द प्रकाशन, दिल्ली 1981·
20· हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ·नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1988·
21· हिन्दी विश्वकोश [खण्ड 8] – प्रधान सं·रामप्रसाद त्रिपाठी,
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम· 2023 वि·
22· हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना – डॉ·प्रेम स्वरूप
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली प्र·सं· 1969 ई·
23· हिन्दी साहित्य में प्रतिबिंबित चिन्तन प्रवाह – डॉ·सुधाकर गोकाककर
एवं डॉ·गो·रा·कुलकर्णी; कोल्हापुर 1975·

24· हिन्दी साहित्य , सर्वेक्षण और समीक्षा - श्यामानन्दन प्रसाद सिंह,
हिन्दी साहित्य संसार , पटना 1966·
25· हिन्दी कृष्णकाव्य में भक्ति एवं वेदान्त - डॉ·संतोष पराशर
प्रकाशक गुर्जर भारती, अहमदाबाद 1986·
26· हिन्दी काव्य में भक्ति का स्वरूप - डॉ·नित्यानंद शर्मा
आशा प्रकाशन गृह, करौल बाग , नई दिल्ली प्र·सं· 1975·
27· हिन्दी सगुण भक्ति काव्य के दार्शनिक स्रोत - रामचन्द्रदेव
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र·सं· 1988·

****